लेसर की कहानी

एस० चन्द एण्ड कम्पनी (प्रा०) लि०
रामनगर, नई दिल्ली-110055

एस० चन्द एण्ड कम्पनी (प्रा०) लि०
मुख्य कार्यालय : रामनगर, नई दिल्ली-110055
शोरूम : 4/16-बी, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-110002

शाखाएँ :

अमीनाबाद पार्क, लखनऊ-226001
285/J, विपिन बिहारी गांगुली स्ट्रीट, कलकत्ता-700012
सुल्तान बाजार, हैदराबाद-500195
3, गांधी सागर ईस्ट, नागपुर-440002
खजांची रोड, पटना-800004
माई हीरां गेट, जालन्धर-144008
152, अन्ना सलाए, मद्रास-600002
के० पी० सी० सी० बिल्डिंग, रेस कोर्स रोड, बंगलौर-560009
ब्लैकी हाउस, 103/5, वालचन्द हीराचन्द मार्ग, बम्बई-400001
613-7, एम० जी० रोड, एर्नाकुलम कोचीन-682035
पान बाजार, गोहाटी-781001

एस० चन्द एण्ड कम्पनी (प्रा०) लि०, रामनगर, नई दिल्ली-110055 द्वारा प्रकाशित एवं राजेन्द्र रवीन्द्र प्रिंटर्स (प्रा०) लि०, रामनगर, नई दिल्ली-110055 द्वारा मुद्रित।

प्राक्कथन

वैज्ञानिक अनुसन्धान तथा विकास के क्षेत्र में किसी नए शिल्प की संकल्पना को साकार होने में चार साल की या इससे भी लम्बी अवधि लग जाती है। लेकिन लेसर के मामले में ऐसा नहीं हुआ।

सन् १९६० में प्रथम लेसर की उत्पत्ति की घोषणा होते ही, इलेक्ट्रानिकी तथा अन्तरिक्ष-उड़ान के उद्योगों के क्षेत्र में कुछ भी महत्त्व रखने वाली प्रायः प्रत्येक कम्पनी, लेसर के अनुसन्धान में जुट गई—विश्वविद्यालयों, सरकारी अभिकरणों, अनुसन्धान-प्रतिष्ठानों का तो कहना ही क्या।

१९६३ के माली साल में लेसर के अनुसन्धान तथा विकास पर सेना ने जो खर्च किया वही एक करोड़ नब्बे लाख डालरों से अधिक था। और, जो प्रायोजनाएं पृथक्-पृथक् चल रही थीं उनकी संख्या १२७ थी। इनमें से कम से कम तीन ऐसी थीं जिन पर दस-दस लाख या इस से भी अधिक डालर लगे थे; इन सब का प्रयोजन था ऐसे उच्च-शक्ति लेसरों का विकास करना जो प्रक्षेपास्त्रों का पीछा कर सकें और सम्भव हो तो उन्हें नष्ट भी कर सकें। लेकिन अधिकांश ठेके ५०,००० से २००,००० डालरों तक की मालियत के थे।

लेसर के अनन्त भेदों में से सब के अनुसन्धान को जारी रखना ऐसा काम है जो मानव की बुद्धि के लिए एक चुनौती है और जिसके लिए उसे अपनी कल्पना पर जोर डालना पड़ता है। यह एक ऐसा आविष्कार है जो हमारे दैनिक जीवनों

में गम्भीर परिवर्तन ला सकता है। सम्भव है कि लेसर हमारे महाद्वीप को अंतर्महाद्वीपीय प्रक्षेपास्त्रों से सुरक्षित बना दे, समुद्रों में घात लगा कर हमला करने वाली पनडुब्बियों का सफाया करने में सहायता दे, कैंसर (जहरीली रसौली) की कुछ किस्मों का इलाज कर दे, ऐसे परिकलन यन्त्रों को डिजाइन करने में सहायता दे जो मानव मस्तिष्क की प्रतिलिपि सिद्ध हो, हमारी अतिव्यस्त संचार-सरणियों की कार्यक्षमता को बढ़ाने और स्वयं जीवन के अपने आधारों का ही ढांचा बदल दे।

अभी तो लेसर अपने शैशव में ही है। कतिपय संचार-परीक्षणों में तथा लीक-चाल तथा सर्वेक्षण की कुछ जांचों में यह सफल सिद्ध हो चुका है। अब तक जिन चीजों में इसका क्रियात्मक प्रयोग हो चुका है उनमें स्थल सेना के काम आने वाले परास-मापी हैं, आंख पर किए जाने वाले नाजुक आपरेशनों में काम आने वाले औजार हैं तथा अत्यन्त परिशुद्ध रूप से मशीन तथा वेल्ड करने के काम आने वाले उपकरण भी हैं।

लेसर-प्रकाश की किरणों का पुँज उस्तरे के फलकों को वेध देता है; खेलने के गुब्बारे का पटाखा चला देता है; इस्पात-रुई की गेंदों को गर्म करके तापदीप्ति की अवस्था में पहुंचा देता है; तड़क-भड़क के साथ किए गए, इन बातों के सार्वजनिक प्रदर्शनों ने एक गंभीर वैज्ञानिक अनुसन्धान के चारों ओर मेले का सा वातावरण बना दिया है और कई लोग यह समझने लगे हैं कि लेसर भी एक बहुत कीमती खिलौना भर है।

लेसर कोई खिलौना नहीं। और न यह मानव की सारी शिल्प-वैज्ञानिक समस्याओं का कोई आशुकारी तथा सरल समाधान ही है। बल्कि, यह तो एक ऐसा महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक मेघरंध्र (प्रवेश मार्ग) है जिसने मानव के बौद्धिक क्षितिज को बहुत विस्तृत कर दिया है। यह तो, और अधिक वैज्ञानिक अनुसन्धान तथा दृढ़ इंजिनीयरी विकास के लिए एक चुनौती का रूप लेकर आया है।

इस पुस्तक का काम, सीधी सादी भाषा में यह बताना है कि लेसर क्या है और यह कैसे काम करता है। सौ साल पहले प्रकाश तथा विद्युत् की दृश्य घटनाओं का सम्बन्ध स्थापित करने का जो प्रयत्न हुआ था उससे लेकर आजकल की इंजिनीयरी साधनाओं तक के इतिहास को इस पुस्तक में सिलसिलेवार दिया गया है। राष्ट्रीय रक्षा, अन्तरिक्ष की खोज, संचार-तन्त्रों, आंकड़ों का रिकार्ड बनाने, चिकित्सा-शास्त्र तथा औद्योगिक निर्माण के क्षेत्रों में लेकर के जो वास्तविक या संभावित उपयोग हैं उनकी छानबीन की गई है। इसमें इस बात का भी विस्तार-पूर्वक वर्णन किया गया है कि एक सरल लेसर की रचना कैसे की जाती है तथा उसकी कार्यविधि क्या होती है ; साथ ही यह भी बताया गया है कि इससे सुरक्षित रहने के लिए कौन-कौन-सी सावधानियां बरतनी आवश्यक हैं।

विषय-सूची

लेसर की कहानी

१

लेसर क्या होता है और क्या करता है ?

विषय-प्रवेश

सन् १९६० में इलेक्ट्रानिकी-वैज्ञानिकों ने तथा इंजिनीयरों ने चीजों को एक भिन्न प्रकार के प्रकाश में देखना शुरू किया था ।

यह प्रकाश लालमणि (रूबी) जैसा चमकीला था। यह ईरानी कवि उमर खय्याम की कल्पना की "अंगूर की प्रज्वलित लता" का कोई नजारा नहीं था अपितु एक कृत्रिम हीरे के परमाणुओं में से प्रकाश उत्सर्जित हो रहा था।

यह प्रकाश, लेसर में से निकल रहा था। लेसर एक नया आविष्कार था। विज्ञान, चिकित्सा, उद्योगों तथा राष्ट्रीय रक्षा के लिए इसके उपयोग की संभावनाओं का क्षेत्र बहुत विस्तृत था ।

नाम में क्या धरा है ?

'लेसर' तो आद्यक्षर संग्रह-नाम है। अर्थात् यह कई अन्य शब्दों के प्रथम अक्षरों से बना है। पूरा नाम है : Light Amplification by Stimulated

Emission of Radiation (लाइट एंप्लिफिकेशन बाई स्टिमुलेटेड एमिशन आफ रेडिएशन—विकिरण के उद्दीपित उत्सर्जन द्वारा प्रकाश का प्रवर्धन) । इस नाम में आने वाले प्रमुख शब्दों के प्रथम रोमन अक्षरों LASER से इसकी रचना हुई है। इससे पहले भी एक ऐसे ही आद्यक्षर संग्रह-नाम की रचना हो चुकी है : MASER (मेसर) ; Microwave Amplification by Stimulated Emission of Radiation (माइक्रोवेव एंप्लिफिकेशन बाई स्टिमुलेटेड एमिशन आफ रेडिएशन—विकिरण के उद्दीपित उत्सर्जन द्वारा सूक्ष्म तरंग का प्रवर्धन) ।

मेसर के आधारभूत सिद्धांत भी वही हैं जो लेसर के हैं लेकिन मेसर, प्रकाश को नहीं अपितु सूक्ष्म तरंग ऊर्जा को उत्सर्जित करता है। मेसरों का उपयोग उन रेडियो-दूरबीनों तथा अंतरिक्ष-लीकचाल-अभिग्राहियों में निविष्ट प्रवर्धकों (प्रि-एंप्लिफायरों) के तौर पर होता है जो बाह्य अन्तरिक्ष से बटोरे हुए क्षीण संकेतों को आवर्धित करते हैं।

'लेसर' नाम से कोई भी पूर्णतया सन्तुष्ट नहीं है क्योंकि सही मायनों में देखा जाय तो लेसर प्रकाश को प्रवर्धित तो करते ही नहीं। इसके विपरीत, वे तो ऐसे प्रकाश को उत्पन्न करते हैं जो अपने विशेष गुणों के कारण इंजिनीयरों तथा वैज्ञानिकों को उपयोगी प्रतीत होता है। इलेक्ट्रानिकी की परिभाषा में विकिरण को उत्पन्न करने वाला साधन, दोलित्र (औसिलेटर) कहलाता है, प्रवर्धक नहीं।

इससे भी बढ़ कर, अधिकांश लेसर, दृश्य प्रकाश को बिलकुल उत्सर्जित नहीं करते। वे तो अवरक्त या अदृश्य प्रकाश को उत्सर्जित करते हैं। यह कल्पना की जा सकती है कि लेसर तथा मेसर के सिद्धांत पर काम करने वाले साधन किसी दिन पराबैंगनी या तथाकथित काले प्रकाश को, एक्स किरणों को, यहां तक कि गामा किरणों को भी उत्सर्जित करने लगेंगे।

मेसर-अनुसंधान से बदल कर लेसर-अनुसंधान में काम करने वाले वैज्ञानिकों का आग्रह है कि लेसर को एक प्रकाशिक मेसर कहा जाना चाहिए। लेकिन इसके

जवाब में यह दलील दी जा सकती है कि चूँकि "प्रकाशिक" का अर्थ "सूक्ष्मतरंग" से बिलकुल भिन्न है अत : "विकिरण के उद्दीपित उत्सर्जन द्वारा प्रकाशिक सूक्ष्म-तरंग के प्रर्वधन" की बात करना हास्यास्पद है।

इसका उत्तर "प्रकाशिक मेसर" शब्द के प्रस्तावक यह कह कर देते हैं कि "मेसर" का अर्थ विकिरण के उद्दीपित उत्सर्जन द्वारा सूक्ष्मतरंग-प्रवर्धन है ही नहीं; इसका अर्थ तो है विकिरण के उद्दीपित उत्सर्जन द्वारा आणविक प्रवर्धन। अर्थात्, मेसर में M (एम०) माइक्रोवेव (सूक्ष्मतरंग) का नहीं अपितु मालीक्यूलर (आणविक) का है।

अगर यह कहा जाय कि मेसर अणुओं को प्रवर्धित नहीं करते तो जबाब मिलता है कि अपनी क्रियाविधि के लिए वे पदार्थ के अणुओं के व्यवहार पर निर्भर होते हैं।

इसमें शक नहीं कि कुछ मेसर तथा लेसर, आणविक प्रभावों पर निर्भर करते हैं। लेकिन इनमें से अधिकतर तो उपाणविक अर्थात् परमाणुओं, आयनों (ऐसे परमाणु जिनमें से एक या एक से अधिक इलेक्ट्रान निकल चुके होते हैं) और सम्भवतः स्वयं इलेक्ट्रानों पर भी निर्भर करते हैं।

हाल ही, मेसर तथा लेसर दोनों के लिए क्वान्टम-उपकरण पद का प्रयोग होने लगा है और यह कुछ जंचता भी है क्योंकि लेसर तथा मेसर दोनों की क्रिया की व्याख्या क्वान्टम यांत्रिकी के विज्ञान द्वारा की जा सकती है। सच पूछो तो, लेसरों तथा मेसरों में दिलचस्पी रखने वाले कुछ वैज्ञानिक तथा इंजिनीयर यत्न कर रहे हैं कि इंस्टीट्यूट आफ इलेक्ट्रिकल एण्ड इलेक्ट्रोनिक्स इंजिनियर्स (वैद्युत तथा इलेक्ट्रानिकी संबंधी इंजिनीयरों के संस्थान) के अन्दर ही क्वान्टम इलेक्ट्रानिकी सम्बन्धी एक व्यावसायिक दल बना लिया जाय। यह ठीक है कि फिलहाल "लेसर" शब्द, वैज्ञानिक शब्दकोश में पक्का जमा हुआ दीखता है, लेकिन हमें याद रखना चाहिए कि जिस विज्ञान को हम इलेक्ट्रानिकी कहते हैं वह किसी जमाने में तापायनिक इंजिनीयरी कहलाया करता था।

लेसर में खास बात क्या है ?

लेसर के प्रकाश के बाबत महत्त्वपूर्ण बात यह है कि यह संसक्त होता है। इस प्रकाश की सब की सब किरणें एक ही तरंग-लम्बाई या रंग की होती हैं और कदम मिला कर चलती हैं। गुण तथा प्रभाव की दृष्टि से लेसर का किरणपुंज सामान्य प्रकाश के किरणपुंज से उसी प्रकार भिन्न होता है जिस प्रकार ड्रिल-सिद्ध सिपाहियों की पलटन, घटिया लोगों की अव्यवस्थित भीड़ से भिन्न होती है।

लेसर से निकलने वाली प्रकाश तरंगें जब कदम मिला कर चलती हैं तब गजब के करिश्मे दिखा सकती हैं। कारण यह है कि किरणपुंज की प्रगति के दौरान उसकी ऊर्जा का क्षय नहीं होता। इससे इसमें, ऊर्जा को एक अतिनिश्चित स्थल पर तीव्र तथा संकेन्द्रित करने की क्षमता आ जाती है और प्रकाश के स्रोत की मार भी बहुत विस्तृत हो जाती है।

संसक्त प्रकाश के गुणों से कैसे-कैसे काम लिए जाते हैं, इसको प्रदर्शित करने के लिए लेसर के अनेक चमत्कारी करिश्मों में से तीन प्रस्तुत हैं :

(१) चूंकि इसका प्रकाश, दूरियों पर भी फैलता नहीं अतः लेसर, चन्द्रमा के पृष्ठ को प्रकाश के दो मील चौड़े वृत्त द्वारा प्रकाशित कर सकता है।

चन्द्रमा पर पड़ने वाले लेसर-किरण-पुंज (काला धब्बा) की तुलना रेडार-किरणपुंज-क्षेत्र (छायामय क्षेत्र) के साथ की गई है। (सौजन्य : रेथिआॅन)

(२) इसकी ऊर्जा एक सूक्ष्म बिन्दु पर संकेन्द्रित हो जाती है अतः यह मानव-नेत्र-गोलक में प्रकाश का एक छोटा सा ऐसा सूक्ष्मबिन्दु पैदा कर सकता है जो अलग हुए दृष्टि-पटल को पुनः यथास्थान टांक कर दृष्टि को लौटा लाता है।

(३) और चूंकि इसका विकिरण अतितीव्र होता है, यह कई फुट दूर पड़ी स्पात की १/८ इंच मोटी चादर में छेद कर देता है।

इन क्षमताओं ने अनुप्रयोगों की एक पूरी की पूरी श्रेणी को जन्म दे दिया है। सर्वेक्षणकर्त्ता भी लेसर-दूरीमापियों का उपयोग करते हैं और तोपखाने के अफसर भी अपनी तोपों को निशाने पर सधाने के लिए इनका उपयोग करते हैं। बाहय अंतरिक्ष में, प्रकाश को अवशोषित करने वाला वायुमण्डल बिलकुल नहीं होता, वहां अन्तरिक्ष-यानों के चालन में तथा संचार व्यवस्था में प्रचलित रेडार तथा रेडियो-साधनों के लिए लेसर, संपूरक सिद्ध होगा।

लेसर, धातु तथा अन्य पदार्थों को काट सकते हैं। लेकिन यह बहुत नामुमकिन है कि मशीन करने तथा धातुओं को काटने की अधिकांश संक्रियाओं में लेसर कभी इंजन से चलने वाले खराद या आक्सिएसिटिलीन ज्वाला का स्थान ले सकेगा। धातुओं को बिलकुल ठीक-ठीक मशीन करने तथा हीरों जैसे भंगुर (कुड़कीले) पदार्थों को मशीन करने में लेसर का उपयोग जरूर हो रहा है।

लेसर, धातुओं को और दृष्टि-पटलों को भी टांक सकता है। लेकिन यहां भी इसका उपयोग परिशुद्ध कार्य के लिए होता है, जैसे, सूक्ष्म इलेक्ट्रानी परिपथों का निर्माण। उधर, उच्च पर्वतशिखरों पर लगे विशाल लेसरों का विकास इस तरीके से किया जा रहा है कि अन्तर्महाद्वीपीय प्रक्षेपास्त्रों द्वारा आने वाले बमों से बचाव की व्यवस्था हो जाय।

जहां तक वैज्ञानिक का सम्बन्ध है, लेसर पहले ही अवशोषण-स्पेक्ट्रम विज्ञान में, अर्थात्, यौगिकों को इस बात से पहचानने के लिए कि वे प्रकाश की कौन सी

विशेष तरंग लम्बाइयों को अवशोषित करते हैं, बहुमूल्य साधन बन चुका है।

विकिरण-ऊर्जा

प्रकाश की किरणों का एक पुंज, इस्पात की चादर को जला कर उसमें छेद क्यों कर सकता है? इसलिए चूंकि प्रकाश, एक प्रकार की विकिरण-ऊर्जा होता है और लेसर, बहुत सी विकिरण-ऊर्जा को एक बहुत छोटे से स्थल में संकेन्द्रित कर देता है। विकिरण-ऊर्जा, दृश्य प्रकाश के अलावा और भी अनेक रूपों में मिलती है। यह रेडियो तरंगों के, पराबैंगनी तथा अवरक्त प्रकाश के, एक्स-किरणों के, गामाकिरणों के और अन्तरिक्ष (कॉस्मिक)—किरणों के रूप में भी रहती है।

तरंगलम्बाई तथा आवृत्ति

कभी-कभी विकिरण-ऊर्जा को तरंगें, अर्थात्, विद्युत्-चुम्बकीय तरंगें मान लेने से विचार करना सुगम हो जाता है। उस सूरत में, विकिरण-ऊर्जा के भिन्न-भिन्न रूपों को उनकी तरंग लम्बाइयों के आधार पर वर्गीकृत किया जा सकता है। शांत सरोवर में कंकड़ फेंकने से जो तरंगें बनती हैं, वे तो हम सब ने देखी हैं। वे, बारी-बारी से बनने वाले शिखरों तथा गर्तों की एक श्रेणी होती हैं। तरंग दैर्ध्य या तरंग लम्बाई उस दूरी को कहते हैं जो दो निकटवर्ती शिखरों या दो निकटवर्ती गर्तों के बीच होती है।

और जब कोई तरंग, शिखर से गर्त और गर्त से पुनः शिखर बन जाती है तो हम कहते हैं इसने एक चक्र या प्रत्यावर्तन पूरा कर लिया है। कोई तरंग एक सैकण्ड में जितने चक्र निष्पन्न कर लेती है उनकी संख्या को तरंग की आवृत्ति कहते हैं।

प्रकाश की तरंगें तथा अन्य सब विद्युत् चुम्बकीय तरंगें एक समान चाल से चलती हैं, यह गति है, एक सैकण्ड में १८६,००० मील या ३००,०००,००० मीटर। सब वैज्ञानिक नाप तोल मीटरी पद्धति से किए जाते हैं। मीटरी पद्धति में लम्बाई की मूल इकाई मीटर होती है—यह तीन फुट से जरा-सा अधिक होता है।

रेडियो-स्पेक्ट्रम

बिजली कम्पनी से प्राप्त होने वाली प्रत्यावर्ती धारा, ऐसी विद्युत् चुम्बकीय तरंग होती है जो एक सैकण्ड में ६० चक्र निष्पन्न करती है। इस प्रकार, सैकण्ड के १/६० भाग में या एक प्रत्यावर्त्तन की अवधि में, यह तरंग चलेगी ३००,०००,०००/६० या ५,०००,००० मीटर—न्यूयार्क से लॉस एंजेल्स की दूरी के लगभग। विद्युत् चुम्बकीय स्पेक्ट्रम विद्युत् चुम्बकीय ऊर्जा के भिन्न-भिन्न रूपों को ह्रासमान तरंग लम्बाई के अनुसार व्यवस्थित करता है। वसन्त की ऋतु में होने वाली बौछार के बाद जो इन्द्रधनुष निकलता है उसके लाल, नारंगी, पीले, हरे, नीले तथा बैंगनी स्पेक्ट्रम से तो अब लोग परिचित हैं। जब हम कांच के किसी प्रिज्म में से प्रकाश को गुजारते हैं तो श्वेत प्रकाश, इसी प्रकार अपने घटक वर्णों में फट जाता है। स्पेक्ट्रम, श्वेत प्रकाश के आवृत्ति घटकों को ह्रासमान तरंग लम्बाइयों के अनुसार व्यवस्थित करता है। ऐसे ही स्पेक्ट्रम, अवरक्त तथा पराबैंगनी क्षेत्रों में भी होते हैं लेकिन हम उन्हें देख नहीं सकते। मगर विशेष फिल्म का उपयोग करके उनकी फोटो उतारी जा सकती है। रेडियो तरंगें भी, विद्युत् चुम्बकीय स्पेक्ट्रम का भाग होती हैं।
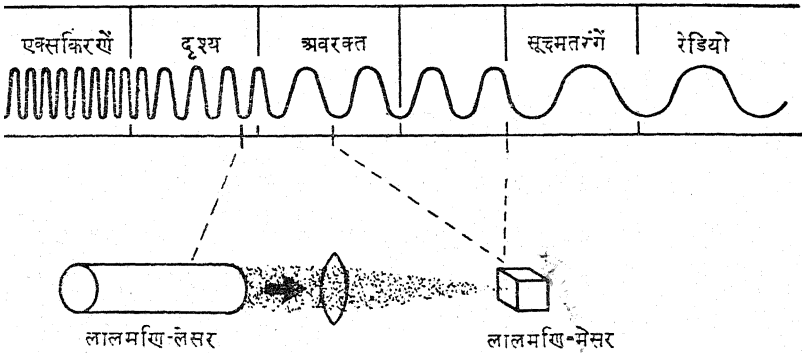
रेडियो-आवृत्तियों से एक्सकिरणों तक का विद्युत् चुम्बकीय स्पेक्ट्रम।
(सौजन्य : ह्यूफीज)

जो रेडियो-प्रसारणकेन्द्र, १,००० किलो-साइकिल प्रति सैकण्ड (याच क, प्रति सैकण्ड, १००० बार) की आवृत्ति से लेस होता है उसकी तरंग ३०० मीटर लम्बी होती है। समुद्र में नौ-चालन के काम आने वाले रेडार सेट की तरंग लम्बाई १० सेंटीमीटर के लगभग या ४ इंच के लगभग होती है। (एक सेंटीमीटर एक मीटर का १/१०० होता है)।

दृश्य स्पेक्ट्रम तथा अवरक्त

विकिरण-ऊर्जा, मानव नेत्र को सिर्फ तब दीखने लगती है जब यह ०.०००००००७५ मीटर की तरंग लम्बाई तक पहुंच जाती है। इस अवस्था में यह लाल रंग के रूप में दीखती है। प्रकाश की तरंग लम्बाइयों को नापने के लिए मीटर को मात्रक बनाने में कठिनाई रहती है अतः भौतिकी वैज्ञानिक एंगस्ट्रम मात्रक का उपयोग करते हैं। इसका संक्षिप्त रूप है Å (एं)। एक एंगस्ट्रम बराबर होता है १/१०,०००,०००,००० मीटर के। अतः हम कह सकते हैं कि दृश्य स्पेक्ट्रम का सीमान्तर ७,५०० एं (गहरालाल) से ४,००० एं या नीले तक है। इस के बीच में जो प्रदेश पड़ते हैं वे हैं नारंगी (लगभग ६,०००एं), पीला (लगभग ५,९०० एं) तथा हरा (लगभग ५,३०० एं)।

इस दृश्य स्पेक्ट्रम की सीमा बंधती है अवरक्त की दीर्घतर तरंगों द्वारा जिन्हें हम ऊष्मा के रूप में अनुभव करते हैं। उदाहरण के लिए, जैट इंजन के रेचन की तरंग लम्बाई ४०,००० एं होती है जब कि मानव शरीर की ऊष्मा की तरंग लम्बाई लगभग ९९,००० एं होती है।

धूप-धूसरणों से लेकर अंतरिक्षकिरणों तक

स्पेक्ट्रम के छोटी तरंग लम्बाई वाले या नीले सिरे की सीमा पराबैंगनी प्रदेश द्वारा बंधी होती है। धूप द्वारा त्वचा को पीला-लाल सा कर देने वाली पराबैंगनी किरणों की तरंग लम्बाई ३,००० एं के लगभग होती है। एक्सकिरणें इससे भी छोटी (१५० से १० एं तक) तथा गामा किरणें उन से भी छोटी (१·४ से ०·१ एं तक) होती हैं। गामा किरणें, न्यूक्लीय क्रिया की सहचारी

होती हैं और परमाणु बमों, हाइड्रोजन बमों तथा अपशिष्ट रेडियो एक्टिव द्रव्यों के कुछेक घातक प्रभाव इन्हीं के कारण उत्पन्न होते हैं। स्पेक्ट्रम के उच्चतम सिरे पर अंतरिक्ष किरणें (०·०१ से ०·००१ एं तक) होती हैं। बाह्य अंतरिक्ष से आने वाली इन विलक्षण चीजों के प्रभाव बहुत भयंकर होते हैं (ये, जैविक उत्परिवर्त्तन को पैदा कर सकते हैं) लेकिन इनको हम अभी तक बहुत कम समझ पाए हैं।

वैज्ञानिकों को चिरकाल से ज्ञात है कि विकिरण की ऊर्जा, अपनी आवृत्ति की समानुपाती होती है। अगर हम किसी शक्तिशाली प्रसारण केन्द्र के ऐन्टेना (श्रृंगक) के पास ही खड़े हों तब भी हम रेडियो तरंगों की उपस्थिति को अनुभव नहीं कर सकते। लेकिन अगर हम अपना हाथ रेडार के ऐन्टेना के सामने रखें तो हम थोड़ी सी ऊष्मा की अनुभूति प्राप्त कर सकते हैं। पराबैंगनी तरंगों की ऊर्जा, ऐसे कुछ लोगों पर वेदनापूर्वक प्रकट हो जाती है जो धूप का—मूर्खतावश—आवश्यकता से अधिक सेवन करते हैं। एक्सकिरणों तथा गामाकिरणों में जो वेधनक्षमता होती है उसके कारण इनका उपयोग रोग-निदान के लिए मानव अस्थियों के तथा आन्तरिक अंगों के छाया चित्र बनाने के लिए और प्रच्छन्न भ्रंशों की चिकित्सा के निमित्त निर्मित पुर्जों के निरीक्षण के लिए होता है। अतिवेधी या लघु एक्स-किरणों तथा गामाकिरणों का उपयोग, कैंसर तथा उससे सम्बद्ध रोगों की चिकित्सा के प्रसंग में, दुर्दम्य ऊतक को नष्ट करने में तो होता ही है।

विकिरण की प्रत्येक तरंगिका की ऊर्जा को "क्वान्टम" कहते हैं। इसको मापने के लिए विकिरण की आवृत्ति को प्लैंक के नियतांक (यह बराबर होता है ६·६२५ $\times$ १०$^{-२७}$ अर्ग सैकण्ड—२६ शून्य, प्रथम ६ के सामने) से गुणा किया जाता है। विकिरण के किसी स्रोत की तीव्रता इससे उत्सर्जित होने वाले उन क्वांटमों की संख्या पर निर्भर करती है जो किसी दी हुई अवधि में एक निर्दिष्ट सीमा को पार कर जाते हैं।

प्रतिदीप्ति

लेसर की क्रिया एक और अधिक परिचित, दृश्यघटना—प्रतिदीप्ति—की

समवर्गी होती है। प्रतिदीप्ति तब होती है जब विकिरण-ऊर्जा किसी विशेष पदार्थ के परमाणुओं या अणुओं से टकरा कर उस पदार्थ से और अधिक विकिरण-ऊर्जा उत्सर्जित करवाती है। प्रतिदीप्ति में एक विशेष गुण यह होता है: उत्सर्जित विकिरण सदैव, प्रारम्भिक विकिरण की अपेक्षा निम्नतर आवृत्ति (दीर्घतर तरंग-लम्बाई) का होता है।

वैज्ञानिक लोग प्रतिदीप्ति की व्याख्या इस प्रकार करते हैं: प्रत्येक परमाणु तथा अणु कतिपय ऊर्जा-अवस्थाओं में रह सकता है। जब परमाणु, ऊर्जा को अवशोषित करते हैं तब वे उच्चतर ऊर्जा-अवस्था में आ जाते हैं। इसके विपरीत, जब वे निम्नतर ऊर्जा अवस्था में लौटते हैं तब वे ऊर्जा को छोड़ते हैं या विकिरण को उत्सर्जित करते हैं।

मान लीजिए परमाणु एक कुंडलित स्प्रिंग है। जब स्प्रिंग पर कोई संपीडन नहीं होता तब यह अपनी मूल अवस्था में या विराम में होता है। जब आप स्प्रिंग को संपीडित करते हैं तब आप इसके तन्त्र में स्थितिज ऊर्जा का समावेश कर देते हैं। जब आप स्प्रिंग को निर्मुक्त करते हैं तब यह लौटने के लिए उछलता है और कम्पन करता है और गतिज ऊर्जा को निर्मुक्त करता है।

आपके टेलिवीजन सेट की चित्र नलिका में, समतल पट्ट की पीठ पर लगे फॉस्फर के पर्दे पर इलैक्ट्रान टक्करें मारते रहते हैं। यह गतिज ऊर्जा या तीव्रगति वाले इलेक्ट्रानों की गति की ऊर्जा, फॉस्फर के परमाणुओं को उत्तेजित करती है। जब ये परमाणु विश्रांत होने लगते हैं, चित्र नलिका का समतल पट्ट चमकने लगता है और आप प्रतिदीप्ति की कृपा से टेलिवीजन प्रोग्राम देखने लगते हैं।

जब कोई एक्स-रे-चिकित्सक, प्रतिदीप्तिदर्शी के जरिए आपका मुआयना करता है तब एक्सकिरणें आपके शरीर को वेध कर एक फॉस्फर पर्दे के परमाणुओं को उत्तेजित करती हैं। जब फॉस्फर विलेपन के परमाणु विश्रान्ति अवस्था में लौटते हैं, प्रतिदीप्तिदर्शी के पर्दे में हरी चमक आ जाती है और शरीर के प्रेक्षणाधीन भाग का छायाचित्र बना देती है।

निआन-नामपट्ट में, प्रत्यावर्ती धारा ऐसा विद्युत् चुम्बकीय क्षेत्र पैदा कर देती है जो नलिका में भरी निऑन गैस के अणुओं को विक्षुब्ध कर देती है। तीव्रता से गति करते हुए निआन अणुओं की टक्करें, इन अणुओं को ऊर्जा के उच्चतर स्तरों तक पहुंचा देती हैं। अतः जब वे विश्रान्ति की अवस्था में आते हैं तब निआन-नामपट्ट की विशिष्ट नारंगी-लाल चमक को उत्सर्जित करते हैं।

सामान्य प्रतिदीप्ति-लैम्प भी ऊर्जा विनिमय के इसी सिद्धान्त पर काम करता है। लैम्प की नलिका की भीतरी दीवारों पर बेरिलियम आक्साइड का विलेपन चढ़ा होता है। नलिका के अन्दर की तरफ, लैम्प-नलिका के सिरों पर लगे इले-क्ट्रोडों के बीच आर्क का तीव्र विसर्जन होता रहता है। इस आर्क-विसर्जन में पराबैंगनी प्रकाश की प्रचुरता होती है, जिससे फास्फर-अणु ऊर्जित हो जाते हैं ; जब ये अणु विश्रान्ति में आते हैं, लैम्प से ऐसा नीला प्रकाश उत्सर्जित होता है जो दिन के प्राकृतिक प्रकाश के सदृश होता है।

अब तक हमने क्वान्टम ऊर्जा के विनियम के अनेक उदाहरण देख लिए हैं लेकिन कभी किसी ने सुना नहीं कि निआन-नामपट्ट से या प्रतिदीप्ति-लैम्प से इस्पात की चादर में छेद किया गया हो या चन्द्रमा को प्रकाशित किया गया हो। तो, लेसर में ऐसी क्या खूबी होती है जो इसके कुछ कमजोर चचेरे भाइयों में नहीं होती ?

आवृत्ति-संसक्तता

उत्तर है : लेसर की संसक्तता। प्रतिदीप्ति की घटना के जितने उदाहरण पहले दिए गए हैं उन सब में उत्सर्जित विकिरण का स्पेक्ट्रम विस्तृत होता है। चूंकि यह विकिरण बेतरतीब होता है अतः कुछ तरंगिकाएं एक दूसरे से मिल कर काम करती हैं और कुछेक एक दूसरी का विरोध करती हैं।

आवृत्ति की संसक्तता से बड़ा फर्क पड़ जाता है। इसका मतलब होता है कि सारी की सारी उत्सर्जित ऊर्जा की तरंग लम्बाई एक समान होती है। जब ऐसा होता है तब आपको सचमुच उपयोगी परिणाम प्राप्त हो सकते हैं । किसी

कॉकटेल पार्टी में होने वाले अस्पष्ट कोलाहल को असंसक्त ध्वनि के उदाहरण के तौर पर लिया जा सकता है। यह ध्वनि बहुत दूर तक नहीं जाती और इसका कोई विशेष अर्थ भी नहीं होता। लेकिन अगर आप उस सारी ध्वनि-ऊर्जा को, पुलिस की सीटी या साइरेन (भोंपू) में संकेन्द्रित कर दें तो आप शहर के आधे भाग को सोते से जगा सकते हैं।
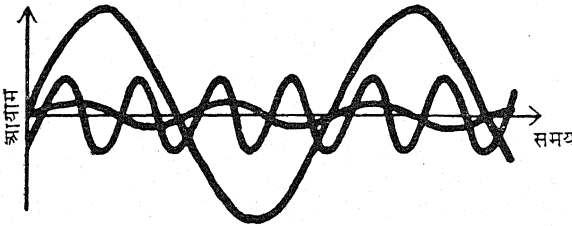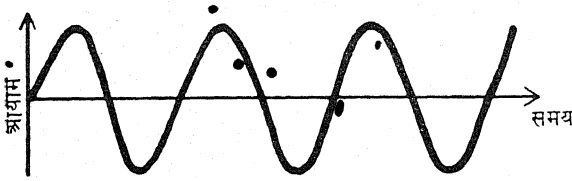
ऊपर : आवृत्ति-संसक्त-विकिरण, नीचे : आवृत्ति-असंसक्त-विकिरण
(सौजन्य : रेथिऑन)

अनेक वर्ष पहले इंजिनीयरों को पता लग गया था कि जब वे किसी रेडियो प्रेषित्र (ट्रांसमिटर) के सारे निर्गम को एक ही आवृत्ति पर संकेन्द्रित कर देते हैं तो संचार अधिक सक्षम तथा अर्थपूर्ण हो जाता है। लेकिन आवृत्ति-संसक्तता के, क्षमता के अतिरिक्त, और भी विशेष लाभ हैं। संसक्त प्रकाश के किरण-पुंज को बहुत कुछ ऐसे ही मॉडुलित (आरोपित) किया जा सकता है जैसे कि रेडियो संकेत को। मॉडुलन वह प्रक्रम है जिस के द्वारा संगीत या वाणी जैसी बुद्धिगम्य चीज को रेडियो तरंग जैसे किसी तथाकथित वाहक संकेत पर आरोपित किया जाता है।

असंसक्त प्रकाश के किरणपुंज को तो अतिप्रारम्भिक तरीके से ही मॉडुलित किया जा सकता है, ऐसे ही जैसे कि जहाजों के मध्य मौर्स-संकेतों के आद्रान-प्रदान के लिए, बटन दबाकर तथा छोड़कर, रुक-रुक कर दीखने वाले प्रकाशों के मामले में किया जाता है। लेकिन लेसर के आवृत्ति-संसक्त किरणपुंज को वाणी और संगीत और यहां तक कि टेलिवीजन चित्र जैसे जटिल संकेतों द्वारा भी मॉडुलित किया जा सकता है।

आवृत्ति-संसक्त प्रकाश, आवृत्ति-गुणन में भी सहायता देता है; इस तकनीक से अतिनियंत्रित मगर अपेक्षया निम्न रेडियो-आवृत्ति को उच्चतर निर्गम वाली आवृत्ति में परिवर्तित किया जा सकता है। ६,९४३ एं वाले लालमणि-लेसर के निर्गम को दुगना करके ३,४७२ एं तक पहुंचाया जा सका है जिससे गहरे लाल रंग का निवेश, निर्गम की अवस्था में नीला-बैंगनी या लगभग पराबैंगनी हो जाता है। लेसर प्रकाश की तरंग लम्बाइयों को इतने परिशुद्ध रूप में बताया जा सकता है। इसका कारण है कि लेसर के प्रकाश का उत्सर्जन परमाण्विक कक्षाओं के मध्य इलेक्ट्रानों के विस्थापन पर निर्भर होता है और प्रत्येक तरंग लम्बाई किसी विशिष्ट कक्षा-विस्थापन या तथाकथित क्वान्टम-झंप की अभिलक्षण होती है।

लेसर-किरणपुंजों को मिश्रित भी किया जा सकता है। यथा: लालमणि-लेसर ऐसे दो क्रमों में काम करता है जो एक दूसरे से कुछ भिन्न होते हैं। इन क्रमों को एक सूक्ष्मतरंग-प्रकाशनलिका में मिश्रित किया जा सकता है। इन क्रमों की आवृत्तियों के अन्तर से एक ऐसा सूक्ष्मतरंग संकेत प्राप्त होता है जिससे, रेडियो या टेलिवीजन के प्रचलित तकनीकों द्वारा, काम लिया जा सकता है। इस गुण के कारण कुछेक इंजिनीयरों के लिए सम्भव हो गया है कि लेसर-किरणपुंजों पर टेलिवीजन चित्र आरोपित कर दें और टेलिवीजन संकेत को कई फुट के फासले तक भेज कर पुनः प्राप्त कर लें।

लेसर की आवृत्ति-संसक्तता से वैज्ञानिकों को विशेष रूप से संतोष प्राप्त हुआ

है। लेसर के आविष्कार से पहले, स्पेक्ट्रम के निचले या रेडियो-सिरे के संकेतों को ही संसक्त रूप में परिणत किया जा सकता था। रेडियो तकनीकों की क्षमता प्राय: एक मिलीमीटर तरंग लम्बाई के संकेत पैदा करने तक ही सीमित रहती है।

अगर स्पेक्ट्रम के किसी और स्थल पर एकवर्णी (या एक-आवृत्ति) संकेतों की आवश्यकता होती थी तो किसी असंसक्त स्रोत के सामने समुचित फिल्टर रख कर उन्हें पैदा करना पड़ता था। यह विधि संतोषजनक नहीं थी। इसके दो कारण थे : यह बड़ी अकुशल थी क्योंकि जितनी ऊर्जा से लाभदायक काम लिया जा सकता था उससे कई गुणा ऊर्जा, उस स्रोत को पैदा करनी पड़ती थी। दूसरा कारण यह था कि फिल्टरित निर्गम कभी भी सच्चे अर्थों में संसक्त नहीं होता था अत: मॉडुलन, आवृत्तिगुणन तथा मिश्रण कभी भी सन्तोषजनक नहीं होते थे। लेकिन अब तो अवरक्त (अर्थात् दृश्य प्रकाश) के "समीपवर्ती" प्रदेश से लेकर पराबैंगनी के समीपवर्त्ती प्रदेश तक का सारा का सारा नया खण्ड, अन्वेषण के लिए खुल गया है और यह प्रमाणित होता जा रहा है कि इस लेसर-चालक श्रृंखला के उच्चतम तथा निम्नतम सिरों पर उपस्थित अंतरालों को, सम्बद्ध तकनीकों का प्रयोग करके भरा जा सकता है।

स्थानिक संसक्तता

आवृत्ति-संसक्तता तो सारे चित्र का एक भाग मात्र है। लेसर का निर्गम, स्थानिक तौर पर भी संसक्त होता है। इसका मतलब है कि सब तरंगिकाएं, एक दूसरे के साथ कदम मिलाकर निकलती हैं। स्थानिक संसक्तता के कारण किसी यंत्र की क्षमता भी बढ़ जाती है। स्थानिक असंसक्तता तथा स्थानिक संसक्तता के अन्तर को समझने के लिए कल्पना कीजिए किसी बेड़े के ऐसे त्यक्त पोतों के अव्यवस्थित समूह की जिस में से प्रत्येक अपने-अपने तरीके से अपना चप्पू चला रहा है और उनकी तुलना कीजिए आठ चप्पुओं वाली तेज नौका को खेने वाले सुप्रशिक्षित नाविकों के समन्वित, सक्षम कार्य के साथ।
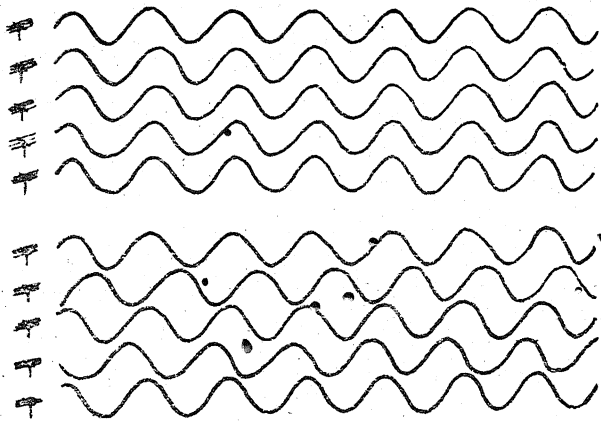
ऊपर : स्थानिक तौर पर संसक्त विकिरण
नीचे : स्थानिक तौर पर असंसक्त विकिरण
(सौजन्य : रेथिऑन)

लालमणि-लेसर

संसक्त प्रकाश को सफलता से उत्पन्न करने का सब से प्रथम साधन था लालमणि-लेसर। लेसरों में प्रयुक्त होने वाली लालमणियां, कृत्रिम हीरे होते हैं। इनके बड़े-बड़े क्रिस्टल बनाने के लिए एलुमिनियम तथा क्रोमियम आक्साइड को संगलित किया जाता है। कृत्रिम लालमणि में क्रोमियम की मात्रा थोड़ी-सी होती है—प्राय: १/५०० प्रतिशत। लेकिन यही क्रोमियम है जिस पर लेसर की क्रिया निर्भर होती है।

लालमणि का क्रिस्टल, बेलनाकार होता है, व्यास $\frac{१}{४}$ इंच के लगभग और लम्बाई १$\frac{१}{२}$ से २ इंच। देखने में गुलाबी लगता है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि लालमणि में अवशोषण बैंड दो होते हैं। एक ५,६०० एं पर और दूसरा ४,१०० एं पर। इसका मतलब यह है कि जब आप लालमणि को प्रकाश के सम्मुख रखते हैं तो पीला-हरा तथा नीला प्रकाश अवशोषित हो जाता है। श्वेत प्रकाश

(जो कि सब रंगों का मिश्रण होता है) में पड़ा पीले, हरे तथा नीले रंग का यह घाटा, नेत्र तक संचरित होने वाले शेष प्रकाश को उसका विशिष्ट गुलाबी रंग प्रदान कर देता है। सच पूछो तो लालमणि में थोड़ी सी प्राकृतिक प्रतिदीप्ति भी होती है लेकिन यह दृष्टिगोचर नहीं होती।

लेसर-क्रिस्टल को पालिश करके इसके दोनों सिरों को प्रकाशिक समतल पट्टिकाओं का रूप दे देना आवश्यक होता है। दोनों सिरों को रजतित भी किया जाता है। एक पर मोटा विलेपन किया जाता है जब कि दूसरे,अर्थात् निर्गम वाले सिरे को ऐसे विलेपन द्वारा रजतित किया जाता है जो इसे, इस पर पड़ने वाले प्रकाश के लगभग ९२ प्रतिशत भाग को ही परावर्तित करने देता है।
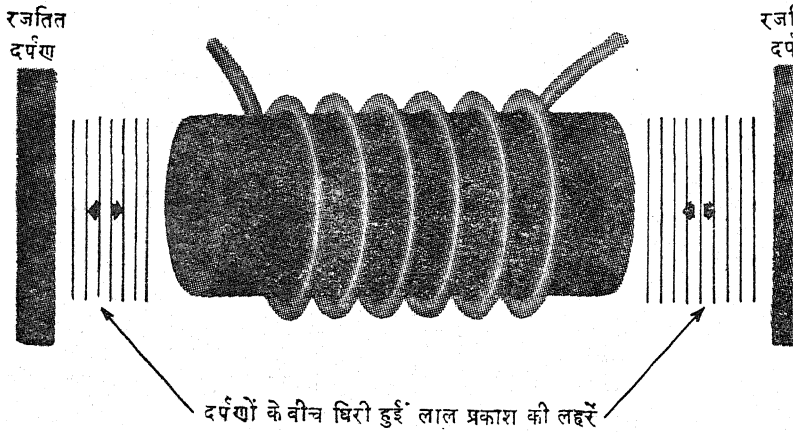
लालमणि-लेसर के इस खुले रूप में लालमणि, दर्पण तथा कुंडलित दमक (फ्लैश) नलिका दिखाए गए हैं।

(सौजन्य : ह्यू फीज)

लालमणि की इस शलाका को अब जीनॉन की बनी कुंडलिनी-रूप दमक (फ्लैश) नलिका में रखा जाता है। यह नलिका वैसी ही होती है जैसी कि कैमरों की
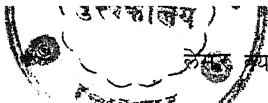
इलैक्ट्रानी दमक (फ्लैश) संलगनियों में बहुत काम आती है। लालमणि शलाका के जीनॉन की दमकनलिका द्वारा किरणन के प्रक्रम को प्रकाशित पंपन कहते हैं। इस दमक बत्ती के निर्गम में पीला-हरा प्रदेश बहुत होता है।

किसी परमाणु (आयन भी परमाणु ही होता है लेकिन अपने एक या एक से अधिक इलेक्ट्रानों से रहित होता है) की ऊर्जा का स्तर, उसके इलेक्ट्रानों की अवस्था पर निर्भर करता है। और परमाणु, सौर परिवार के लघु रूप के सदृश होता है। सूर्य के स्थान पर इसके केन्द्र में एक धनात्मक न्यूक्लियस होता है और ग्रहों के स्थान पर होती है, इलेक्ट्रानों की एक विशिष्ट संख्या। ये इलेक्ट्रान, न्यूक्लियस के चारों ओर परिक्रमण तथा अपने-अपने अंशों पर चक्रण (स्पिन) करते रहते हैं। लेकिन सौर परिवार के ग्रहों से इनमें यह भेद होता है कि प्रत्येक इलेक्ट्रान सिर्फ एक ही कक्षा में नहीं रहता बल्कि कई कक्षाओं में घूमता रहता है। इससे भी बढ़कर, ये इलेक्ट्रान, न्यूक्लियस के चारों ओर भिन्न-भिन्न दिगंशीय संवेगों (चाल) से परिक्रमण करते रहते हैं, यहां तक कि अपने चक्रण की दिशा भी बदल लेते हैं। कक्षा, संवेग या चक्रण का प्रत्येक परिवर्त्तन एक विविक्त ऊर्जा स्तर के साथ संगत होता है।

उदाहरणार्थ, जब किसी परमाणु को ऊर्जा प्रदान की जाती है तब कोई इलेक्ट्रान किसी ऐसी कक्षा में चला जा सकता है जो न्यूक्लियस से अधिक दूरी पर हो। कहा यूं जाता है कि इस परमाणु ने ऊर्जा अवशोषित कर ली है और ऊर्जा की उच्चतर या अधिक उत्तेजित अवस्था या स्तर पर पहुंच गया है। अगर अब यह इलेक्ट्रान अपनी मूल कक्षा में लौटता है तो परमाणु, ऊर्जा को निर्मुक्त कर देता है और इससे एक निश्चित और परिशुद्ध तरंग लम्बाई का प्रकाश उत्सर्जित होता है। इसे बयान यूं किया जाता है कि परमाणु विश्रान्त होकर ऊर्जा की निम्नतर या कम उत्तेजित अवस्था या स्तर पर आ गया है। जब दमक (फ्लैश) नलिका से निकलने वाली ५,६०० एं वाली हलकी तरंगिकाएं (फोटान) लालमणि-शलाका को किरणित करती हैं तब वे लालमणि में विलीन, क्रोमियम के कुछेक आयनों की ऊर्जा को निम्नतम अवस्था (१) से उठाकर अवशोषण-बैंड की

सीमा में स्थित विभिन्न स्तरों तक पहुंचा देती हैं। फिर, क्रोमियम के ये आयन तुरन्त ही ऊर्जा के इन उच्चतर स्तरों से गिरने लगते हैं। कुछेक तो सीधे निम्नतम अवस्था—स्तर (१)—में आ जाते हैं जैसा कि प्राकृतिक प्रतिदीप्ति के मामले में होता है। लेकिन अन्य आयन, एक मध्यवर्ती या तथाकथित मितस्थायी अवस्था (२) तक गिर कर रुक जाते हैं। इन को पड़ा रहने दिया जाय तो क्रोमियम के ये पश्चादुक्त आयन भी गिरते-गिरते स्तर (१) तक उतर जाते हैं और परिणाम तब भी वही होता है—प्राकृतिक प्रतिदीप्ति। लेकिन ये आयन, एक संक्षिप्त मगर मापनीय अवधि तक स्तर (२) में रहते हैं और यही वह बात है जो लेसर की क्रिया को संभव कर देती है।

जिस अवधि में क्रोमियम के ये आयन स्तर (१) तक लौटने की कोशिश कर रहे होते हैं, फ्लैश नलिका अन्य क्रोमियम आयनों को किरणित करती रहती है। सच पूछो तो, अवस्था (२) से अवस्था (१) तक आने की गति की अपेक्षा अवस्था (१) से अवस्था (३) में और फिर अवस्था (२) में आने की द्वि-चरण गति अधिक तेज होती है।

उद्दीपित उत्सर्जन

जब क्रोमियम के आयन स्तर (२) में पुंजित हो रहे होते हैं तभी एक और स्थिति प्रकट हो रही होती है। शीघ्र ही, स्तर (१) की अपेक्षा स्तर (२) में क्रोमियम के आयनों की संख्या अधिक हो जाती है। इसे आबादी का प्रतिलोमन कहते हैं और यह लेसर क्रिया के लिए आवश्यक है।

जब क्रोमियम के आयनों की आबादी का प्रतिलोमन हो जाता है तो लेसर, एक ऐसे स्प्रिंग के सदृश होता है जो कसा होता है और जिसका घोड़ा चढ़ा हुआ होता है। इसे छोड़ने के लिए एक चाभी की जरूरत होती है। विकिरण के उद्दीपित उत्सर्जन का यही मतलब होता है। उद्दीपन वह चाभी होता है जो कसे हुए स्प्रिंग को छोड़ देता है।

यह चाभी ऐसे प्रकाश का एक फोटोन होता है जो ठीक उस तरंग लम्बाई का होता है जो उत्सर्जित करनी होती है (६,९४३एं)। जब क्रोमियम का कोई यादृच्छिक
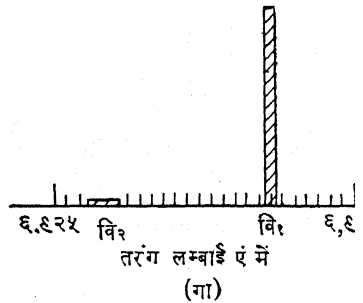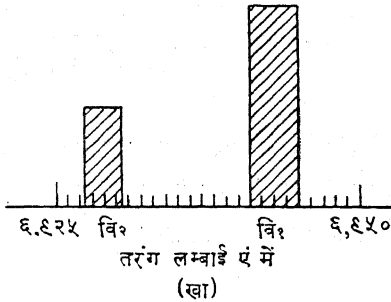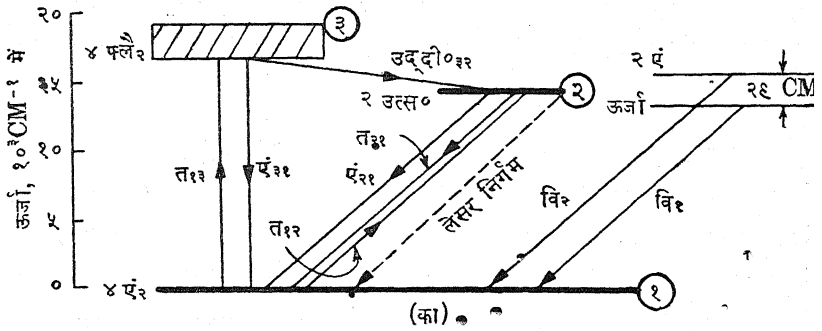
(का) पुस्तक में वर्णित, लालमणि-लेसर में होने वाले ऊर्जा के संक्रमण। (खा) निम्न-स्तर पंपिंग। (गा) उच्चस्तर पंपिंग। दिखाया गया है कि इन में से अन्तिम प्रक्रम किस प्रकार ऊर्जा को एक ही तरंग लम्बाई पर संकेन्द्रित कर देता है।

(सौजन्य : इलेक्ट्रानिक्स)

आयन स्वतः स्तर (२) से स्तर (१) पर आकर ६,९४३ एं के किसी फोटोन को उत्सर्जित करता है तो उत्सर्जन आरम्भ हो जाता है। यह फोटोन आसपास के

मितस्थायी स्तर (२) आयनों से टकराता है जिससे वे और फोटोनों को उत्सर्जित करते हैं और ये फोटोन, क्रमशः, अन्य मितस्थायी फोटोनों को चालू कर देते हैं।

जब फोटोन, शलाका पर चल रहे होते हैं तब इन में से कुछ बेलन के पार्श्वों से बाहर निकल आते हैं और लुप्त हो जाते हैं। अन्य फोटोन सिलिण्डर (बेलन) के रजतित सिरों से टकराते हैं और परावर्तित होकर शलाका में लौट आते हैं। ये परावर्तन, उन फोटोनों के साथ पक्षपात करनें का यत्न करते हैं जो सिलिण्डर के दीर्घ अक्ष के समान्तर चल रहे होते हैं और इस प्रकार अब सिलिण्डर के रजतित सिरों के बीच, आगे पीछे उछलती फोटोनों की एक धारा बन जाती है। फोटोनों की संख्या और बढ़ जाती है और, परिणामतः, प्रकाश की किरणों का पुंज तीव्रतर हो जाता है क्योंकि इस धारा में पहले से उपस्थित फोटोन, क्रोमियम के और भी अधिक मितस्थायी आयनों को चालू करके उन से भी विकिरण उत्सर्जित करवाते रहते हैं।

अन्ततः फोटोनों की यह धारा, काफी तीव्रता धारण कर लेती है और लालमणि के अंशतः रजतित सिरे से एकवर्णी (एक रंग या आवृत्ति वाली) तथा स्थानिक रूप से संसक्त प्रकाश के एक अकेले स्पन्द के रूप में फूट पड़ती है।

समांतर किरणें

लालमणि-शलाका के अंशतः रजतित सिरे से निकलने वाली किरणों के पुंज प्रायः बिलकुल समान्तर होते हैं और यही वह पहलू है जो लेसर किरणपुंज के लिए चांद तक पहुंचना मुमकिन कर देता है। तापदीप्त लैम्प जैसे पुराने प्रकाश-स्रोत तो उद्‌गम पर बिन्दु रूप होते हैं : उनकी प्रकाश किरणें गोलाकार ढांचे में उत्सर्जित होती हैं। सामान्य किरणों को फोकसन-दर्पणों तथा लैंसों के जरिए समान्तर बनाया जा सकता है लेकिन ऐसे प्रकाशिक तन्त्र बहुत सक्षम नहीं होते। प्रकाश की किरणों का पुंज अपसारी हो जाता है और परिणामतः बड़ी दूरियों पर जा कर अपनी तीव्रता को खो बैठता है। लेकिन चूंकि लेसर से आने वाले किरणपुंज,

प्रारम्भ से ही समान्तर होते हैं अतः वे अत्यन्त बड़ी दूरियों पर भी प्रायः समान्तर ही रहते हैं।

द्रव तथा प्लास्टिक लेसर

लेसरों में सर्वप्रथम बना था, लालमणि-लेसर। लेकिन अब तो यह, प्रकाशिक रीति से पम्प किए हुए लेसरों के वर्ग का एक सदस्य मात्र है। फिर, लालमणि-लेसरों के भी कई भेद हैं। प्रारम्भिक लालमणि-लेसर, कक्ष तापमान पर काम किया करते थे। लेकिन बाद के यन्त्रों को इस प्रकार डिजाइन किया गया है कि वे निम्नतापी तापमानों या परमशून्य के आसपास के तापमानों (—२७३° सेंटीग्रेड) पर भी काम कर सकें। निम्नतापी तापमानों को प्राप्त करने के लिए बहुधा लेसर को द्रव नाइट्रोज नया द्रव हीलियम में डुबोया जाता है। इस प्रकार शीतलित लेसर, दमकों की श्रेणी के बजाय संसक्त प्रकाश के संतत किरणपुंज को उत्सर्जित करते हैं।

प्रकाशिक रीति से पम्पित अन्य लेसरों में अनेक प्रकार के क्रिस्टलीय पदार्थ शामिल होते हैं जिनमें से अधिकांश अपमिश्रित होते हैं अर्थात् यूरोपियम या

→

आगे के दो पृष्ठों पर : लालमणि-लेसर कैसे काम करता है। पम्प किया हुआ प्रकाश लालमणि शलाका (ए) को किरणित कर देता है जिससे कुछ परमाणु अपनी मितस्थायी अवस्था (बी) तक उठ जाते हैं। एक परमाणु संसक्त विकिरण (सी) को स्वतः उत्सर्जित करता है जिससे आसपास के दूसरे परमाणु (डी) चालू हो जाते हैं। पार्श्वों के समान्तर उत्सर्जित फोटोन, दर्पणों के बीच आगे-पीछे उछलते रहते हैं और दूसरे परमाणुओं (ई) को तब तक चालू करते रहते हैं जब तक कि कुछ-कुछ पारदर्शक सिरे से प्रकाश की धारा (एफ) फूट नहीं पड़ती।

(सौजन्य : इलेक्ट्रानिक्स)

पंपन प्रकाश
कुछ-कुछ पारदर्शक दर्पण
(ए)
लालमणि शलाका
अपारदर्शक दर्पण
D
A
B
C
(बी)
A
D
B
a
a
a
(सी)

आपेक्षिक तीव्रता
प्रारम्भक पंपन
0
४००
८००
१,२००
(अ)
प्रकाश निर्गम
D
A
B
C
(ब)
a+d
a+b
a+c
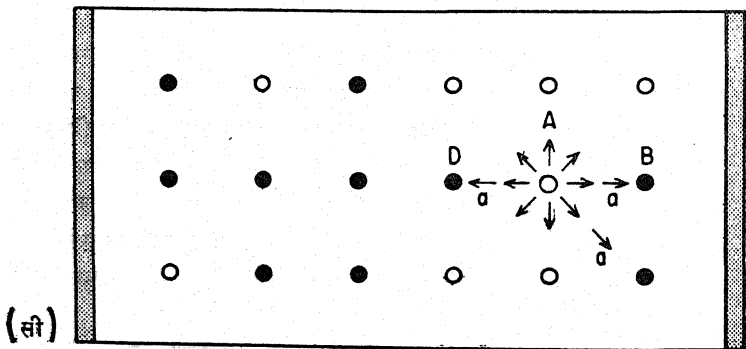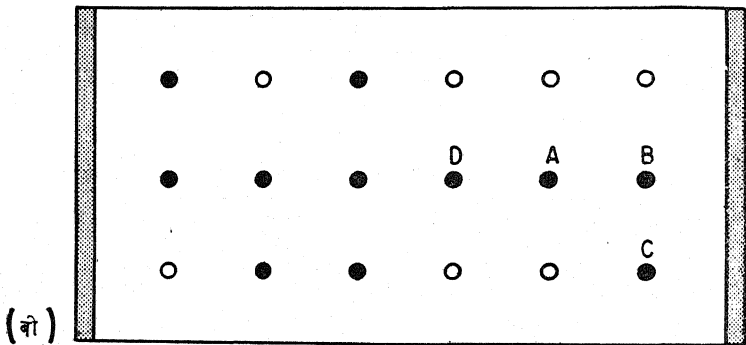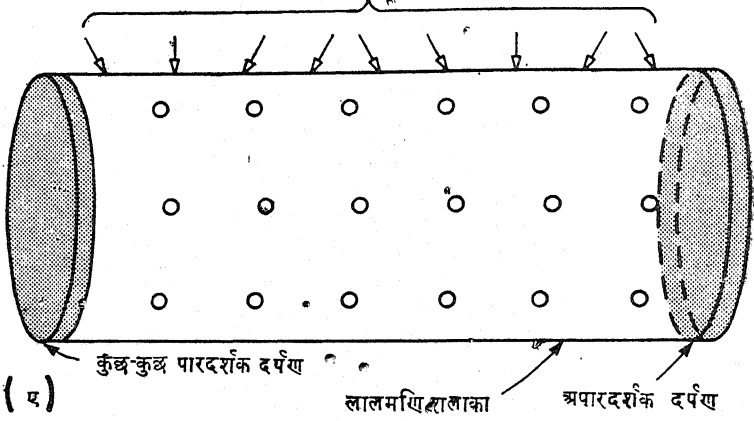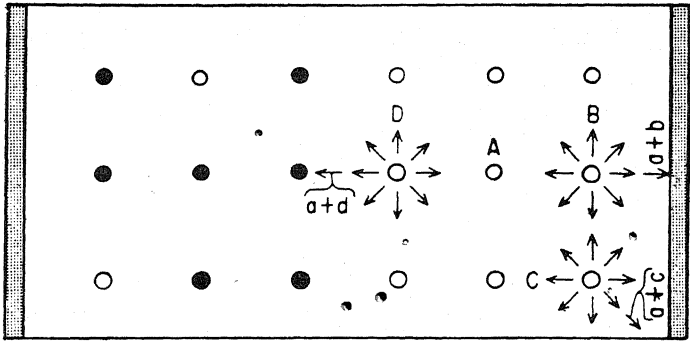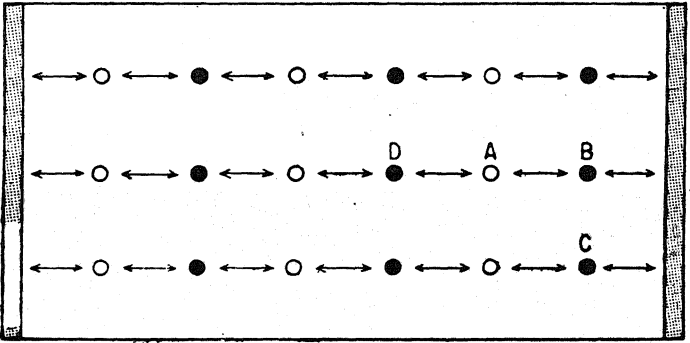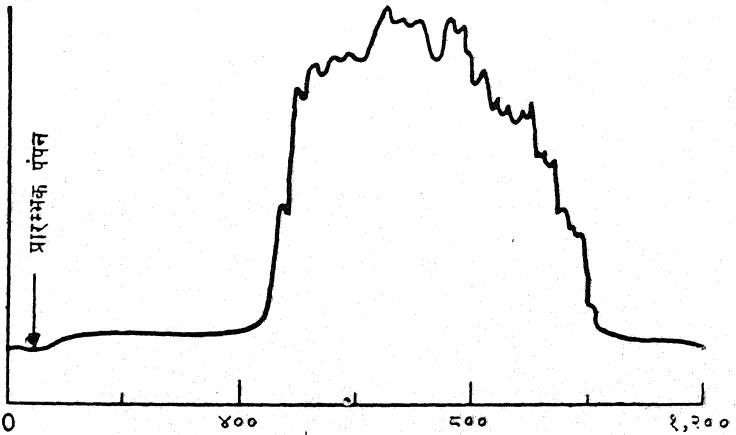
नियोडाइमियम जैसे किसी दुर्लभ-मृदा तत्त्व की या किसी एक्टिनाइड तत्त्व (यूरेनियम वाले वर्ग के किसी भारी धातु) की छोटी-छोटी मात्राओं के निषेचन द्वारा अशुद्ध किए गए होते हैं। प्रकाशिक रीति से पम्पित लेसर, अपमिश्रित कांच (अशुद्धता-मिश्रित कांच) से, कांचमणि-कोटर में भरे द्रव या गैस से या प्लास्टिक तन्तुओं की पुलियों से भी बनाए जा चुके हैं।

गैसीय लेसर

गैसीय लेसर, लेसर के दूसरे सामान्य वर्ग को निरूपित करता है। इसका कार्यकारी माध्यम एक मिश्रण होता है जिसमें हीलियम तथा निआॅन गैसें अतिनिम्न

हीलियम-निआन गैस-लेसर।

(सौजन्य : रेथिआॅन)
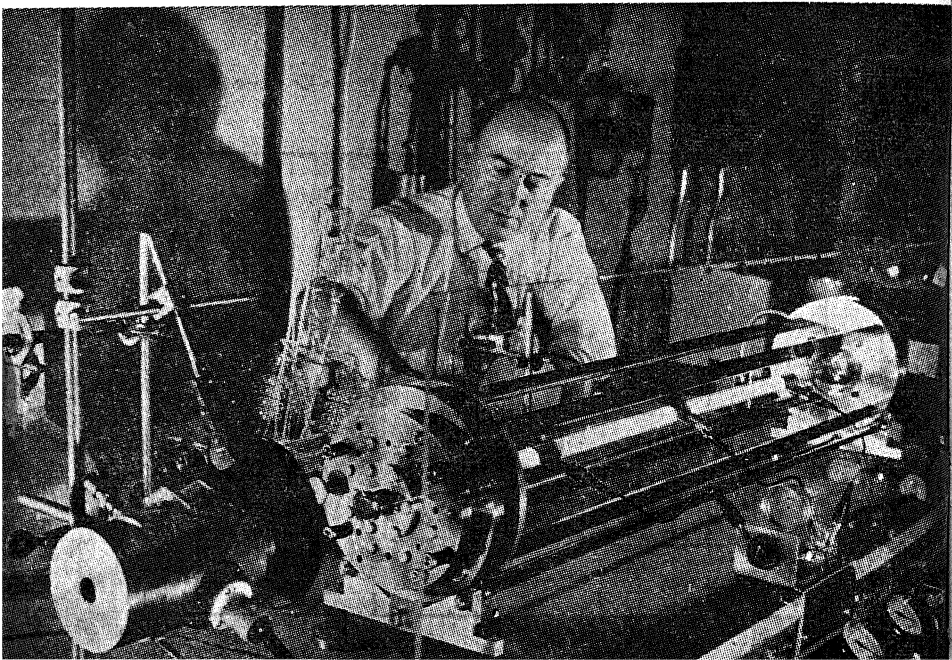
दबाव पर होती हैं (निआन का दबाव : पारद का ०·१ मिलिमीटर तथा हीलियम का दबाव : पारद का १·० मिलिमीटर)। यह गैस, पाइरेक्स कांच की बनी एक ऐसी नली में होती है जो बेलनाकार होती है, लगभग एक मीटर लम्बी होती है तथा व्यास में १७ मिलिमीटर होती है। नली के प्रत्येक सिरे पर काचमणि की एक पट्टिका होती है जिसे घिस कर प्रकाशिक दृष्टि से समतल किया हुआ होता है और जिसके भीतरी पृष्ठ पर १३ तहों वाला परावैद्युत् (डाइलेक्ट्रिक या विद्युत्-अचालक) विलेपन किया होता है। इस विलेपन से वही प्रभाव पैदा होता है जो कि लालमणि-शलाका के हल्के रजतित सिरे से होता है। फैब्री-पिरोट व्यतिकरणमापी (इंटरफेरोमीटर) की कृपा से काचमणि-पट्टिका दर्पणों के अन्तरों में इतने परिशुद्ध परिवर्तन किए जा सकते हैं कि इष्टतम आन्तरिक परावर्तन प्राप्त किया जा सके। इस उपकरण के दोनों सिरों से लेसर-किरणपुंज उत्सर्जित होता है।

वैद्युत पंपिंग

गैस लेसर में प्रकाशिक पंपिंग नहीं होता और न ही इसमें लालमणि लेसर की तरह एक सैकण्ड में तीन या चार बार स्पन्द होता है। यह तो संतत तरंग के तरीके से काम करता है, इसका उद्दीपन एक रेडियो-आवृत्ति-क्षेत्र से प्राप्त होता है हालांकि कुछ गैस-लेसरों में वांछित विसर्जन उत्पन्न करने के लिए दिष्ट धारा का उपयोग भी किया जा चुका है। एक प्रारूपिक गैस-लेसर में, ऊर्जा का उद्गम होता है ५० वाट के ऐसे प्रेषित्र (ट्रांसमिटर) से जो २९ मेगासाइकिल प्रति सैकण्ड की वाहक आवृत्ति पर काम करता है। अन्य आवृत्ति भी इतना ही बढ़िया काम दे सकती है ; इस आवृत्ति को तो महज इसलिए चुना गया है क्योंकि यह उस बैण्ड (पट्टी) के भीतर पड़ती है जिसकी व्यवस्था संघीय संचार आयोग ने औद्योगिक, वैज्ञानिक तथा चिकित्सा संबंधी उपयोगों के लिए कर रखी है। यह प्रेषित्र, धातु की बनी तीन कुंडलियों के द्वारा गैस-नली के साथ जुड़ा होता है।

रेडियो-आवृत्ति-जनित्र, गैस में ऐसे वैद्युत विसर्जन को पैदा करता है जो

हीलियम गैस के परमाणुओं को २³एस कहलाने वाली उत्तेजित अवस्था में पहुंचा देता है। यह एक मितस्थायी अवस्था होती है जिसमें हीलियम के अणु समय की एक परिमित अवधि तक रहते हैं।

जब हीलियम के ये मितस्थायी, निम्नतम अवस्था के निऑन परमाणुओं से टकराते हैं तब हीलियम के परमाणु, अपनी ऊर्जा को निऑन के परमाणुओं में स्थानान्तरित कर देते हैं और तत्काल निम्नतम अवस्था में आ जाते हैं। साथ ही साथ, निऑन के परमाणु तथाकथित २एस अवस्था में जा पहुंचते हैं क्योंकि निऑन की २एस अवस्था का ऊर्जा स्तर लगभग इतना ही होता है जितना कि हीलियम के २³एस अवस्था का ऊर्जा स्तर होता है।
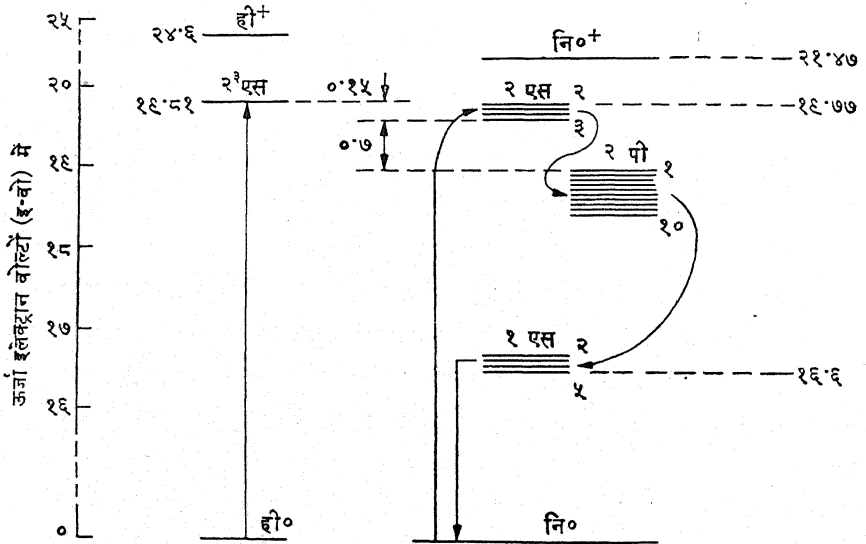
हीलियम-निऑन लेसर में ऊर्जा के स्तर। (सौजन्य : इलेक्ट्रानिक्स)

इस अभिक्रिया में निऑन की तीन उत्तेजित अवस्थाएं काम आती हैं : २एस, २पी तथा १एस अवस्थाएं। हमारी मुख्य दिलचस्पी है, २एस (उच्चतर)

तथा २ पी (निम्नतर) अवस्थाओं के बीच होने वाले संक्रमण में। २ एस एक मितस्थायी अवस्था है। सच पूछिए तो २एस बैण्ड (पट्टी) में चार तथा २पी पट्टी में दस अवस्थाएं होती हैं। सिद्धान्ततः ऊर्जास्तर में संभावित संक्रमणों या अधोमुखी परिवर्तनों की संख्या ३० है और इन में से प्रत्येक से उत्सर्जित होने वाले विकिरण की अपनी-अपनी विशिष्ट तरंग लम्बाई होती है। वास्तविकता यह है कि इन में से केवल पांच संक्रमणों ने अब तक के उद्दीपित उत्सर्जनों में कोई महत्त्वपूर्ण भाग लिया है। ये सब अवरक्त प्रदेश के पास की तरंग लम्बाइयों के अनुरूपी हैं। इन उत्सर्जनों में से सब से शक्तिशाली है ११,५३० एं का।

जैसा कि लालमणि-लेसर के मामले में होता है, निऑन परमाणुओं की प्रवृत्ति होती है कि २ एस अवस्था में ही पुंजित होते जांय और देहली-ऊर्जा, निवेश ऊर्जा की वह मात्रा होती है जो २ एस अवस्था के निऑन परमाणुओं की आबादी को २ पी अवस्था वालों की आबादी के बराबर कर दे। जब निऑन का कोई यादृच्छिक परमाणु स्वतः २ एस अवस्था से २ पी अवस्था में संक्रमण करता है तब ११,५३० एं वाला विकिरण संसक्त उत्सर्जन को उद्दीपित कर देता है।

११,५३० एं वाला फोटोन, आसपास के मितस्थायी निऑन परमाणुओं को उद्दीपित करता है और फिर वे भी तेजी से गिरते हैं और उसी तरंग लम्बाई पर अपने फोटोनों को उत्सर्जित करते हैं। जो फोटोन फैब्री-पिरोट दर्पणों के अनुलम्ब उत्सर्जित होते हैं वे दर्पणों के बीच, आगे-पीछे तब तक उछलते रहते हैं जब तक कि वे बाहर फूट पड़ने लायक पर्याप्त तीव्रता धारण नहीं कर लेते। अन्य दिशाओं में उत्सर्जित होने वाले फोटोन, नली की दीवारों के रास्ते लुप्त हो जाते हैं और संसक्त उत्सर्जन में भाग नहीं लेते।

अपने कार्य के दौरान, गैस लेसर एक नारंगी लाल दीप्ति से घिरा होता है लेकिन इस प्रकाश का इसके कार्य से कोई सम्बन्ध नहीं होता। गैस-लेसर का अधिकांश संसक्त-निर्गम, अवरक्त प्रदेश में होता है और आंखों से देखा नहीं जा सकता। इसकी दृश्य दीप्ति, निऑन के उन उत्तेजित परमाणुओं के स्वतः प्रवर्तित

संक्रमण का परिणाम होती है जो विकिरण के उद्दीपित उत्सर्जन में शामिल नहीं होते। सच पूछो तो यह दीप्ति किसी भी निऑन-नामपट्ट की दीप्ति के समरूप ही होती है।

अन्तःक्षेपण-लेसर

लेसर का तीसरा मूल-प्ररूप होता है: अन्तःक्षेपण-लेसर। अन्तःक्षेपण-लेसर में गैलियम आर्सेनाइड का या गैलियम आर्सेनाइड-फास्फाइड का बना एक अर्धचालक डायोड होता है।

डायोड एक इलेक्ट्रानिक पुर्जा होता है। इसमें यह गुण होता है कि एक दिशा में तो यह धारा को आसानी से चलाता है लेकिन विपरीत या प्रतिलोम दिशा में प्रायः बिल्कुल नहीं। अन्तःक्षेपण लेसर, एक अग्राभिनत अर्धचालक डायोड होता है। यह धारा को उसकी सुगम दिशा में चलाता है।

अर्धचालक एक ऐसा पदार्थ होता है जो धारा को ऐसी अच्छी तरह तो नहीं चलाता जैसे ताम्बे जैसी चीजें चलाती हैं लेकिन गन्धक जैसे विद्युत् रोधियों से अधिक अच्छी तरह चलाता है। सब से अधिक काम आने वाले अर्धचालक हैं, सिलिकोन तथा जर्मेनियम नाम की धातुएं, लेकिन कुछेक यौगिक भी काम दे सकते हैं और अन्तःक्षेपण-लेसर के लिए गैलियम आर्सेनाइड उपयोगी सिद्ध हुआ है। गैलियम, सिलिकोन से अच्छा चालक है और आर्सेनिक (संखिया), कुछ हीनतर चालक है। अतः जब इनको मिला दिया जाता है तो वे प्रायः वही प्रभाव उत्पन्न कर देते हैं जो सिलिकोन का होता है।

अब, किसी अर्धचालक पदार्थ के खण्ड में से एक डायोड बनाना हो तो आवश्यक है कि इसमें मिलावट की जाय। इस प्रयोजन के लिए टेल्यूरियम तथा जिंक (जस्ता), इन दो अशुद्धताओं को उच्च तापमान पर इस खण्ड में विसरित किया जाता है। आर्सेनिक परमाणु के मुकाबले, टेल्यूरियम के परमाणु में एक संयोजी-इलैक्ट्रान अधिक होता है। अतः जब गैलियम आर्सेनाइड खण्ड के कुछ आर्सेनिक

परमाणुओं का स्थान टेल्यूरियम परमाणु लेते हैं तब कुछेक अबाध इलैक्ट्रान बच रहते हैं। चूंकि इलैक्ट्रान ऋण-आवेशित होता है अतः टेल्यूरियम की मिलावट वाले गैलियम आर्सेनाइड को ऋ-रूप या आवेशी गैलियम आर्सेनाइड कहते हैं।

इसके विपरीत, जिंक (जस्त) में गैलियम के मुकाबले, एक संयोजी इलेक्ट्रान कम होता है। अतः जब जिंक के कुछ परमाणु, गैलियम के कुछेक परमाणुओं का स्थान लेते हैं तब अनेक कोटर या इलैक्ट्रान-हीन स्थल बच रहते हैं। इस कारण, जिंक की मिलावट वाले गैलियम आर्सेनाइड को ध-रूप या धन-आवेशी गैलियम आर्सेनाइड कहते हैं।

जिस सीमा पर ऋ-रूप तथा ध-रूप गैलियम आर्सेनाइड के प्रदेश मिलते हैं उसे अर्धचालक संधि कहते हैं। अगर किसी बैटरी के या इलेक्ट्रानी विद्युत् यंत्र के धनात्मक टर्मिनल को एक अधिचालक डायोड के ध-रूप प्रदेश से तथा ऋणात्मक टर्मिनल को ऋ-रूप प्रदेश से जोड़ दिया जाय तो यह डायोड अग्र-अभिनत होगा और धारा आसानी से अर्धचालक संधि के पार जाती रहेगी। अगर विद्युत्-यन्त्र के ऋणात्मक टर्मिनल को ध-प्रदेश की ओर तथा धनात्मक टर्मिनल को ऋ-प्रदेश की ओर जोड़ दिया जाय तो डायोड अपनी प्रतिलोम दिशा की ओर अभिनत होगा और धारा का प्रवाह अर्धचालक सन्धि के पार प्रायः नहीं पहुंच सकेगा।

यह काम कैसे करता है ?

अभी वैज्ञानिकों को पक्का पता नहीं है कि अन्तःक्षेपण-लेसर में ठीक-ठीक क्या ऊर्जा-संक्रमण होते हैं। लेकिन सब से अधिक निश्चित लेसर-क्रिया, संधि के ध-पार्श्व पर होती प्रतीत होती है। इससे संकेत मिलता है कि संधि के पार तक प्रवाहित होने वाली धारा का निर्माण करने वाले कुछ ऊर्जस्वी इलैक्ट्रान, इलैक्ट्रानहीन स्थलों (कोटरों) से पुनः संयक्त हो जाते हैं और इस पुनः संयोग के प्रक्रम में ऊर्जा को निर्मुक्त करते हैं।

अन्तःक्षेपण लेसर, अर्धचालक डायोड के टर्मिनलों के मध्य अत्यन्त उच्च-आवृत्ति धारा को गुजार कर संसक्त प्रकाश को उत्सर्जित करता है। परिणाम यह

होता है कि प्रकाश, अर्धचालक संधि को निर्दिष्ट करने वाली रेखा के साथ-साथ उत्सर्जित होता है। पहले तो प्रकाश असंसक्त रूप में प्रकट होता है लेकिन ज्यूं-ज्यूं धारा की तीव्रता को बढ़ाया जाता है, उत्सर्जन संसक्त होता जाता है। इसमें शक नहीं कि अपेक्षया छोटे डायोड में से गुजरती हुई यह विद्युत्-धारा, डायोड को तेजी से गर्म कर देती है। ऐसी चरम ऊष्मा, अर्ध-चालक संधि को नष्ट कर सकती है अतः पेशतर इसके कि डायोड से काम लिया जाय उसे निम्नतापस्थापी या दोहरी बोतल में डुबोया जाता है, अंदरली बोतल में द्रव्य हीलियम तथा बाहरली में द्रव नाइट्रोजन भरी होती है। साथ ही, धारा को प्रायः स्पंदित किया जाता है, लगातार नहीं गुजारा जाता।

आई० बी० एम० द्वारा आविष्कृत अर्धचालक अन्तःक्षेपण लेसर का डिजाइन।
(सौजन्य : इलैक्ट्रानिक्स)
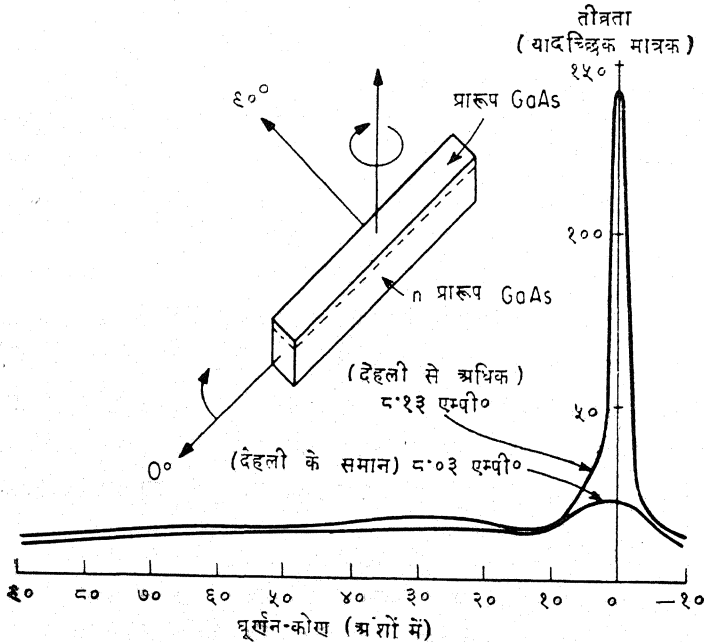
प्रारूपिक अन्तःक्षेपण-लेसर की आकृति, समकोणीय समान्तर षट्फलक की होती है (छह पार्श्वों वाला ठोस खण्ड, जिसके आमने सामने के पृष्ठ समान्तर होते हैं) । इसकी लम्बाई, इसकी चौड़ाई से लगभग दस गुणी होती है। एक प्रारूपिक यूनिट की लम्बाई-चौड़ाई होती है $\frac{१}{१०} \times \frac{१}{१०} \times १\frac{१}{४}$ मिलीमीटर इसके पार्श्व खूब पालिश किए हुए होते हैं और प्रकाश को परावर्तित करके लेसर में वापस भेजते रहते हैं जिससे संसक्त प्रकाश का उत्सर्जन, इस खण्ड के वर्गाकृति पार्श्वों से, समान्तर किरणों के रूप में होता रहता है। रजतन की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि यह खण्ड स्वयं धात्विक होता है और पालिश हो जाने के बाद इसके पार्श्व, खण्ड के भीतर उत्पन्न प्रकाश किरणों को परावर्तित करते रहते हैं।

इस खण्ड के आमने सामने के आयताकृति पार्श्वों पर विद्युत्-धारा का प्रयोग किया जाता है। इस धारा का प्रवाह, अर्धचालक संधि पर लंबतः पड़ता है। अर्धचालक संधि, एक संकीर्ण तल या प्रदेश होता है जो इस खण्ड को इसके दीर्घ अक्ष की दिशा में काटता है।

इस डायोड के पालिशदार पार्श्वों से होने वाला परावर्त्तन उन तरंगों की सहायता अधिक करता है जो इस सन्धि के समान्तर स्थित वर्गाकृति सिरों से आ रही होती हैं। और चूंकि पुनः संयोजन का प्रक्रम सारे के सारे अर्धचालक सन्धि-तल के साथ-साथ चल रहा होता है, इस सन्धि के साथ-साथ चलने वाली संसक्त प्रकाश तरंगें, अन्य कोटर-इलेक्ट्रान युगलों से होने वाले विकिरण को भी उद्दीपित करती रहती हैं और लेसर के वर्गाकृति पार्श्वों पर से फूट पड़ने से पहले इस तरंग की तीव्रता बढ़ती जाती है।

गैलियम आर्सेनाइड लेसर, अवरक्त के पास के प्रदेश में ८,४०० एं के संसक्त प्रकाश को उत्सर्जित करता है। यह प्रकाश, मानव नेत्रों के लिए अदृश्य होता है। गैलियम आर्सेनाइड-फास्फाइड लेसर, गहरे लाल प्रदेश से, ७००० ए का संसक्त प्रकाश उत्सर्जित कर चुके हैं। फिर, लेसर में फास्फोरस की मात्रा को बदल कर, स्पेक्ट्रम के अवरक्त के पास के तथा गहरे लाल रंग के सारे प्रदेशों में रंग को बदला जा सकता है। इंडियम, एंटिमनी तथा गैलियम, आर्सेनिक और

फास्फोरस से युक्त अनेक अन्तराधातुक यौगिक भी लेसर-क्रिया उत्पन्न करने की क्षमता प्रदर्शित कर रहे हैं। इस बात की रिपोर्ट मिली है कि सिलिकोन-कार्बाइड के एक डायोड ने नीला-बैंगनी प्रकाश उत्सर्जित किया है लेकिन इस सफलता का पक्का प्रमाण अभी नहीं मिला है।

जिस लेसर-विशेष का हमने वर्णन किया है उसमें से गुजरी हुई विद्युत् धारा १० ये २५ या इससे भी अधिक एम्पियरों तक की हो सकती है। इससे निम्न धाराओं पर, उत्सर्जन असंसक्त होता है और संधिक्षेत्र के एक थोड़े से भाग से ही सम्बद्ध होता है। ज्यूं-ज्यूं धारा की शक्ति बढ़ाई जाती है, प्रकाश की असंसक्त चिंगारियों या यत्रतत्रिक उत्सर्जन का क्षेत्र संधि के साथ-साथ फैलता जाता है और संसक्त उत्सर्जन को संधि के केन्द्रीय भाग के पास देखा जा सकता है।

तुलना

इस प्रकार, लेसर के तीन मुख्य प्रकाश हुए : प्रकाशिकतया पंपित लेसर ; ये क्रिस्टलीय भी हो सकते हैं, काच के, द्रव के, गैसीय, या प्लास्टिक भी। रेडियो-आवृत्ति या दिष्ट-धारा-पंपित गैस लेसर। तथा अर्धचालित डायोड लेसर जिन्हें उच्च-आवृत्ति-धारा के अन्तःक्षेपण द्वारा पंपित किया जाता है।

गैसीय लेसर

गैस-लेसर से जो संसक्त प्रकाश उत्सर्जित होता है वह प्रायः अवरक्त प्रदेश में होता है। गैस लेसरों का सब से अधिक उपयोग स्पेक्ट्रमविज्ञान जैसे वैज्ञानिक अन्वेषणों में और आपेक्षिकता-सिद्धान्त के कुछ परिणामों की जांच जैसे, आकाश तथा काल में किए जाने वाले परीक्षणों में होता है। इन अन्वेषणों में गैस लेसर इस लिए उपयोगी होता है क्योंकि इसका निर्गम, सब से अधिक संसक्त होता है और क्योंकि गैस लेसरों से, कक्षतापमान पर भी, संतत निर्गम आसानी से प्राप्त किया जा सकता है।

चूंकि गैसीय लेसर, स्पन्दनों के बजाय संतत तरंग की प्रणाली से कार्य करते

हैं अतः वे वाणी तथा संगीत या टेलिवीजन चित्रों के प्रेषण जैसे अनेक संचार-परीक्षणों के लिए, प्रकाशतः पंपित लेसरों से अच्छे सिद्ध हुए हैं।

फिर, चूंकि गैस लेसरों का निर्गम, किसी भी लेसर के मुकाबले अधिकतम संसक्त होता है—(उपकरण का यांत्रिक कम्पन ही एक मात्र ऐसी चीज है जो हीलियम-निऑन गैस लेसर को उसकी ११,५३०एं की केन्द्रीय आवृत्ति से विचलित कर सकता है)—इनका उपयोग, आईंस्टाइन के आपेक्षिकता-सिद्धांत के परीक्षणात्मक प्रमाण को जांचने जैसे वैज्ञानिक अध्ययनों के लिए तथा परिशुद्ध घूर्णाक्षस्थापी (जाइरोस्कोप) के निर्माण के लिए किया जा चुका है।

प्रकाशतः पंपित लेसर

प्रकाशतः पंपित लेसरों का उपयोग तब होता है जब धातु को जलाने, आंख के नाजुक आपरेशन करने, परिशुद्धतया वेल्ड तथा मशीन करने जैसे कामों के लिए उच्च ऊर्जा की आवश्यकता होती है। अभी तक प्रकाशतः पंपित लेसरों में से सब से अधिक उपयोग, लालमणि-लेसर का ही हो रहा है। यह उन थोड़े से लेसरों में से एक है जिनके निर्गम को देखा जा सकता है। गैस लेसरों में से प्रायः सभी तथा प्रकाशतः पंपित लेसरों के अधिकांश प्ररूप, अवरक्त प्रदेश में क्रिया करते हैं। प्रकाशतः पंपित लेसरों में से अधिकांश ऐसे स्पन्दन उत्सर्जित करते हैं जिनकी पुनरावृत्ति दर अपेक्षतया निम्न होती है। इस लेसर से संतत निर्गम तभी प्राप्त किया जा सकता है जब इसे निम्नतापस्थापी या द्रव हीलियम तथा नाइट्रोजन वाली दोहरी बोतल में रखा जाय। लालमणि-लेसर का भौतिक रूप,गैस लेसर के मुकाबले सरलतर होता है लेकिन इसका उत्तेजन तन्त्र कुछ अधिक जटिल होता है। गैस लेसर के लिए सिर्फ एक सरल रेडियो-प्रेषी की आवश्यकता होती है जब कि लालमणि लेसर के लिए एक इलेक्ट्रानी क्षणदीप की तथा एक विशेष जीनॉन-दमक नलिका या परावर्तकों के सावधानी से डिज़ाइन किए हुए तन्त्र की आवश्यकता होती है।

अन्तःक्षेपण लेसर

भौतिक रूप की दृष्टि से अन्तःक्षेपण लेसर, लालमणि-लेसर से भी सरल

होता है, गैस लेसर से भी। उत्तेजन के लिए इसे विद्युत् की अल्पवर्धित दिष्ट धारा की ही आवश्यकता होती है लेकिन क्रिया के लिए इसे प्रायः निम्नतापस्थापी में रखा जाता है। अन्तःक्षेपण लेसर, स्पेक्ट्रम के रक्त तथा अवरक्त प्रदेशों के भीतर की, संसक्त निर्गम की सारी की सारी आवृत्तियों को उत्पन्न कर सकते हैं। इनका निर्गम संतत या संततप्राय होता है और ये भी ऐसे संचार-परीक्षणों में उपयोगी सिद्ध हुए हैं जिनमें वाणी, संगीत और टेलिवीजन चित्रों का भी प्रेषण हुआ है। निम्न आवृत्ति की विद्युत् धारा द्वारा, कक्षतापमान पर काम करने वाले गैलियम आर्सेनाइड डायडों की, सुवाह्य संचारतन्त्रों में उपयोग तो आरम्भ भी हो चुका है। हालांकि इन यन्त्रों का अवरक्त निर्गम, संसक्त नहीं होता फिर भी इनके द्वारा तीस मील के परास (दायरे) में संचारण किए जा चुके हैं।

सार्वत्रिक संसक्तता

विद्युत्-चुम्बकीय स्पेक्ट्रम की सब आवृत्तियों पर संसक्त उत्सर्जन उत्पन्न करने का स्वप्न, हमारे विज्ञान अर्से से देख रहे हैं। क्वांटम यन्त्रों ने इस दिशा में महत्त्वपूर्ण योगदान किए हैं लेकिन अभी बहुत कुछ करना बाकी है। ऐसा सुझाव दिया गया है कि सब के सब नए यन्त्रों के लिए "मेसर" शब्द के विविध रूप गढ़े जायं, उनके लिए भी जिनका निर्माण अभी होना है। यथा : (रेडियो आवृत्ति वालों को) रेसर, (माइक्रोवेव या सूक्ष्मतरंग वालों को) मेसर, (इंफ्रारेड या अवरक्त वालों को) इरेसर, (लाइट या प्रकाश वालों को) लेसर, (अल्ट्रावायलेट या पराबैंगनी वालों को) यूवेसर, (एक्सकिरण वालों को) एक्सेसर, (गामाकिरण वालों को) गेसर। एक प्रमुख वैज्ञानिक ने एक मजाकिया सुझाव यह भी दिया है कि डार्कनेस एम्प्लिफिकेशन बाई स्टिमुलेटेड एमिशन आफ रेडिएशन (विकिरण के उद्दीपित उत्सर्जन द्वारा अन्धकार के प्रवर्धन) के लिए "डेसर" नाम का भी प्रयोग किया जाना चाहिए।

इस सब से स्पष्ट है कि लाभ, आद्यक्षर संग्रह-नामों से खिलवाड़ करते रहने में नहीं अपितु क्वान्टम यन्त्रों की चर्चा करने में है। (यह निर्दिष्ट करने में है कि वे कंपित्र हैं, प्रवर्धक हैं या संनादी जनित्र हैं) और महत्त्व की तरंग-लम्बाई को

पदनामित करने में है। फिर भी, यह एक जीवित तथ्य बन गया प्रतीत होता है कि न सिर्फ सूक्ष्म तरंग-क्षेत्र (मोटे तौर पर १,००० मेगासाइकल प्रति सैकण्ड) में अपितु इससे भी निम्नतर आवृत्तियों पर काम करने वाले वर्तमान या भावी यंत्रों के लिए "मेसर" पद का प्रयोग होता रहेगा, चाहे वे प्रवर्धक हों, चाहे कंपित्र।

इसी प्रकार, प्रतीत होता है कि "लेसर" पद भी, स्पेक्ट्रम के निकट-अवरक्त, दृश्य, तथा निकट-पराबैंगनी भागों में काम करने वाले प्रवर्धकों तथा कंपित्रों, दोनों के उल्लेख के लिए काम आता रहेगा। लेसरक्रिया चाहे सुदूर-अवरक्त (सूक्ष्म तरंगों के आसपास) तक चली जाय, चाहे सुदूर-पराबैंगनी (एक्सकिरणों) के आसपास, ये नाम नहीं बदलेंगे।

लेकिन सम्भव है कि जब हम संसक्त एक्सकिरणों तथा गामाकिरणों को सफलतापूर्वक पैदा कर लेंगे तब कोई और नाम चले और, जैसा कि ऊपर जिक्र किया जा चुका है, "गेसर" नाम का उछाला जाना पहले ही शुरू हो चुका है।

मेसर

मेसर, प्राय: सच्चे अर्थों में प्रवर्धक होते हैं और लेसरों की तरह के जनित्र नहीं होते। इसका तात्पर्य यह है कि वे एक दुर्बल संकेत को ग्रहण करके उसे शक्ति के उच्चतर स्तर वाला बना कर उत्सर्जित करते हैं। मेसर, ३०० मेगासाइकल प्रति सैकण्ड (१०० सेंटीमीटर या एक मीटर की तरंग लम्बाई) तथा १००,००० मेगासाइकल प्रति सैकण्ड (३ मिलिमीटर) के मध्य कार्य करते हैं।

प्रसंगवश यह भी कह देना चाहिए कि मिलिमीटर-तरंग-अनुसन्धान भी चल रहा है जिसका मेसरों से वास्ता नहीं पड़ता। यह रिपोर्ट मिल चुकी है कि "टोर्नाडोट्रोन" नाम की एक विशेष सूक्ष्मतरंग नलिका का निर्गम ५००,००० मेगासाइकल प्रति सैकण्ड या ०·६ मिलिमीटर की तरंग लम्बाई का है।

प्रारूपिक मेसर, एक ऐसे क्रिस्टल से बना होता है जिसमें क्रोमियम भी होता है। इसे एक ऐसी सूक्ष्म तरंग नलिका के निर्गम द्वारा पंपित किया जाता है जो

एक ऐसी आवृत्ति पर कार्य करता है जो ग्रहणीय आवृत्ति से बहुत अधिक उच्च होती है। यह सूक्ष्म-तरंग-संकेत, क्रोमियम के आयनों को पंपित करके एक उच्च मगर मितस्थायी ऊर्जा स्तर पर पहुंचा देता है।

एक विशेष, निम्नतर सूक्ष्मतरंग-आवृत्ति पर आने वाले संकेत, क्रोमियम आयनों को उद्दीपित करते हैं ताकि वे ऊर्जा के उच्चस्तर से निम्नतम स्तर में आने से पहले मध्यवर्ती स्तर तक गिरें। ऐसा करने में वे आने वाले संकेत की आवृत्ति वाले विकिरण को ही उत्सर्जित करते हैं और इस प्रकार उसे प्रवर्धित करते हैं।

शोर या अवांछित संकेतों का समावेश न हो जाय इस के लिए मेसर प्रवर्धकों को एक शक्तिशाली चुम्बक के ध्रुव-भागों के बीच रखा जाता है और उनसे एक ऐसी दोहरी बोतल के अन्दर काम लिया जाता है जिसके अन्दर की तरफ द्रव हीलियम तथा बाहर की तरफ द्रव नाइट्रोजन होता है।

संसार भर में रेडियो-खगोलिकी की लगभग एक दर्जन वेधशालाएं, दूरस्थ ग्रहों, तारागणों तथा नीहारिकाओं से उत्सर्जित होने वाली रेडियो-आवृत्तियों को पकड़ने के लिए मेसर-प्रवर्धकों का उपयोग कर रही हैं। अनेक केन्द्र, अनुवर्ती उपग्रहों तथा अन्तरिक्ष खोजियों के लिए मेसर-प्रवर्धकों से काम लेते हैं। "टेल्स्टार" तथा "रिले" जैसे कक्षा में परिक्रमा करते हुए संचार-उपग्रहों से आने वाले रेडियो तथा टेलिवीजन संकेतों का अभिग्रहण करने वाले कुछ केन्द्र भी ऐसा ही करते हैं। सम्भव है कि सशस्त्र सेना के विशेष रेडार तथा संचार यन्त्रों में मेसर प्रवर्धकों का उपयोग होता हो। लेकिन अगर ऐसा है तो भी रक्षा विभाग बतायेगा नहीं।

अवरक्त लेसर (इंफ्रारेड लेसर या इरेसर)

अनेक प्रकार के लेसर ऐसे हैं जो स्पेक्ट्रम के लगभग १३,००० एं के प्रकाश से लेकर दृश्य प्रकाश तक के सारे प्रदेश को अपने दायरे में ले लेते हैं। इससे स्पेक्ट्रम में ३ मिलिमीटर की तरंग लम्बाई से लेकर ०·०१३ मिलिमीटर तक का एक अन्तराल बच रहता है। रेडियो स्पेक्ट्रम के मिलिमीटर-तरंग वाले तथा सबमिलिमीटर-

तरंग वाले प्रदेश तथा गुनगुने और अल्पोष्ण पदार्थों से होने वाले विकिरण को धारण करने वाला सुदूर-अवरक्त बैण्ड इस अन्तराल में शामिल होता है।

लेसरों में नये रंग

दृश्य क्षेत्र में प्रगति इतनी अच्छी नहीं हुई है। थोड़े से लेसर ही ऐसे हैं जो दृश्य प्रकाश पैदा करते हैं और, जैसा कि हम लिख चुके हैं, उस प्रकाश का अधिकांश गहरा लाल होता है। लालमणि-लेसर तो है ही ; दूसरी अनेक विधियों से भी लाल प्रकाश पैदा किया जा चुका है : एक लेसर द्वारा जिसमें कैल्सियम फ्लोराइड का ऐसा क्रिस्टल होता है जिसमें सेमेरियम नाम की दुर्लभ मृदा विलीन की हुई होती है ; एक प्लास्टिक नलिका के अन्दर स्थापित यूरोपियम कीलेट से (कीलेट एक जटिल कार्बनिक या हाइड्रोकार्बन अणु होता है जिसमें एक परमाणु किसी धातु का होता है ; इस मामले में यूरोपियम नाम की दुर्लभ मृदा का परमाणु), गैलियम-आर्सेनाइड-फास्फाइड लेसर की सहायता से, तथा कुछेक हीलियम-निऑन वाले गैस लेसरों की सहायता से।

ऐसे लेसरों की मांग की जा रही है जो रक्त के अतिरिक्त दूसरे रंगों को पैदा कर सकें। नौसेना चाहती है कि कोई नीले-हरे प्रकाश वाला लेसर बने चूंकि समुद्रजल के वेधन के लिए नीला-हरा प्रकाश सर्वोत्तम होता है और चूंकि नीले-हरे लेसर को टेलिवीजन के एक ऐसे अन्तर्जलीय तन्त्र का भाग बना कर काम में लाया जा सकता है जो मित्र या शत्रु की पनडुब्बियों की या अन्य अन्तर्जलीय पदार्थों की उपस्थिति का पता दे कर न्यूक्लीय पनडुब्बियों के संचालकों की सहायता किया करेगा।

अभी तक इस दिशा में जो कुल प्रगति हुई है वह हैं "नीले-बैंगनी-लेसरों" का आविष्कार। एक गहरे लाल-लेसर की निर्गम-आवृत्ति को दुगना करके इसका उत्पादन किया गया है (निर्गम-आवृत्ति को दुगना करने का मतलब वही है जो तरंग लम्बाई को दो से भाग देने का)। इसी तरह, "हरे लेसर" भी हैं ;

जो लेसर निकट-अवरक्त प्रदेश में क्रिया करते हैं उनकी निर्गम आवृत्ति को दुगना करके इनका निर्माण किया गया है।

लेकिन जब किसी लेसर की निर्गम-आवृत्तिं को दुगना किया जाता है तब उस की ऊर्जा का ८/१० या अधिक भाग नष्ट हो जाता है और जो कुछ बच रहता है उससे वह काम नहीं हो सकता जो नौसेना चाहती है। इसलिए भिन्न-भिन्न रंगों के लेसरों की खोज जारी है और वैज्ञानिक लोग दुर्लभ मृदा तथा एक्टिनाइड धातुओं पर ही नहीं अपितु विविध प्रकार के कार्बोनिक यौगिकों पर भी शोध कार्य कर रहे हैं। उनका विचार है कि अवस्थाएँ ठीक हों तो कोई भी पदार्थ जो प्रति-दीप्ति दे सकता है, लेसर का काम भी दे सकता है। इस आधार पर उनके सामने हजारों यौगिक पड़े हैं जिन पर खोज होनी है।

पराबैंगनी लेसर (अल्ट्रावायलेट लेसर या यूवेसर)

पराबैंगनी लेसर की अबतक की कथा तो संक्षिप्त और मधुर है। यह एक प्रकाशतः पंपित लेसर होता है जो कांच की एक ऐसी शलाका का उपयोग करता है जिसमें गेडोलिनियम नाम की दुर्लभ मृदा की थोड़ी सी मात्रा विलीन की हुई होती है और निकट पराबैंगनी प्रदेश में ३,१२५ एं पर लेसर-क्रिया करता है।

गामा-किरण लेसर (गेसर)

सरकारी तौर पर एक्स-किरण-लेसरों के बारे में कोई घोषणा नहीं हुई है। नौसेना के तत्त्वावधान में गामाकिरण-लेसरों पर कुछ शोध-कार्य जरूर हो रहा है लेकिन इसमें अभी तक बहुत प्रगति नहीं हुई है। रूसियों ने भी घोषणा की है कि वे इस दिशा में कार्य कर रहे हैं।

इसका आरम्भ इस विधि से किया गया है: रूथेनियम के, गामा-किरण उत्सर्जन करने वाले आइसोटोप द्वारा सोडियम के रेडियोएक्टिव आइसोटोप को ऊर्जा की ऐसी उच्चतर अवस्था में पहुंचा दिया जाता है जो मितस्थायी होती है। लगभग ४० दिनों की अर्ध-आयु के बाद, रूथेनियम से उत्सर्जित होने वाली ऊर्जा

का स्तर गिरकर रोडियम के आइसोटोप की मितस्थायी अवस्था तक आ जायगा और, मोटे तौर पर, ०.३ एं के उत्सर्जन को चालू कर देगा।

लेकिन इसके रास्ते में अनेक समस्याएं हैं। प्रथम : ऐसा क्रिस्टल बनाने का तरीका ढूंढ़ना पड़ता है जिसमें समुचित आइसोटोप तो हों लेकिन उनके मुख्य गुण न बदलें। दूसरी समस्या जो सामने आती है वह है गामा किरणों को (जो किसी भी चीज को वेध जाती हैं) काबू में रखना ताकि स्थानिक संसक्तता प्राप्त की जा सके। यह बन गया तो गामाकिरण-लेसर हर दृष्टि से मृत्यु-किरण सिद्ध होगा। एक्सकिरणों का अनुचित प्रयोग भी हानिकर होता है और, एक्सकिरणों की तुलना में, गामाकिरणों की ज्वालन शक्ति तो कई गुणा अधिक होती है।

लेसर का भविष्य

जैसा कि हम देख आए हैं, लेसर की विशेषता यह है कि यह एक वर्णी प्रकाश का स्रोत होता है। इससे भी बढ़ कर, इसका किरणपुंज इतना संधानित (समान्तरित) होता है कि उसकी सारी ऊर्जा को बहुत छोटे-से स्थल पर फोकस किया जा सकता है। यह अत्यन्त दिशात्मक भी होता है। बाह्य अंतरिक्ष की खगोलीय दूरियों तक भी इसके किरणपुंज में मुड़ने या फैलने की प्रवृत्ति पैदा नहीं होती। इन गुणों से संकेत मिले हैं कि राष्ट्रीय सुरक्षा, उद्योग, चिकित्सा तथा विज्ञान के क्षेत्रों में यह कितने ही काम दे सकता है।

लेसरों को, युद्ध-क्षेत्र में काम आने वाले विध्वंसक, प्राणिनाशक शस्त्रों के रूप में विकसित किया जा सकता है। इन्हें विशेष प्लेटफार्मों पर सवार कर के अंतरिक्ष में भेजा जा सकता है ताकि वे अन्तर्महाद्वीपीय प्रक्षेपास्त्रों से लड़ सकें या शत्रु के, अंतरिक्ष में स्थित, अड्डों या उपग्रहों को नष्ट कर सकें। रासायनिक यौगिकों को रूपान्तरित करने के लिए, या जीवित प्राणियों के प्रोटोन-अणुओं की आनुवंशिक विशेषताओं को परिवर्तित करने के लिए भी लेसरों का उपयोग किया जा सकता है।

आजकल जिस प्रकार समाक्ष केबिल, टेलीफोन-वार्तालापों तथा टेलिवीजन-

जाल के प्रोग्रामों को शहरों के मध्य वहन करते हैं ठीक उसी प्रकार किसी दिन, आन्तरिक दर्पणतन्त्र से युक्त निर्वातित नलिकाओं जैसे, विशेष फाइबर-ऑप्टिक-प्रकाश नलिका या अन्य तरंग-पथ-निर्धारित्र, लेसर-संकेतों का वहन किया करेंगे। फाइबर-आप्टिक-प्रकाशन नलिका, कांच, प्लास्टिक या आर्सेनिक ट्राइसल्फाइड की अतिसूक्ष्म शलाका होती है जिसके बाहर की तरफ पालिश की हुई होती है। इसकी दीवारें प्रकाश को परावर्तित करके वापस अन्दर भेजती रहती हैं जिससे यह कोने पर मुड़ सकता है और फिर भी प्रकाश किरणपुंज का वहन करता रह सकता है।

किसी टेलिवीजन संकेत को लेसर के किसी किरणपुंज पर आरोपित करने की एक विधि यह है कि पहले टेलिवीजन के सारे के सारे चित्र तथा ध्वनि-विडिओ (विजन+रेडियो) संकेत—को किसी सूक्ष्मतरंगवाहक पर आरोपित कर दिया जाता है। फिर, इस सूक्ष्मतरंगवाहक द्वारा एक सूक्ष्म तरंग कोटर या विशेष धातुपेटिका में पड़े एक विशेष क्रिस्टल को उत्तेजित किया जाता है। जब यह लेसरकिरणपुंज, छोटी-छोटी पार्श्व-खिड़कियों द्वारा कोटर में आता और इस क्रिस्टल का चंक्रमण कर के निकल जाता है तब इसका मॉडुलन हो जाता है या मॉडुलित सूक्ष्मतरंग संकेत के मुताबिक इसे विचरित (परिवर्तित) कर दिया जाता है। अभिग्राही (रिसीवर) पर, प्रगामी तरंगप्रवर्धक प्रकाशनलिका से निकलने वाले सूक्ष्मतरंग-किरणपुंज को, इसी प्रकार प्रगामी तरंग नलिका के प्रकाशिक कैथोड पर टकराने वाले लेसर-प्रकाश के विचरणों के मुताबिक विचरित कर दिया जाता है। अब हमें सूक्ष्मतरंगवाहक पुनः प्राप्त हो जाता है और विडिओ-संकेत इस पर आरोपित हो चुका होता है। प्रचलित इलेक्ट्रानी परिपथों का उपयोग करके इस संकेत को विमॉडुलित कर दिया जाता है और टेलिवीजन के मूल चित्र तथा ध्वनि प्राप्त हो जाते हैं।

चौड़े बैंड वाली एक विडिओ-वाहिका को सचमुच अनेक—लगभग ६००—उपवाहिकाओं में विभाजित किया जा सकता है। इन में से प्रत्येक टेलीफोन वार्तालाप का वहन कर सकती है। फिल्टर कहलाने वाले इलेक्ट्रानी परिपथ,

विडिओ-वाहिका को तथाकथित वाणी वाहिकाओं में स्तरखंडित कर देते हैं। प्रत्येक वाणी-वाहिका की चौड़ाई, ० से २,००० साइकिल प्रति सैकण्ड के लगभग होती है। प्रविष्ट होने वाले प्रत्येक टेलीफोन-संकेत की आवृत्ति को संकरित किया या बढ़ाया जाता है ताकि वह प्रेषी सिरे पर की एक विशिष्ट वाणी-वाहिका पर फिट हो सके। फिर उसकी आवृत्ति को घटाया जाता है और अभिग्राही पर स्थित इसकी निजी टेलीफोन लाइन के मार्ग से निकाल दिया जाता है।

लेसर-संचार-तन्त्र, हमारे राष्ट्रव्यापी दूरसंचार-जाल की क्षमताओं को बहुत विस्तृत कर देगा। सूक्ष्म लेसर, कम्प्यूटर (परिकलन यन्त्र) के स्मृतितन्त्र के पुर्जों के तौर पर भी काम दे सकते हैं। ऐसा परिकलन यन्त्र सचमुच प्रकाश की चाल से काम किया करेगा।

कौन जाने, एक दिन आपकी मोटर का ज्वलनतन्त्र भी लेसर चालित हो जाय।

सैनिक उपयोग

सब से प्रथम उपयोग जो अधिकांश लोगों को सूझते हैं उनमें से एक यह है कि एक विशाल तथा अतिशक्तिशाली लेसर बनाया जाय और इससे प्रक्षेपास्त्रों के अग्रभागों को मार गिराने का काम लिया जाय। उनका तर्क यह है कि इससे हमारा राष्ट्र परमाणु-युद्ध की विभीषिकाओं से बच जायगा।

लेकिन मामला इतना आसान नहीं। अभी, सब से शक्तिशाली लेसर भी अर्धकार्बन (सुज्वाल्य) इस्पात को १/८ इंच से अधिक नहीं वेध सकते। और इनसे जो छेद बनते हैं वे तो सुई की चुभनमात्र होते हैं। फिर, जलाने के लिए आवश्यक है कि लेसर का इस्पात से फासला कुछेक फुटों से अधिक न हो। दीर्घतर दूरियों की स्थिति में, वायुमण्डल में उपस्थित जलवाष्प तथा धूलिकण, प्रकाश-किरण की प्रभावशालिता को बहुत कम कर देते हैं।

फिर भी वायुसेना, बड़े जोर शोर से बड़े-बड़े लेसर बनाने के यत्न में लगी

जाल के प्रोग्रामों को शहरों के मध्य वहन करते हैं ठीक उसी प्रकार किसी दिन, आन्तरिक दर्पणतन्त्र से युक्त निर्वातित नलिकाओं जैसे, विशेष फाइबर-ऑप्टिक-प्रकाश नलिका या अन्य तरंग-पथ-निर्धारित्र, लेसर-संकेतों का वहन किया करेंगे । फाइबर-आप्टिक-प्रकाशन नलिका, कांच, प्लास्टिक या आर्सेनिक ट्राइसल्फाइड की अतिसूक्ष्म शलाका होती है जिसके बाहर की तरफ पालिश की हुई होती है। इसकी दीवारें प्रकाश को परावर्तित करके वापस अन्दर भेजती रहती हैं जिससे यह कोने पर मुड़ सकता है और फिर भी प्रकाश किरणपुंज का वहन करता रह सकता है।

किसी टेलिवीजन संकेत को लेसर के किसी किरणपुंज पर आरोपित करने की एक विधि यह है कि पहले टेलिवीजन के सारे के सारे चित्र तथा ध्वनि-विडिओ (विजन+रेडियो) संकेत—को किसी सूक्ष्मतरंगवाहक पर आरोपित कर दिया जाता है। फिर, इस सूक्ष्मतरंगवाहक द्वारा एक सूक्ष्म तरंग कोटर या विशेष धातुपेटिका में पड़े एक विशेष क्रिस्टल को उत्तेजित किया जाता है। जब यह लेसरकिरणपुंज, छोटी-छोटी पार्श्व-खिड़कियों द्वारा कोटर में आता और इस क्रिस्टल का चंक्रमण कर के निकल जाता है तब इसका मॉडुलन हो जाता है या मॉडुलित सूक्ष्मतरंग संकेत के मुताबिक इसे विचरित (परिवर्तित) कर दिया जाता है। अभिग्राही (रिसीवर) पर, प्रगामी तरंगप्रवर्धक प्रकाशनलिका से निकलने वाले सूक्ष्मतरंग-किरणपुंज को, इसी प्रकार प्रगामी तरंग नलिका के प्रकाशिक कैथोड पर टकराने वाले लेसर-प्रकाश के विचरणों के मुताबिक विचरित कर दिया जाता है। अब हमें सूक्ष्मतरंगवाहक पुनः प्राप्त हो जाता है और विडिओ-संकेत इस पर आरोपित हो चुका होता है । प्रचलित इलेक्ट्रानी परिपथों का उपयोग करके इस संकेत को विमॉडुलित कर दिया जाता है और टेलिवीजन के मूल चित्र तथा ध्वनि प्राप्त हो जाते हैं।

चौड़े बैंड वाली एक विडिओ-वाहिका को सचमुच अनेक—लगभग ६००—उपवाहिकाओं में विभाजित किया जा सकता है। इन में से प्रत्येक टेलीफोन वार्तालाप का वहन कर सकती है। फिल्टर कहलाने वाले इलेक्ट्रानी परिपथ,

विडिओ-वाहिका को तथाकथित वाणी वाहिकाओं में स्तरखंडित कर देते हैं। प्रत्येक वाणी-वाहिका की चौड़ाई, ० से २,००० साइकिल प्रति सैकण्ड के लगभग होती है। प्रविष्ट होने वाले प्रत्येक टेलीफोन-संकेत की आवृत्ति को संकरित किया या बढ़ाया जाता है ताकि वह प्रेषी सिरे पर की एक विशिष्ट वाणी-वाहिका पर फिट हो सके। फिर उसकी आवृत्ति को घटाया जाता है और अभिग्राही पर स्थित इसकी निजी टेलीफोन लाइन के मार्ग से निकाल दिया जाता है।

लेसर-संचार-तन्त्र, हमारे राष्ट्रव्यापी दूरसंचार-जाल की क्षमताओं को बहुत विस्तृत कर देगा। सूक्ष्म लेसर, कम्प्यूटर (परिकलन यन्त्र) के स्मृतितन्त्र के पुर्जों के तौर पर भी काम दे सकते हैं। ऐसा परिकलन यन्त्र सचमुच प्रकाश की चाल से काम किया करेगा।

कौन जाने, एक दिन आपकी मोटर का ज्वलनतन्त्र भी लेसर चालित हो जाय।

सैनिक उपयोग

सब से प्रथम उपयोग जो अधिकांश लोगों को सूझते हैं उनमें से एक यह है कि एक विशाल तथा अतिशक्तिशाली लेसर बनाया जाय और इससे प्रक्षेपास्त्रों के अग्रभागों को मार गिराने का काम लिया जाय। उनका तर्क यह है कि इससे हमारा राष्ट्र परमाणु-युद्ध की विभीषिकाओं से बच जायगा।

लेकिन मामला इतना आसान नहीं। अभी, सब से शक्तिशाली लेसर भी अर्धकार्बन (सुज्वाल्य) इस्पात को १/८ इंच से अधिक नहीं वेध सकते। और इनसे जो छेद बनते हैं वे तो सुई की चुभनमात्र होते हैं। फिर, जलाने के लिए आवश्यक है कि लेसर का इस्पात से फासला कुछेक फुटों से अधिक न हो। दीर्घतर दूरियों की स्थिति में, वायुमण्डल में उपस्थित जलवाष्प तथा धूलिकण, प्रकाश-किरण की प्रभावशालिता को बहुत कम कर देते हैं।

फिर भी वायुसेना, बड़े जोर शोर से बड़े-बड़े लेसर बनाने के यत्न में लगी

है और यह हिसाब लगा रही है कि पृथ्वी के वायुमण्डल से बाहर उनको प्रभावशाली ढंग से कैसे फैलाया जाय : पर्वतशिखरों पर रख कर, कक्षा में घूमते उपग्रहों पर रख कर, या स्वयं प्रक्षेपास्त्रविरोधी प्रक्षेपास्त्रों पर रख कर।

फिलहाल सेना तथा अंतरिक्ष विभागों के पास लेसर के अन्य उपयोग हैं जो इतने रंगीन नहीं हैं लेकिन किसी भी दृष्टि से कम महत्त्वपूर्ण भी नहीं हैं। जब एपोलो शृंखला का प्रथम चान्द्र-कैप्सूल, प्रथम बार अमरीकनों को चन्द्रमा के निकट ले जायगा, तब, चन्द्रमा पर वस्तुतः उतरने वाले चान्द्र-अभियान-मॉड्यूल में सवार दो व्यक्तियों का कर्मी दल, चन्द्रमा के पृष्ठ तक का रास्ता टोहने के लिए लेसर-तुंगतामापी का ही प्रयोग करेगा। उससे भी पहले, जेमिनी प्रायोजना के अंतरिक्ष यात्री, अंतरिक्ष में उपग्रहों के मिलने तथा ठहराने के अभ्यास के लिए लेसर-रेडार का उपयोग करेंगे। विर्जीनिया के वैलप्स द्वीप में स्थित एक विशाल लेसर तो पहले ही, १,००० मील के फासले पर कक्षा में घूमने वाले एक उपग्रह की लीक पकड़ चुका है। प्रसंगवश कह दें कि उस परास (दूरी) पर इस लेसर किरणपुंज का व्यास सिर्फ २०० फुट था।

युद्ध-क्षेत्र में उपयोग के लिए स्थल सेना ने अनेक प्रकार के लेसर-परासमापियों का आर्डर दे रखा है। अपने प्रकाशिक या रेडार प्रतिरूपों की अपेक्षा ये, अपने लक्ष्यों तक की दूरी को कहीं अधिक परिशुद्धता के साथ माप सकेंगे।

द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान स्थलसेना ने स्नाइपरस्कोपों तथा स्कूपरस्कोपों (अंधेरे में गोली चलाने वालों तथा जासूसी करने वालों को देख सकने वाले यन्त्रों) का सफल उपयोग किया था। ये ऐसे अवरक्त यन्त्र थे जो रात में भी लक्ष्यों का स्थाननिर्धारण कर सकते थे। लेकिन ऐसे साधनों की सफलता के लिए आवश्यक होता है कि लक्ष्य पदार्थ अपनी पृष्ठभूमि से काफी अधिक गर्म हो। अब, अवरक्त लेसर की सहायता से यह सम्भव हो जायगा कि लक्ष्य पदार्थ के तापमान का लिहाज किए बिना उसकी जांच की जा सके और फोटो ली जा सके।

द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान नौसेना ने समुद्री जहाजों के बीच लघुपरास-

संचारों के लिए "नैन्सी" नाम के अवरक्त-उपकरण का उपयोग किया था (आम तौर पर इसमें नर्स्ट नलिकाएं या तप्त तन्तु होते हैं जो धातु के एक काले छत्र से ढके होते हैं और गहरे रंग के लालमणि-लेंस के पीछे रखे होते हैं)। लेकिन लेसर, अवरक्त का एक ऐसा स्रोत है जो उससे कहीं अधिक सूक्ष्म है और जिसको उतनी आसानी से ढूंढ़ा नहीं जा सकता।

सशस्त्र सेना की एक प्रायोजना यह पता लगाने के लिए चल रही है कि कोई कम्प्यूटर (परिकलन यन्त्र) ठीक-ठीक कितना तेज काम कर सकता है । कुछ लोगों का विचार है कि इसके परिणामस्वरूप एक नया, तेज चाल वाला, विशाल मस्तिष्क प्राप्त होगा जो प्रक्षेपास्त्रों की बाबत पहले से सावधान करने वाली व्यवस्था में काम देगा। लेकिन यह अनुमान अधिक ठीक है कि ऐसा कम्प्यूटर, शत्रु के कूटसंकेतों तथा बीजांककूटों को चटकाने के काम आयेगा। जो भी हो, इस प्रायोजना का एक भाग ऐसे लेसर-कम्प्यूटर की बाबत है जिसका आर्थिक बोझ वायुसेना पर है और जिसमें गणना का काम विद्युत्-संकेत नहीं अपितु प्रकाश-स्पन्दन करेंगे। ऐसा कम्प्यूटर, आजकल उपलब्ध किसी भी कम्प्यूटर से कई-कई गुणा तेज होगा चूंकि विद्युत् धारा के मुकाबले प्रकाश की गति तीव्रतर होती है ; विद्युत् धारा तो परिपथ में उपस्थित संधारित्रों तथा प्रेरकों आदि प्रतिघाती अवयवों द्वारा मन्दित होती रहती है !

औद्योगिक उपयोग

सूक्ष्म-इलेक्ट्रानी परिपथों का निर्माण करने वाले उद्योगधन्धे तो पहले ही वेल्ड तथा मशीन करने की नाजुक क्रियाओं के लिए लेसरों का उपयोग कर रहे हैं।

सूक्ष्म इलेक्ट्रानी परिपथ की रचना सिलिकोन की पतली पपड़ी पर की जाती है। कभी-कभी तो सिर्फ एक इंच व्यास वाली पपड़ी पर, एक ही साथ चालीस परिपथ बना लिए जाते हैं। प्रत्येक परिपथ पांच नलिकाओं वाले रेडियो का या शायद एक कम्प्यूटर का काम दे सकता है।

इन परिपथों को बनाने के लिए, निर्धारित नमूनों के अनुसार कुछेक चुने हुए अपद्रव्यों को सिलिकोन की पपड़ी में विसरित होने दिया जाता है। इन नमूनों को बनाने के लिए पहले सिलिकोन डायोक्साइड (कांच) की एक तह को—आम तौर पर, पृष्ठ पर भाफ का उपयोग करके—सिलिकोन की पपड़ी पर जमने दिया जाता है और फिर इस तह के कुछ भागों को वरणात्मक ढंग से उत्कीर्णित कर दिया जाता है।

इस औक्साइड को वरणात्मक ढंग से हटाने के पहले इस पर तथाकथित प्रकाशप्रतिरोधी का लेप किया जाता है—(प्रकाश-प्रतिरोधी ऐसी तह होती है जो प्रकाश में खुली रह जाय तो चीमड़ तथा अम्लप्रतिरोधी हो जाती है)—बाद में इस पपड़ी को एक विसरण-आवरण द्वारा प्रच्छादित कर दिया जाता है और अनाच्छादित प्रकाशप्रतिरोधी को प्रकाश के सामने उद्भासित कर दिया जाता है। इसके बाद पपड़ी को सान्द्र अम्ल के द्वारा उत्कीर्णित कर दिया जाता है और जहां-जहां प्रकाश द्वारा कठोर किए हुए प्रकाशप्रतिरोधी का प्रच्छादन नहीं होता वहां-वहां से इसका सिलिकोन औक्साइड खाया जाता है।

विसरण-प्रच्छादन का निर्माण, एक सूक्ष्म क्रिया है और आशा है कि धात्विक पपड़ियों को लेसर द्वारा मशीन करके नमूनों की अधिक स्पष्ट तथा अधिक परिशुद्ध रूपरेखाएं बनाना सम्भव हो जायगा। शायद, खुद इस औक्साइड के निर्माण में भी लेसर का उपयोग होने लगे और इस प्रकार सूक्ष्म परिपथ बनाने के प्रक्रम में कई चरण कम हो जायं।

तेजचाल-फोटोग्राफी में वर्ण-विपथन या कैमरे के लेन्स में से गुजरते समय भिन्न-भिन्न तरंगलम्बाइयों के प्रकाश के असमान अपवर्तनों (मोड़ों) के कारण प्रतिबिम्ब अस्पष्ट रहता है। लेसर-प्रकाश इस स्थिति को बहुत सुधार सकता है।

वायुमण्डल के भिन्न-भिन्न घटक, प्रकाश की भिन्न-भिन्न तरंगलम्बाइयों में से किसी को अधिक तथा किसी को कम अवशोषित करते हैं। अतः किसी हवाई

अड्डे पर लेसरों की एक श्रृंखला को पारगम्यतामापी के तौर पर काम में लाया जाय तो यह न सिर्फ—पहले से काम आने वाले प्रकाशिक यन्त्रों की तरह—दौड़पथ के सिरे पर की दृश्यता को प्रकट कर सकता है अपितु किसी समय-विशेष पर वहां उपस्थित वायुमण्डल के संघटन को भी प्रकट कर सकता है। ऐसा लेसर-यन्त्र, वायु के प्रदूषण सम्बन्धी खोजों में भी उपयोगी हो सकता है। (नियन्त्रण बुर्ज से दौड़पथ का सिरा सचमुच दृश्य हो, तब भी पारगम्यतामापी का उपयोग किया जाता है; बुर्ज से दीखने वाला दृश्य ठीक ऐसा नहीं होता जैसा कि आते हुए वायु-यानचालक को दीखता है ; इसके अतिरिक्त, मानव-प्रेक्षक से इस यन्त्र की विशेषता यह होती है कि यह चौबीसों घण्टे ड्यूटी बजाता रहता है।)

किसी रासायनिक प्रक्रम में एक लेसर को इस प्रकार स्थापित किया जा सकता है कि वांछित उत्पाद इस किरणपुंज को बड़ी हद तक अवशोषित कर ले। निर्गम नलिका में लेसर को स्थिर तौर पर फोकस किया जा सकता है और स्वचालित नियन्त्रक उपकरण को इस प्रकार समायोजित किया जा सकता है कि यह उत्पाद, इस किरणपुंज से आने वाले प्रकाश की अधिकतम मात्रा को अवशोषित कर सके। इससे यह बात यकीनी हो जायगी कि निर्गम नलिका में उपस्थित उत्पाद का संघ-टन ठीक वैसा ही है जैसा होना चाहिए।

लेसर-किरणपुंज में, सूचना की प्राय: अपरिमित मात्रा को वहन करने की क्षमता होती है। इस कारण संचार-इंजिनीयर लोग इसको दूरंगम या अन्तर्नग-रीय संचारणों के लिए उपयोग करने की सम्भावना की कल्पना करने लगे हैं। आजकल इनके लिए सूक्ष्मतरंग श्रृंखला से काम लिया जाता है। एक सूक्ष्मतरंग श्रृंखला एक ही समय में चार टेलिवीजन प्रोग्रामों का वहन कर सकती है या ६०० टेलीफोन वार्ताओं तक की टेलिवीजन-वाहिकाओं में से किसी एक का स्थान ले सकती है। लेकिन एक लेसर-किरणपुंज, सूचना की इससे कई गुणा अधिक मात्रा का वहन कर सकता है।

लेकिन वायुमण्डल की धूल तथा जलवाष्प, लेसर किरणपुंज की उपयोगी

शक्ति को बहुत घटा देते हैं अत: पेशतर इसके कि लेसरों को व्यावहारिक संचार के लिए बरता जा सके, एक कठिन समस्या से निपटना होगा। लेकिन अल्पदूरी के संचारणों के लिए तथा उपग्रहों के बीच संदेशों के आदान-प्रदान के लिए तो इन का प्रयोग अवश्य हो सकता है। उपग्रहों के मामले में सारा मार्ग तो १,००० मील या इससे भी अधिक का होता है लेकिन उस किरणपुंज को पृथ्वी के वायुमण्डल में अपेक्षया थोड़ी ही दूरी तय करनी होती है।

लेसर संचारणों को बढ़ावा देने का एक तरीका यह है कि प्रकाश नलिकाओं या निर्वातित नलियों को ऐसे व्यवस्थित दर्पणों के साथ काम में लाया जाय जो कोनों पर किरणपुंज को, आवश्यकतानुसार, चलाते रहें।

लेसर वाले टेलीफोन एक्सचेंज की परिकल्पना भी की जा रही है। इसमें प्रकाशस्पन्दनों का चालन, फाइबर ऑप्टिक तन्तुओं द्वारा किया जायगा। ये तन्तु कोनों पर प्रकाश का वहन ऐसे ही करते रहते हैं जैसे ताम्बे की तारें विद्युत् धारा का। फाइबर आप्टिक तन्तु, प्रकाश को संचारित करने की शक्ति को बहुत कम कर देते हैं लेकिन डिजाइन द्वारा टेलीफोन एक्सचेंज में परस्परयोजी तन्तुओं को छोटा रखा जा सकता है। लेसर-टेलीफोन-एक्सचेंज का बड़ा विशेष लाभ यह होगा कि क्रासित तारों या संलग्न प्रकाशिक तन्तुओं की कोई समस्या नहीं रहेगी और आपको अपनी लाइन पर दूसरों के वार्तालाप के जो अंश कभी-कभी सुनाई देने लगते हैं वे नहीं सुने जाया करेंगे।

चिकित्सा सम्बन्धी उपयोग

चिकित्सा के क्षेत्र में लेसरों को बहुत बड़ा वरदान माना जा रहा है। प्रति-वर्ष हजारों अमरीकी, वियोजित दृष्टिपटल से पीड़ित होते हैं। इस रोग में दृष्टिपटल (आंख के पिछले भाग में स्थित प्रकाश का संवेदी क्षेत्र) आंख के आन्तरिक पृष्ठ के रक्तक पटल नाम के आवरण से अबद्ध हो जाता है। जिस द्रव (ह्यूमर) से आंख भरी होती है वह रिस कर दृष्टिपटल के पीछे पहुंच जाता है और स्थिति को बिगाड़ देता है। इस रोग की प्राथमिक अवस्था में दृष्टि में सिर्फ़

विकार पैदा होता है लेकिन अगर दृष्टिपटल, दृक्तन्त्रिका से बिल्कुल अबद्ध हो जाता है तो आंख अन्धी हो जाती है। एक लेसर किरणपुंज को, आंख के लेंस के पार, इस प्रकार फोकस किया जा सकता है कि यह दृष्टिपटल की परिधि के साथ-साथ छोटे क्षतचिन्ह (स्कार) पैदा कर दे और इस प्रकार दृष्टि पटल को पुनः यथास्थान टांक दे।

आंख के अन्दर की छोटी-छोटी रसौलियों (अर्बुदों) को भी लेसर जला सकता है। लेसर के किरणपुंज को, सचमुच, इतने छोटे व्यास का बनाया जा सकता है जितना एक अकेली मानव कोशिका का होता है। इसलिए कुछेक शल्यचिकित्सक लेसर को एक ऐसा साधन मानते हैं जिससे रसौलियों को इस प्रकार जलाया जा सकता है कि आसपास के स्वस्थ ऊतक को हानि पहुंचने की आशंका न्यूनतम रहे। जख्मों को ऊष्मा के द्वारा सीने (जोड़ने) के लिए भी लेसरों को मान्यता मिली है। जख्मों को सीते समय लेसर उनका दहन कर्म (काटरी) भी कर सकेगा, छोटे-छोटे स्थलों को तेजी के साथ रोगाणुरहित करने के लिए भी इसका प्रयोग हो सकेगा। हाल ही, दांतों के डाक्टरों ने लेसर-बरमों को आजमा कर देखा है। ये तेजी से काम करते हैं, यकीनी होते हैं और दर्द नहीं करते।

यह कल्पना की जा सकती है कि लेसर किरणपुंजों को प्रोटीन के एक अकेले अणु के व्यास से भी छोटे व्यास का बनाया जा सकता है। ऐसे लेसर किरणपुंज से जीवित प्राणियों के आनुवंशिक गुणों को परिवर्तित करने का काम लिया जा सकेगा।

चिकित्सा-वैज्ञानिकों के एक दल ने रिपोर्ट दी है कि एक लेसर-किरणपुंज से किए गए किरणन ने एक मनुष्य के सारे रुधिर की विद्युत् चालकता को परिवर्तित कर दिया है। इसकी ठीक-ठीक सार्थकता क्या है और यह कैसे होता है यह अभी तक स्पष्ट नहीं किया जा सका है।

वैज्ञानिक उपयोग

लेसर के सब से अधिक दूरगामी प्रभाव तो शायद विशुद्ध तथा व्यावहारिक

विज्ञान क्षेत्र में होंगे। मानव अपनी प्राकृतिक परिस्थिति के बारे में जो कुछ समझ चुका है, सम्भव है लेसर उस पर गहरा प्रभाव डाले।

पैमाइश के लिए हमने लम्बाई, द्रव्यमान तथा समय को प्रधानतम राशियां मान रखा है। इनमें से दो, लम्बाई तथा समय, एक स्थिरांक से सम्बधित हैं। यह स्थिरांक है, निर्वात में प्रकाश का वेग। फिर भी, इस स्थिरांक के मान का हमारा ज्ञान बिल्कुल अधूरा है।

जिन खगोलीय प्रेक्षणों से हमें हमारा समय सम्बन्धी पैमाना प्राप्त होता है उन्हीं से आवृत्ति के हमारे राष्ट्रीय मानक, अंशांकित किए जाते हैं। कारण यह है कि एक तरंग, चक्रों की जिस आवृत्ति को प्रति सैकण्ड निष्पादित करती है वह समय के साथ घनिष्ठतया सम्बन्धित है।

जब दृश्यप्रदेश में होने वाले विकिरण के साथ वास्ता होता है तब वैज्ञानिक लोग, आवृत्ति को नहीं अपितु तरंग लम्बाई को नापते हैं। लेकिन अगर मानक रेडियो आवृत्तियों को दुगना, चौगुना, आठगुना बढ़ाया जाय और इसी प्रकार तब तक बढ़ाते रहा जाय जब तक कि दृश्य प्रकाश का क्षेत्र न आ जाय तो लम्बाई तथा समय एक ही चीज बन जायेगा और निर्वात में प्रकाश की ठीक चाल सम्बन्धी हमारी अनिश्चितता से कोई फर्क नहीं पड़ेगा।

विज्ञान के सामने एक और प्रमुख समस्या है: ईथर का अस्तित्व है कि नहीं? आपको याद होगा कि हमने विद्युत् चुम्बकीय तरंगों को समझाने के लिए उनकी तुलना किसी तालाब में उठने वाली लहरों से कर दी थी। अनेक वैज्ञानिकों के सामने भी यह कठिनाई रही है कि किसी ऐसे पदार्थ या माध्यम को अभिग्रहीत किए (स्वयं सिद्ध माने) बिना जिसमें तरंगें गति या संचरण कर सकें, तरंगों की संकल्पना कैसे की जाय?

इसके लिए उन्होंने ईथर का अभिग्रहण एक ऐसे पदार्थ के रूप में किया था जो वर्ण तथा गन्ध से रहित है, जो सारे अन्तरिक्ष में व्याप्त है और जिसमें विद्युत्

चुम्बकीय तरंगें ऐसे ही संचरित हो सकती हैं जैसे लहरें किसी तालाब में संचरित होती हैं। अब कई बरसों से वैज्ञानिक लोग ईथर को उसी स्वप्न लोक में निर्वासित करने की कोशिश कर रहे हैं जिसमें फ्लोजिस्टोन तथा अन्य ऐसे अनोखे पदार्थ डाले जा चुके हैं जिनका अभिग्रहण किसी जमाने में कीमियागरों ने उन भौतिक घटनाओं की व्याख्या के लिए किया था जो उनकी समझ में नहीं आती थीं।

ईथर के अस्तित्व को सिद्ध करने के लिए जो पहला परीक्षण किया गया था वह माइकेल्सन-मार्ले प्रयोग कहलाता है। अगर पृथ्वी, ईथर के किसी स्तब्ध समुद्र में घूर्णन कर रही है तो पृथ्वी के आसपास का ईथर पृथ्वी के घूर्णन से विपरीत दिशा में विस्थापित होता रहता होगा। मान लो, एक दूसरे के साथ समकोण बनाने वाले दो प्रकाशकिरणपुंजों को इस प्रकार छोड़ा जाता है कि ईथर का विस्थापन, एक किरणपुंज की चाल को बढ़ा देता है और दूसरा किरणपुंज ईथर के विस्थापन पर लंबतः पड़ता है और, अतएव, इससे अप्रभावित रहता है। अब, ईथर के विस्थापन के कारण, वेग में कोई परिवर्तन होता है तो दोनों किरण-पुंजों की आवृत्ति के अन्तर को माप कर उसका पता लगाया जा सकता है। इस पैमाइश को और परिशुद्ध करने के लिए, अब, प्रकाश के किरणपुँज को उत्सर्जित करने वाले उपकरण को घुमा दिया जाता है ताकि ईथर का विस्थापन, किरण-पुंज की चाल को बढ़ाने की बजाय इसके लिए रुकावट पैदा करे ; इससे आवृत्ति में अगर कोई अन्तर आता है तो उसे भी मापा जा सकता है। आवृत्ति के इन दोनों अन्तरालों का योगफल अगर कुछ महत्त्व का बनता है तो मानना होगा कि ईथर के विस्थापन का अस्तित्व है। गैस-लेसरों की सहायता से इस प्रयोग को कार्यान्वित किया गया है लेकिन आवृत्ति का कोई ऐसा अर्थपूर्ण अन्तर देखने में नहीं आया जो किसी ईथर के अस्तित्व को सत्य सिद्ध कर सके।

व्यावहारिक विज्ञान के क्षेत्र में लेसर, स्पेक्ट्रम विज्ञान के लिए सब से अधिक लाभप्रद सिद्ध हो रहा है। हम कई स्थानों पर उल्लेख कर चुके हैं कि कतिपय पदार्थ ऐसे होते हैं जो अवरक्त की तथा पराबैंगनी आवृत्तियों को अवशोषित कर लेते हैं। ठीक-ठीक कौन सी आवृत्तियां अवशोषित होती हैं यह इस बात पर निर्भर

होता है कि उस पदार्थ का रासायनिक संघटन तथा उसके अणुओं की संरचना क्या है ? किसी पदार्थ द्वारा अवशोषित आवृत्तियों का सर्वयोग या उसका अवशोषण-स्पेक्ट्रम उतना ही व्यक्तिगत होता है जितना आपका अपना अंगुलि छाप। इस कारण, पदार्थ के गुणों का अध्ययन करने वाले भौतिकीविदों तथा रसायन-विज्ञानियों के लिए स्पेक्ट्रम विज्ञान, एक महत्त्वपूर्ण साधन है। परन्तु स्पेक्ट्रम विज्ञान में अधिक अच्छे विविक्तीकरण की आवश्यकता होती है और इसे प्राप्त करने के लिए वैज्ञानिकों को उन आवृत्तियों का ठीक-ठीक ज्ञान होना चाहिए जिनसे किसी पदार्थ का किरणन हुआ है। ज्यूं-ज्यूं लेसर पदार्थों की संख्या बढ़ती जाती है और परिणामत: संसक्त प्रकाश की उपलब्ध आवृत्तियों की संख्या बढ़ती जाती है, स्पेक्ट्रम विज्ञानी लोग आशा कर सकते हैं कि उन्हें इस प्रकार के अधिक अच्छे उपकरण प्राप्त होते जायेंगे जो पदार्थ की आधारभूत रचना में अधिकाधिक अन्तर्दृष्टि प्रदान कर सकेंगे।

निष्कर्ष

इस अध्याय में हमने आवृत्ति तथा तरंग लम्बाई, दोनों के लिहाज से विद्युत् चुम्बकीय स्पेक्ट्रम के सांतत्यक की व्याख्या की है। हम क्वांटम यांत्रिकी की कुछ मौलिक धारणाओं से जूझते रहे हैं और देखते रहे हैं कि लेसरों के तीन मौलिक रूपों—प्रकाशत: पंपित, विद्युत् द्वारा पंपित गैसीय, तथा अन्त:क्षेपण—की उनसे किस प्रकार व्याख्या होती है। हमने प्रीतदीप्ति की दृश्य घटना का विवेचन किया है और देखा है कि किस प्रकार लेसर क्रिया इससे संबंधित तो है लेकिन (क) अपनी आवृत्तिसंसक्तता या एकवर्णता तथा (ख) अपनी स्थानिक संसक्तता या सब तरंगिकाओं के एक दूसरी के साथ कदम मिलाकर चलने के कारण, इससे भिन्न होती है।

(प्रसंगवश कह दें कि ज्ञान की इस नवीनतम मणि ने आपको पूंजीपतियों के उस समूह से अधिक चतुर बना दिया है जिसके पास तकनीकी ज्ञान की अपेक्षा फालतू पैसा अधिक था। उन्होंने एक ऐसे वाक्चतुर भौतिकीविद् की सहायता

करने में हजारों डालर नष्ट कर दिये जिसकी प्रयोगशाला प्रतिदीप्ति-द्रव्य की बोतलों से भरी पड़ी थी और जो उन्हें, दृश्य स्पेक्ट्रम को पूर्णतया व्याप्त करने वाले लेसर बता कर धोखा देता रहा। दर असल, उसके पास एक भी लेसर नहीं था)

अन्त में, हमने सारे विद्युत् चुम्बकीय स्पेक्ट्रम पर इस दृष्टि से भी विचार किया है कि क्वांटम साधनों द्वारा संसक्त विकिरण कैसे पैदा किया जाता या किया जा सकता है और सम्भावित गामाकिरण-लेसर पर विशेष जोर दिया है। हमने राष्ट्रीय सुरक्षा, उद्योग, चिकित्सा तथा विज्ञान के क्षेत्र में लेसर के प्रभाव पर भी दृष्टिपात किया है।

अब हम अपनी दृष्टि भूतकाल की ओर घुमाएंगे और देखेंगे कि लेसर वस्तुतः अस्तित्व में कैसे आया।

२

इसका आविष्कार सम्भव कैसे हुआ ?

प्रकाश तथा विद्युत् का शृंखलन

लेसर की कथा के प्रारंभ को खोजते-खोजते हम उस काल में पहुंच जाते हैं जब मानव ने प्रकाश तथा विद्युत् इन दोनों दृश्य घटनाओं की किसी एक समान व्याख्या को खोजने के प्रथम प्रयत्न किए थे।

उन्नीसवीं सदी के मध्य, वैज्ञानिकों ने सही मायनों में विद्युत् को समझना शुरू कर दिया था। उससे भी पहले, १८१९ में कोपनहेगन विश्वविद्यालय का विज्ञान का प्रोफेसर हैंस क्रिश्चियन ओर्स्टेड, विद्युत् धारा वाहक तार के पास रखे गए चुम्बकीय दिक्सूचक की सुई के व्यवहार का प्रेक्षण करके चुम्बकत्व तथा विद्युत् के सम्बन्ध को प्रमाणित कर चुका था।

माइकेल फैराडे, जो पहले एक अंग्रेज जिल्दसाज का शागिर्द था, १८३१ में डायनामो या विद्युत्जनित्र का आविष्कार कर चुका था।

मैक्सवेल तथा उसके समीकरण

स्काटलैण्ड निवासी जेम्स क्लर्क मैक्सवेल, एक स्वाध्यायशील युवक था।

वह फेराडे के सब से बड़े प्रशंसकों में से था। कहते हैं कि मैक्सवेल, फेराडे के सिद्धान्तों तथा परीक्षणों का मानो धार्मिक श्रद्धा से अभिभूत होकर अध्ययन किया करता था। जब १८६३ में मैक्सवेल ने विद्युत् चुम्बकीय तरंगों के संचरण से सम्बद्ध समीकरणों को सुन्दरता और गणितीय सरलता के साथ लेखबद्ध किया तब वह लंडन के किंग्स कालेज की फैकल्टी (संकाय) का सदस्य था। उसी ने अन्ततः, कैम्ब्रिज की प्रसिद्ध केवेंडिश प्रयोगशाला की स्थापना की थी।

उसका तर्क था कि अन्तरिक्ष में विद्युत् चुम्बकीय ऊर्जा की गति तरंगाकृति होती है। इसके आधार पर उसने इन तरंगों के वेग को परिकलित किया। उसने पाया कि यह वही वेग है जो प्रकाश का होता है और इससे उसने निगमित किया कि प्रकाश भी विद्युत् चुम्बकीय ऊर्जा का रूप होना चाहिए।

अभाग्यवश, मैक्सवेल के जमाने में ऐसा कोई तरीका नहीं था जिससे आजकल की "रेडियो आवृत्ति तरंगों" को पैदा किया जा सकता। सन् १८७९ में मैक्सवेल की मृत्यु हो गई थी। तब तक उसके सिद्धांतों की जांच भी नहीं की जा सकी थी।

रेडियो का जन्मदाता, हर्ट्स

लेकिन कुछ ही वर्षों बाद इनको सचमुच परख कर देखा गया था। सन् १८८७ में बौन विश्वविद्यालय के भौतिकी के प्रोफेसर, हेनरिक रूडोफ हर्ट्स ने रेडियो तरंगों को पैदा करने में तथा दूरस्थ स्थानों पर उनकी उपस्थिति का पता लगाने में सफलता प्राप्त कर ली थी। लीडेनजार, एक प्रकार का विद्युत् संधारित्र होता है जिसे विद्युत् विज्ञान के आविष्कर्ता लोग काम में लाया करते थे। हर्ट्स ने इसमें से एक भारी चिंगारी को निकाला था और देखा था कि एक लघुतर चिंगारी लगभग पन्द्रह फुट के फासले पर पड़े तार की एक कुंडली में प्रकट हो गयी थी।

१८८७ से १८९१ तक हर्ट्स ने रेडियो तरंगों पर परीक्षण किए। उसके प्रेषित्र (ट्रांसमिटर) में एक प्रेरण कुंडली होती थी जैसी कि मोटर गाड़ी के

ज्वलनतन्त्र में काम आती है। यह पीतल के दो गोलों से सम्बद्ध होती थी। प्रत्येक गोला, शलाकाओं के जरिए दो बड़े-बड़े धात्विक चालकों से संलग्न होता था। ये चालक एक दूसरे से लगभग तीन मीटर के फासले पर होते थे। गोलों के बीच में एक अन्तराल होता था। जब प्रेरण कुंडली को ऊर्जित किया जाता था तब चिंगारियां इनके बीच आरपार कूदती रहती थीं। अन्तराल के आरपार जाने वाली प्रत्येक चिंगारी के समय, धात्विक पट्टिकाओं के बीच, एक विद्युत् आवेश तेजी के साथ---एक करोड़ से दस करोड़ बार प्रति सैकण्ड के लगभग---दोलन करता था।

अभिग्राही (रिसीवर) के तौर पर हर्ट्ज़ ने एक लूप या ताम्बे की मोटी सी तार की बनी आयताकृति का प्रयोग किया था जिसको इस प्रकार काटा गया था कि एक स्थान पर एक छोटा सा अन्तराल रह जाय। इस अन्तराल के एक पार्श्व में उसने पीतल की एक खूब पालिशदार और लगभग आधा इंच व्यास की घुंडी को लगा दिया। ताम्बे की तार के लूप को मोड़ कर अन्तराल की चौड़ाई को आवश्यकतानुसार समायोजित किया जा सकता था।
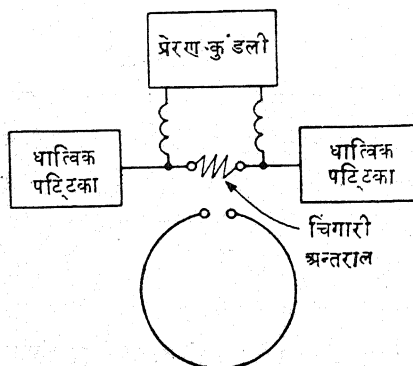
हर्ट्ज़ का प्रथम प्रेषित्र तथा अभिग्राही। (सौजन्य: इलेक्ट्रानिक्स)

इस लूप को क्षैतिज स्थिति में रखा जाता था ताकि प्रेषित्र में लगी पीतल की घुंडियां, अभिग्राही में लगी घुंडियों के सामने रहें। जब प्रेषित्र को ऊर्जित

और अभिग्राही को ठीक से समायोजित किया जाता था तो छोटे-छोटे स्फुलिंगों की एक श्रेणी, उन दोनों उपकरणों के एक दूसरे से कई फुट परे होने पर भी, अभिग्राही के वायव अन्तराल पर मानो पुल बांध देती थी। यह दूरी इतनी अधिक थी कि इस दृश्य घटना की व्याख्या प्रेरण मात्र द्वारा नहीं की जा सकती थी। और हर्ट्स ने पता लगा लिया कि वह इस विकिरण को कांच की खिड़की, ईंटों की दीवार और यहां तक कि रिक्त आकाश में से भी गुजार सकता था।

इसके बाद हर्ट्स ने डामर या एस्फाल्ट का एक बड़ा-सा प्रिज्म बनाया। उसने देखा कि उसकी विद्युत् चुम्बकीय तरंगों को एस्फाल्ट का प्रिज्म उसी सामान्य रीति से मोड़ देता था जैसे कि कांच का प्रिज्म, प्रकाश की तरंगों को अपवर्तित कर देता है।

जब हर्ट्स ने अपने प्रेषित्र के सामने धातु की बड़ी सी चादर को खड़े रुख रखा तो उसने देखा कि विद्युत् चुम्बकीय तरंगें न सिर्फ पूर्णतया परावर्तित होती रहती हैं अपितु प्रेषित्र तथा अभिग्राही के बीच एक तथाकथित अप्रगामी तरंग-प्रतिरूप भी स्थापित हो जाता है। (अप्रगामी तरंग प्रतिरूप में अधिकतम तथा न्यूनतम ऊर्जा की आकृतियां होती हैं। प्रेषित्र तथा धातु की परावर्त्तक चादर के बीच अभिग्राही को आगे-पीछे करके इन आकृतियों का पता लगाया जा सकता है। प्रेषित की जाने वाली आवृत्ति की आधी तरंग लम्बाई द्वारा, अधिकतम तीव्रता की आकृतियां पृथक् कर दी जाती हैं। यह अप्रगामी तरंग प्रतिरूप, न्यूटन वलयों के या उन व्यतिकरण चित्रों के सदृश होता है जो तब दीखते हैं जब एकवर्ण प्रकाश, प्रायः समान्तर रखी हुई कांच की दो पट्टिकाओं के बीच आंशिक रूप से परावर्त्तित होता रहता है।)

हर्ट्स अपना शोधकार्य १० तथा १०० मेगासाइकल प्रति सैकण्ड वाली आवृत्तियों पर करता रहा था। विद्युत् चुम्बकीय तरंगों तथा प्रकाश के बीच के अन्तराल को पाटने के लिए वह अपने उपकरण को अधिकाधिक छोटा बनाता गया। कहते हैं कि परीक्षण करता-करता वह मिलिमीटर तरंग वाले प्रदेश तक भी जा पहुँचा था।

उसने कई प्रकार के एन्टेनाओं का आविष्कार किया था। यथाः हर्ट्‌स या द्विअवयवी द्विध्रुव, शृंग तथा परवलयजिक तश्तरियां (पैराबोलाइडी डिशें), उसने अपने विकिरण के वहन के लिए ताम्बे की वृत्ताकार नलिका या तरंगपथ निर्धारित्र का भी उपयोग किया था। प्रसंगवश बता दें कि जब द्वितीय विश्व-युद्ध के दौरान रेडार का महत्त्व सिद्ध हो गया तब हर्ट्‌स के कई आविष्कारों को "पुनराविष्कृत" किया गया था।

लेकिन हर्ट्‌स, रेडियोतरंगों तथा प्रकाश के बीच के अन्तराल को पाट नहीं पाया था हालांकि, मैक्सवेल के पूर्व-कथनानुसार, उसके परीक्षण इस बात के काफी सबूत मुहय्या कर चुके थे कि दोनों दृश्य घटनाएं एक ही चीज थीं क्योंकि दोनों का व्यवहार बहुत हद तक एक सा ही था और कि रेडियो तरंगों की आवृत्ति जितनी अधिक उच्च होती है उतना ही वे प्रकाश की तरह कार्य करती हैं।

क्वान्टम सिद्धान्त का विकास

स्पेक्ट्रम अन्तराल को पाटने का काम दूसरे व्यक्तियों द्वारा किसी और काल में किन्हीं अन्य प्रविधियों द्वारा निष्पन्न होने के लिए बच रहा था। कैसी विचित्र बात है कि लेसर की दिशा में प्रथम संकेत ऊष्मागतिविज्ञान, अर्थात्, ऊष्मा तथा इसके प्रभावों की खोज के क्षेत्र में मिला था।

कृष्णिका प्रहेलिका

उन्नीसवीं सदी के अन्तिम वर्षों में जिस पुरानी पहेली ने ऊष्मागति-वैज्ञानिकों का ध्यान आकृष्ट किया था वह कृष्णिका-विकिरक का आचरण था। एक ऐसे डब्बे या खोखले गोले की कल्पना कीजिए जो वायुरोधी है और सम्भवतः लोहे का बना है। इसके अन्दर के पृष्ठ पर नमदे का मोटा अस्तर चढ़ा हुआ है और इसी नमदे के ऊपर काजल की एक समान तह इस प्रकार चढ़ी है कि पृष्ठ चपटा और समतल बन गया है। ऐसे बन्द स्थान की ओर जितनी भी दृश्य ऊर्जा छोड़ी जाती है, सारी की सारी अवशोषित हो जाती है और जरा सी भी परावर्तित नहीं होती। कारण ? प्रकाश के सब अवशोषकों में से कृष्णिका सर्वोत्कृष्ट होती है।

अब कल्पना कीजिए कि इस कृष्णिका को सब तरफ से बन्द कर दिया गया है और एक छोटा-सा छिद्र मात्र रख लिया गया है। प्लेटिनम के एक दीप्त तन्तु में से निकलने वाले ताप तथा प्रकाश को, लेंसों के एक तन्त्र द्वारा इस बन्द स्थान के भीतर फोकस किया गया है।

ऊर्जा एक अन्दरूनी दीवार से दूसरी अन्दरूनी दीवार तक उछलती फिरती है और अन्ततः, काजल के बने पृष्ठ द्वारा अवशोषित हो जाती है। बन्द कृष्णिका में डाली गई ऊष्मा तथा प्रकाश की ऊर्जा का अन्तिम परिणाम यह होता है कि कृष्णिका विकिरण-ऊर्जा की अधिकतम मात्रा को उत्सर्जित करती है। अवरक्त तथा दृश्य आवृत्तियों की दृष्टि से इस विकिरण ऊर्जा का सम्भावित सीमान्तर सब से अधिक व्यापक होता है।

१८९० के बाद के दशक में भी बोलोमीटर (तेजमापी) नाम के उपकरण द्वारा, विकिरण-ऊर्जा की मात्रा तथा आवृत्ति को काफी हद तक सही-सही माप सकना सम्भव हो चुका था। इस बोलोमीटर पर अवरक्त या दृश्य प्रकाश-फिल्टर का आवरण रहता था। यह आवरण केवल उस आवृत्ति के विकिरण को गुजरने देता था जिसे मापना होता था। एक बोलोमीटर तथा फिल्टरों के एक उपयुक्त सेट की सहायता से, कोई भी भौतिकीविद् किसी पिण्ड से प्रत्येक आवृत्ति पर उत्सर्जित होने वाले विकिरण की मात्रा को माप सकता था।

उन्नीसवीं सदी के अन्तिम वर्षों में कृष्णिका पर जो शोध कार्य हुए थे उनमें कृष्णिका के छेद में बोलोमीटर तथा फिल्टर को तब निविष्ट कर दिया जाता था जब कृष्णिका की ऊर्जा एक पूर्वनिर्धारित तापमान तक पहुंच जाती थी। भिन्न-भिन्न फिल्टरों का उपयोग करके भौतिकीविद् इतने काफी पाठ्यांक ले लेता था कि तरंगलम्बाई के विपर्यास में ऊर्जा के एक निष्कोण वक्र को आलेखित कर सके। इसके बाद कृष्णिका की ऊष्मा को एक और पूर्वनिर्धारित तापमान तक बढ़ाया जाता था और इतने काफी पाठ्यांक ले लिए जाते थे कि तरंग लम्बाई के विपर्यास में विकिरित ऊर्जा के दूसरे वक्र को आलेखित किया जा सके।
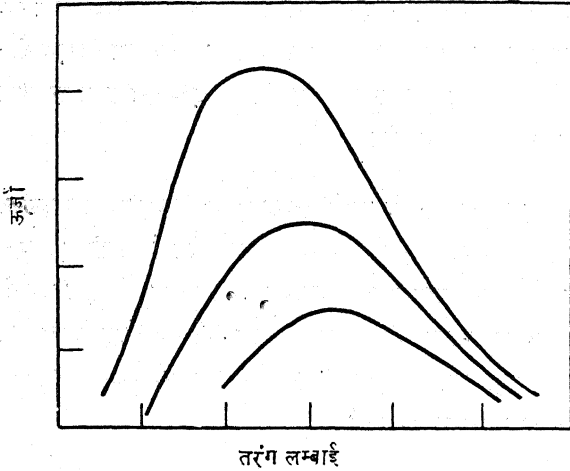
कृष्णिका के विकिरण के इन वक्रों में आवृत्ति के साथ-साथ ऊर्जा के परिवर्तन को दिखाया गया है।

(सौजन्य : इलेक्ट्रानिक्स)

तापमानों के सारे के सारे सीमान्तर पर ये प्रयोग किए गए थे और इनसे प्राप्त परिणाम, उस जमाने के भौतिकीविदों के लिए एक पहेली बन गए थे। यह तो आशंसा के अनुरूप था कि वक्र के नीचे आने वाला क्षेत्र या तप्त कृष्णिका द्वारा उत्सर्जित विकिरण ऊर्जा का कुलयोग, कृष्णिका के तापमान की प्रत्येक वृद्धि के साथ बढ़ता जाता था। लेकिन एक बात ऐसी भी हो रही थी जो अनाशंसित थी। तरंग लम्बाई के अनुसार होने वाले विकिरण-ऊर्जा के वितरण में भी तापमान के साथ परिवर्तन आ रहा था।

निम्न तापमानों पर, विद्युत् चुम्बकीय स्पेक्ट्रम के सुदूर अवरक्त प्रदेश में, छोटे-छोटे अन्तरालों वाली कुछेक तरंग लम्बाइयों के आसपास संहत विकिरण-ऊर्जा तथा विकिरण ऊर्जा का उच्चतम मान, दोनों ही उच्च थे। साधारण तापमानों पर विकिरण ऊर्जा की तरंगलम्बाइयाँ, निकट अवरक्त प्रदेश में अधिक

व्यापक रूप से फैल जाती थीं लेकिन तीव्रता के लिहाज से उच्चतम मान कुछ न्यूनतर रहता था। उच्चतापमानों पर विकिरण-ऊर्जा की तरंग लम्बाइयां, अवरक्त तथा दृश्य ऊर्जा के सारे प्रदेश में व्यापक रूप से फैल जाती थीं और विकिरण ऊर्जा का उच्चतम मान और भी निम्नतर रहता था।

कृष्णिका के इस आचरण की व्याख्या के लिए भौतिकीविदों ने कितने ही सिद्धान्तों और परिकल्पनाओं को छान मारा। लेकिन बेकार। पुराने ऊष्मागतिक सिद्धान्तों से इस समस्या का समाधान नहीं हो पा रहा था।

प्लैंक तथा उसका स्थिरांक

अन्ततः, १९०० में ऊष्मागतिकी के एक जर्मन प्रोफेसर, मेक्स प्लैंक ने कृष्णिका की समस्या के प्रति एक ऐसा दृष्टिकोण अपनाया जो परम्परागत नहीं था।

उसका तर्क यह था कि अगर चिरसम्मत सिद्धान्त से कोई ऐसा समीकरण प्राप्त नहीं होता जो कृष्णिका के आचरण की व्याख्या कर सके तो क्यों न एक ऐसा समीकरण तैयार किया जाय जो ऐसा कर सके और क्यों न चिरसम्मत सिद्धांत की उपेक्षा कर दी जाय ? आम तौर पर ऐसी वक्र-आसंजन-विधि, न सिर्फ परम्परा से बाहर होती है बल्कि बुद्धिमत्तापूर्ण भी नहीं होती। इंजिनीयरी के द्वितीय वर्ष के पाठ्यक्रमों में इसे आंकड़ों की "लीपापोती" कहा करते हैं। वैज्ञानिक क्षेत्रों में भी इसको पसन्द नहीं किया जाता। कारण स्पष्ट है। आसंजित वक्र, आंकड़ों के प्रायः एक ही सेट के साथ फिट बैठता है और जब कोई दूसरा वैज्ञानिक, नवीनतर आंकड़े ढूंढ निकालता है तो यह अमान्य सिद्ध हो जाता है।

यद्यपि उस जमाने के भौतिकीविदों ने प्लैंक के सिद्धांतों पर ध्यान नहीं दिया फिर भी वह अपने काम में जुटा रहा। प्लैंक का तर्क यह था कि काजल के प्रत्येक अणु को उच्च-आवृत्ति-ऊर्जा का ऐसा छोटा-सा जनित्र माना जा सकता है जो ऊष्मा की संभरित ऊर्जा के प्रभाव से कम्पन करता है।

यहां तक तो प्लैंक का सिद्धांत, पुराने सिद्धांत से मेल खाता था। लेकिन

उसका अपने समकालीन लोगों से एक बात में मतभेद हो गया : वह यह मानता था कि ये सूक्ष्म जनित्र, ऊर्जा का अभिग्रहण तथा प्रेषण सिर्फ विविक्त मात्राओं में ही कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, मान लो, किसी दोलित्र (या विकिरण-ऊर्जा के जनित्र) से उत्पन्न होने वाली ऊर्जा की लघुतम मात्रा 'ऊ' है। तो हम २ऊ, ३ ऊ, १०ऊ, ९२ऊ, तो प्राप्त कर सकेंगे लेकिन ३.१४१६ ऊ या ६·५ ऊ या १३·९ ऊ कदापि नहीं। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि हमें ऊर्जा के लघुतम अनुमेय परिमाण का कोई समाकल या पूर्णांक-गुणज ही प्राप्त होगा।

प्लैंक ने पता लगा लिया कि किसी दोलित्र की (अर्गों में) जो ऊर्जा होती है वह विकिरण की आवृत्ति (चक्र प्रतिसैकण्ड वारियां प्रतिस्थिरांक में) के बराबर होती है। स्वाभाविक रूप से, इस स्थिरांक को प्लैंक का स्थिरांक कहते हैं। यह $६·६२५८ \times १०^{-२७}$ अर्ग-सैकण्ड के बराबर होता है।

प्लैंक के सिद्धांत को क्वांटम सिद्धान्त भी कहते हैं। इसके अनुसार ऊर्जा, संतत तरंगों के रूप में नहीं अपितु पैकेटों (पुलिन्दों) के रूप में प्रगमन करती हैं। यह, लेसर तथा मेसर के कार्य के लिए सैद्धांतिक आधार प्रदान करता है। आई-न्स्टाइन तथा हमारे आधुनिक भौतिकीविदों का सारा शोधकार्य, मैक्स प्लैंक की उस परिकल्पना से शुरू होता है जो किसी जमाने में दुर्बल तथा "कामचलाऊ" मानी जाती थी।

प्रकाश-विद्युत्

सन् १८८९ में हर्ट्स ने प्रेक्षणों की एक श्रेणी को निष्पन्न किया था जिसने क्वांटम-इलेक्ट्रानिकी के नाटक के दूसरे अंक के लिए मंच तैयार कर दिया था। उसने देखा था कि अगर उसके प्रेषित्र के स्फुलिंग-अन्तराल तथा अभिग्राही के बीच कांच की एक चादर रख दी जाती है तो अभिग्राही पर स्फुलिंगों को प्रकट करना अधिक कठिन हो जाता है। उसने इसका स्पष्टीकरण यूं किया कि जब कांच पट्टिका नहीं होती तब, प्रेषित्र के स्फुलिंग-विसर्जन से आने वाला पराबैंगनी प्रकाश कुछेक ही फुटों के फासले पर पड़े अभिग्राही की पीतल की बनी चमकदार घुंडियों

पर पड़ता है। यह पराबैंगनी प्रकाश, घुंडियों के आसपास की वायु का आयनीकरण कर देता है और इस प्रकार, वायु को विद्युत् का चालक बना कर, स्फुलिंगों को उत्तेजित करना आसान कर देता है। कांच की पट्टिका, इस पराबैंगनी प्रकाश को रास्ते में रोक लेती है और, इस प्रकार, स्फुलिंग को उत्तेजित करना कठिन कर देती है। इन प्रेक्षणों के आधार पर हर्ट्स, प्रकाश-विद्युत् की दृश्यघटना को निगमित कर सका।

आईंस्टाइन का फोटोन सिद्धान्त

कुछ साल बाद एल्बर्ट आईंस्टाइन ने (जो उन दिनों स्विट्जरलैण्ड के एक पेटेंट आफिस में क्लर्क का काम करता था) प्रकाश-विद्युत् की एक और अभिव्यक्ति पर खोज की। जब प्रकाश, जस्ते की किसी प्लेट के पृष्ठ से टकराता है तब निर्मुक्त होने वाले प्रत्येक इलेक्ट्रान में गतिज ऊर्जा की एक निश्चित मात्रा होती है जो उस वेग के रूप में प्रकट होती है जिसके साथ इलेक्ट्रान जस्ते की प्लेट से परे हटता है। क्वांटम सिद्धांत से पूर्व के युग में यह आशंसा युक्तियुक्त प्रतीत हो सकती थी कि तीव्रतर प्रकाश का उपयोग करके अधिक ऊर्जा या तीव्रतर गतिवाले इलेक्ट्रान पैदा किए जा सकते हैं। लेकिन ऐसा होता नहीं। अधिक तीव्र प्रकाश के इलेक्ट्रान तो अधिक पैदा होते हैं लेकिन उन सब का वेग वही पुराना होता है। अधिक ऊर्जा वाले, अर्थात् तीव्रतर वेगवाले इलेक्ट्रान प्राप्त करने के लिए जस्ते की प्लेट को प्रकाश के किसी ऐसे स्रोत से किरणित करना पड़ता है जिसकी तरंग लम्बाई लघुतर हो। प्रकाश का कोई भी स्रोत जो प्रचुर मात्रा में पराबैंगनी हो यह काम दे सकता है। उदाहरणार्थ, कोई आर्क-विसर्जन या प्रोफेसर हर्ट्स के स्फुलिंगों में से कोई एक।

आईंस्टाइन ने एक ऐसा गणितीय सूत्र निकालने की कोशिश की जो जस्ते की प्लेट से आने वाले इलेक्ट्रान के प्रकाश वैद्युत उत्सर्जन का वर्णन कर सके। वह यह देख कर हैरान रह गया कि इसकी अपनी वैद्युत समस्या तथा उस तापगतिक समस्या में कितना सादृश्य है जिस के लिए मैक्स प्लैंक ने हाल ही एक समाधान अभिगृहीत किया था। और यह सादृश्य पक्का निकला। आईंस्टाइन ने पाया

कि वह प्रकाश की आपतित किरण की ऊर्जा के क्वांटम (इसकी आवृत्ति तथा प्लैंक के स्थिरांक के गुणनफल) का समीकरण, निर्मुक्त इलेक्ट्रान की गतिज ऊर्जा तथा एक और ऐसे गुणधर्म के सर्वयोग के साथ कर सकता है जो अन्वेषणाधीन प्रकाशसंवेदी पदार्थ का गुणधर्म सिद्ध हुआ था। आईंस्टाइन ने इस गुणधर्म का नाम रखा, पदार्थ का "कार्यफल"।

आईंस्टाइन ने अपने फोटोन सिद्धांत को १९०५ में अर्थात् उसी वर्ष में प्रकाशित किया जिसमें उसने अपने विशिष्ट आपेक्षिकता-सिद्धांत को प्रकाशित किया था और इस प्रकार भौतिकी के विद्यार्थियों के मनों में सदा के लिए इन दो विषयों के बारे में घपला पैदा कर दिया। आईंस्टाइन, क्वांटम सिद्धांत को तापगतिकी के क्षेत्र से प्रकाश तथा विद्युत् के विशालतर क्षेत्रों में ले आया था।

इन्द्रधनुषों का पीछा

अब क्वांटम इलेक्ट्रानिकी के विकास में, स्पेक्ट्रम-विज्ञानियों ने मुख्य रौल सम्हाल लिया। और तब से वे ही मुख्य भूमिका निभाते आ रहे हैं।

वर्तमान शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में स्पेक्ट्रमविज्ञानी खोज का मुख्य विषय था, हाइड्रोजन का परमाणु। यह चुनाव तर्कसंगत था क्योंकि इसमें एक अकेला इलेक्ट्रान होता है जो एक अकेले प्रोटोन के गिर्द घूमता रहता है। स्पेक्ट्रम विज्ञानियों ने पता लगाया है कि हाइड्रोजन के तीन स्पेक्ट्रम होते हैं।

ऊष्मा द्वारा या किसी विद्युत्-आर्क में रख कर किसी वस्तु को ऊर्जित किया जाता है तो इस में से एक अभिलक्षणिक उज्ज्वल रेखा या उत्सर्जन-स्पेक्ट्रम निकलता है। इसकी श्वेततप्तदीप्ति के कई आवृत्ति घटक होते हैं जिनकी तीव्रताएं बाकियों से उच्चतर होती हैं। यही सारे तीव्र आवृत्ति घटक, समूहबद्ध होकर, उस पदार्थ के उत्सर्जन-स्पेक्ट्रम का निर्माण करते हैं।

हाइड्रोजन का एक उत्सर्जन-स्पेक्ट्रम, दृश्य क्षेत्र में होता है। इस स्पेक्ट्रम का पता, जोहन बायर नाम के स्विट्जरलैण्ड निवासी भौतिकीविद् ने उन्नीसवीं सदी के

अन्तिम वर्षों में लगाया था। हाइड्रोजन स्पेक्ट्रम के भीतर जो चार प्रधान तीव्र आवृत्तियां या तथाकथित स्पेक्ट्रमरेखाएं होती हैं, वे हैं: ६,५६३एं, ४,८६१ एं, ४,३४० एं, तथा ४,१०२ एं। बायर ने देखा कि इन रेखाओं से एक सुस्पष्ट गणितीय श्रेणी का निर्माण होता है।

बाद में एक अमरीकी भौतिकीविद्, थियोडर लाईमैन, ने पराबैंगनी प्रदेश में हाइड्रोजन के एक और स्पेक्ट्रम का पता लगाया और फ्रेडरिक पाशन नाम के जर्मन स्पेक्ट्रमविज्ञानी ने अवरक्त प्रदेश में तीसरे स्पेक्ट्रम का पता लगाया।

बोर : परमाणु के भीतर एक झांकी

अब क्वांटम सिद्धांत की सहायता से ज्ञात हुआ कि इन रेखाओं में से प्रत्येक ऊर्जा के एक क्वांटम विशेष का अनुरूपी होता है। लेकिन उन सब का मतलब क्या होता है? इसका उत्तर दिया डेन्मार्क के महान् भौतिकीविद् नील्स बोर ने, यह अभिगृहीत करके कि हाइड्रोजन के परमाणु पर कुछेक सुस्पष्ट वलय या कोश होते हैं जिनमें रह कर इसका इलेक्ट्रान, न्यूक्लियस के गिर्द घूमता रह सकता है। प्रोटोन से दूरवर्ती वलय, उच्चतर ऊर्जा की अवस्थाओं के साथ तथा निकटवर्ती वलय, निम्नतर ऊर्जा की अवस्थाओं के साथ संगत होते हैं।

जब इलेक्ट्रान किसी बाह्य वलय से किसी आभ्यन्तर वलय में आ पड़ता है तो इससे ऐसे फोटोन उत्सर्जित होते हैं जो एक अभिलक्षणिक, उज्ज्वल स्पेक्ट्रम रेखा के साथ संगत होते हैं; कक्षा के ये सारे अनुमेय विस्थापन, समूहबद्ध होकर उस उज्ज्वल रेखा या उत्सर्जन स्पेक्ट्रम का निर्माण करते हैं जिनका उपयोग किसी पदार्थ को पहचानने के लिए किया जा सकता है। इसी प्रकार, जब इलेक्ट्रान किसी आभ्यन्तर वलय से किसी बाह्य वलय की ओर जाता है तो वह ऊर्जा के क्वांटम विशेष को अवशोषित कर लेता है।

बोर के कार्य ने, परमाणु के भीतर की गतिविधि की अच्छी झांकी दिखा दी।

इससे लाभ हुआ लेकिन काफी नहीं। बोर-परमाणु, हाइड्रोजन के मामले

के लिए पर्याप्त था लेकिन इससे उन अनेक प्रभावों की व्याख्या नहीं होती थी जो भौतिकीविदों को परेशान करते जा रहे थे—हाइड्रोजन के मुकाबले अधिक संख्या के इलेक्ट्रानों वाले गुरुतर परमाणुओं में तथा अणुओं में अर्थात् समरूप या असमरूप परमाणुओं के समूह में दीखने वाले प्रभाव।

क्वांटम यांत्रिकी

इन गुरुतर परमाणुओं में, सुस्पष्ट स्पेक्ट्रमी रेखाओं के स्थान पर बैण्ड (पट्टियां) होते हैं और इन प्रभावों के स्पष्टीकरण के लिए बोर-मॉडल जरूरत से ज्यादह सादा साबित हुआ। इस दिशा में भारी प्रगति हुई जब, एक ही वर्ष —१९२५— में, एक दूसरे से स्वतन्त्र कार्य करने वाले दो अन्वेषकों ने क्वांटम-यांत्रिकी का पता लगाया।

जर्मन भौतिकीविद् वर्नर हीसनवर्ग, स्पेक्ट्रमविज्ञानी अन्वेषणों के परिणामों पर शोधकार्य करके तथा उनको, उस जमाने के लिहाज से नई, मैट्रिक्स नाम की गणितीय युक्ति के रूप में सूत्रित करके अपने निष्कर्षों पर पहुंचा था। शुरू में उसके परिणामों को मैट्रिक्स यांत्रिकी कहा जाता था।

ऑस्ट्रियन भौतिकीविद् अर्विन श्रीडिंगर भी लगभग इन्हीं निष्कर्षों पर पहुंचा था लेकिन दूसरे मार्ग से। उसका काम, लुई डि ब्रोग्ली नाम के फ्रांसीसी द्वारा किए गए पहले के अध्ययनों पर आधारित था। डिब्रोग्ली ने इस पहेली का निश्चित रूप से उत्तर दे दिया था जो जूनियर हाई स्कूल के विज्ञान के कुछ विद्यार्थियों को अब भी गड़बड़ाती रहती है : इलेक्ट्रान, तीव्र चलने वाला कोई कण है या यह कोई तरंग है। ब्रोग्ली ने सिद्ध कर दिया कि किसी भी तीव्रगति कण को तरंग माना जा सकता है और यह उसी गणितीय विवेचन के अधीन आता है जो किसी तरंग पर लागू होता है।

इस प्रकार, श्रीडिंगर ने पुराने तरंग समीकरण पर एक सम्भाविता-सम्बन्धी विवेचन का प्रयोग किया और एक सुन्दर गणितीय सूत्र को प्राप्त किया। इसे,

स्वभावतः, श्रीडिंगर के तरंग-समीकरण का नाम दिया गया। उसका कार्य, तरंग-यांत्रिकी के तौर पर प्रसिद्ध हुआ।

श्रीडिंगर तथा हीसनबर्ग, दोनों के काम के साथ अतिजटिल गणित जुड़ी हुई थी अतः लोग एकदम यह न समझ सके कि मैट्रिक्सयांत्रिकी तथा तरंग यांत्रिकी, एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। लेकिन उनका संबन्ध प्रत्यक्ष होकर रहा और १९२० के बाद के दशक के अन्तिम वर्षों से हम क्वांटमयांत्रिकी की चर्चा करने लगे हैं। यह वह विज्ञान है जिसने माधव को सर्वप्रथम इस बात का सही ज्ञान कराया कि परमाणु के भीतर क्या कुछ होता रहता है, और जिसकी सहायता से आज का भौतिकीविद् पहले से ही बता सकता है कि कौन से पदार्थ लेसर का काम देंगे, किन आवृत्तियों पर देंगे और निविष्ट ऊर्जा के किन ऊर्जा स्तरों पर। लेकिन, क्वांटम-यांत्रिकी अत्यधिक जटिल विषय है और यह पूर्वकथन, प्रायः सदा ही, मोटे तौर पर ही सही निकलते हैं। सावधानी के साथ किए गए प्रयोग-शाला के शोधकार्य की अभी बेशुमार गुंजाइश है।

लेसरों तथा मेसरों की भविष्यसूचना

लेसर तथा मेसर, दोनों की बाबत भविष्यकथन, क्वांटम-यांत्रिकी के विज्ञान के जन्म से बहुत पहले हो चुका था।

आईंस्टाइन : उद्दीपित उत्सर्जन

सन् १९१७ में आईंस्टाइन को अनुभव हुआ कि विकिरण को अवशोषित और उत्सर्जित करने वाली गैस के तापीय साम्य की व्याख्या के लिए उसे विकिरण के किसी प्रेरित उत्सर्जन की उपस्थिति को मान कर चलना होगा (उदाहरणार्थ, गैस की किसी ऐसी तापदीप्त नलिका में जिसमें निविष्ट ऊष्मा, निर्गम ऊष्मा के समान होती है और, अतएव, तापमान में कोई परिवर्त्तन नहीं आता।)

उसने सिद्ध किया कि यहां तीन प्रक्रमों से वास्ता है, अर्थात् अवशोषण, स्वतः उत्सर्जन (प्रतिदीप्ति), तथा उद्दीपित उत्सर्जन जिसे बाद में लेसर क्रिया कहा जाने

लगा। लेकिन चूंकि समान अवस्थाओं में इनमें से प्रथम दो प्रक्रम प्रमुख होते हैं, तीसरे प्रक्रम को महत्त्वपूर्ण प्रभाव नहीं समझा गया।

हीटलर : प्रेरित उत्सर्जन

वाल्टर हीटलर ने उद्दीपित उत्सर्जन का वर्णन "प्रेरित उत्सर्जन" के शीर्षक से किया था। यह भौतिकीविद्, आयरलैण्ड का रहने वाला था, इसकी शिक्षा जर्मनी में हुई थी और यह स्विट्जरलैण्ड के ज्यूरिच नगर में अध्यापन कार्य करता था। इसकी पुस्तक, दी क्वांटम थ्योरी आफ रेडियेशन (विकिरण का क्वान्टम सिद्धान्त), १९५४ में प्रकाशित हुई थी।

वेबर : मेसर-सिद्धान्त

जोसफ वेबर, विद्युत् इंजिनीयरी का एक युवक प्रोफेसर था, मेरीलैण्ड विश्वविद्यालय में पढ़ाता था और अमरीकी नौसेना की युद्ध-सामग्री सम्बन्धी प्रयोगशाला का सलाहकार था। कैनेडा के ओटावा नामक नगर में १९५२ में जो इलेक्ट्रान-नली-अनुसन्धान सम्मेलन हुआ था उसमें जोसफ वेबर ने मेसर-प्रवर्द्धन के नियममात्र का वर्णन किया था—साथ में कोई क्रियात्मक युक्ति पेश नहीं की थी। वेबर, जो कि एनापोलिस-स्नातक था और नौसेना अधिकारी रह चुका था, उन दिनों वाशिंगटन डी०सी० के कैथोलिक विश्वविद्यालय से डाक्टरेट प्राप्त करने की तैयारी कर रहा था। वह क्वान्टम विद्युत् गतिकी तथा सूक्ष्मतरंग-स्पेक्ट्रम विज्ञान का विशेषज्ञ माना जाता है।

फैब्रिकेंट : रूसी दावेदार

और, सदा की भांति, रूसी लोग किसी दिन सम्भवतः यह दावा करेंगे कि लेसर तथा मेसर, दोनों के आविष्कार उन्होंने किए थे।

मॉस्को पावर इंस्टीट्यूट के वी०ए० फैब्रिकेंट को अब एक पेटेंट दिया गया है जिस पर १८ जून, १९५१ की तिथि लिखी है। वस्तुतः, फैब्रिकेंट के पेटेंट को १९५९ तक प्रकाशित नहीं किया गया था। पहले तो सोवियट पेटेंट आफिस ने

उसकी दरख्वास्त नामंजूर कर दी थी और उसने न तो कोई मेसर बनाया है, न कोई लेसर। सोवियट संघ में भौतिक नियमों के निरूपण को या दृश्य-घटनाओं के भौतिक गुणधर्मों के विवरण को और नए आविष्कारों को भी पेटेंट कराया जा सकता है।

फैब्रिकैंट का पेटेंट इन शब्दों में है: "विद्युत् चुम्बकीय विकिरण (परा-बैंगनी, दृश्य, अवरक्त तथा रेडियोतरंग पट्टियों) को प्रवर्धित करने की विधि जिसकी विभिन्नता यह है कि प्रवर्धित विकिरण को ऐसे माध्यम में से गुजारा जाता है जो सहायक विकिरण या अन्य साधनों द्वारा ऐसा संकेन्द्रण पैदा करता है जो तुलनात्मक दृष्टि से अन्य उत्तेजित अवस्थाओं के अनुरूपी उच्चतर ऊर्जा स्तरों पर होने वाले, परमाणुओं के, अन्य कणों के या तन्त्रों के साम्य-संकेन्द्रण से अधिक होता है।"

इसमें तकरीबन वे सब बातें आ जाती हैं जिनका लेसर या मेसर की क्रिया से सम्बन्ध है। फिर भी, फैब्रिकैंट का कार्य उस चीज से सम्बद्ध रहा प्रतीत होता है जिसे अब हम गैस लेसर कहते हैं और इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि उसने लेसर क्रिया को वस्तुतः क्रियात्मक रूप में निष्पन्न किया था। गैस-लेसरों पर महत्त्वपूर्ण शोधकार्य बाद में, एन०जी० बेसोव तथा ए०एम० प्रोखोरोव ने मास्को के भौतिकी सम्बन्धी लेबेडेव संस्थान में किया था।

मेसर की जांच

इस सब के बाद हम चार्ल्स एच० टाउन्स तक आ पहुंचते हैं। यह उस मेसर का वास्तविक आविष्कारक है जो लेसर का पूर्वगामी है। शायद ही कोई विषय हो जिसमें टाउन्स की दिलचस्पी न हो। वह (यूरोपीय) पुनर्जागरण काल का व्यक्ति प्रतीत होता है और ऐसा लगता है कि किसी डा विन्सी की कलम हमारी सदी में लगा दी गई है। संकीर्णवृत्ति तथा श्रीविहीन विशेषज्ञों की इस दुनिया में, उसका व्यक्तित्व भी उतना ही रोचक है जितने उसके आविष्कार।

मेसर का आविष्कारक : चार्ल्स एच० टाउन्स

टाउन्स, जो कि मुख्यत: एक भौतिकीविद् तथा शिक्षक के रूप में प्रसिद्ध है, गहरे पानी का गोताखोर भी है, पर्वतारोही भी, विश्वयात्री भी है, अजनबी आर्किडों का नस्ल-सुधारक भी, प्रमुख राष्ट्रीय सुरक्षा परामर्श-निगम का भूतपूर्व उपाध्यक्ष भी है, और कम से कम चार विदेशी भाषाओं का पण्डित भी।

मन तो करता है कि चार्ल्स टाउन्स का चरित्र-चित्रण एक छोटे पादरी के रूप में किया जाय। और सच पूछो तो एक वक्त ऐसा भी था जब वह कोलम्बिया विश्वविद्यालय के समीप ही, मनहट्टन के रिवरसाइड चर्च (नदी तटवर्ती गिरजे) में छोटे पादरी का काम किया करता था। फिर वह गाने वालों की मण्डली में भी रह चुका है, ब्वायस्काउट नेता भी।

नए वैज्ञानिक आविष्कार को देख कर मन में जो प्रतिक्रिया होती है, टाउन्स के अनुसार, वह भी किसी आध्यात्मिक अनुभूति या दैवीय ज्ञान के सदृश प्रबल भावात्मक अनुभूति होती है।

चार्ल्स टाउन्स को प्रथम मेसर के पदचिन्ह तो १९३१ से ही दीखने लगे थे। तब वह सोलह साल का था और उसने अपने जन्म-स्थान, नार्थ केरोलिना के ग्रीनविल नगर के फर्मन विश्वविद्यालय में प्रवेश किया था। उसे भौतिकी के प्रति अपनी रुचि का शीघ्र ही ज्ञान हो गया था लेकिन उसने ग्रीक, लैटिन, एंग्लोसेक्सन, फ्रेंच जर्मन साहित्यों का भी गहन अध्ययन किया। फर्मन में तीन साल बिताने के बाद उसे आधुनिक भाषाओं में बी०ए० की उपाधि मिली। चतुर्थ वर्ष के बाद उसे भौतिकी में बी०एस० की उपाधि मिली।

इसके बाद, टाउन्स को एक छात्रवृत्ति मिल गई और वह ड्यूक विश्वविद्यालय में चला गया। इक्कीस साल की आयु में उसने फ्रेंच, रूसी तथा इटालियन पाठ्य-क्रमों को पढ़ते-पढ़ते अपनी एम० ए० की तैयारी भी पूरी कर ली थी।

इसके बाद अपने जन्म-स्थान नार्थ कैरोलिना से पश्चिम की ओर, पैसाडीना

स्थित कैलिफोर्निया इंस्टीट्यूट आफ टैकनालाजी में चला गया ; यह संस्था उन दिनों विज्ञान के विद्यार्थियों का मक्का बनी हुई थी। उसको पी-एच०डी० की उपाधि मिली १९३९ में, ठीक ऐसे समय पर मानो भाग्य ने द्वितीय विश्वयुद्ध में उसकी कोई नियुक्ति पहले से ही कर रखी थी।

रेडार के रास्ते, मेसर तक

टाउन्स ने बेल टेलीफोन व लैबोरेटरीज में एक पद स्वीकार कर लिया।

मेसर का आविष्कारक चार्ल्स एच० टाउन्स (दाएं) तथा गैस-लेसर का आविष्कारक अली जवान (बाएं) आईंस्टाइन के आपेक्षिकता सिद्धान्त को परखने की तैयारी कर रहे हैं।

(सौजन्य : इलेक्ट्रानिक्स)
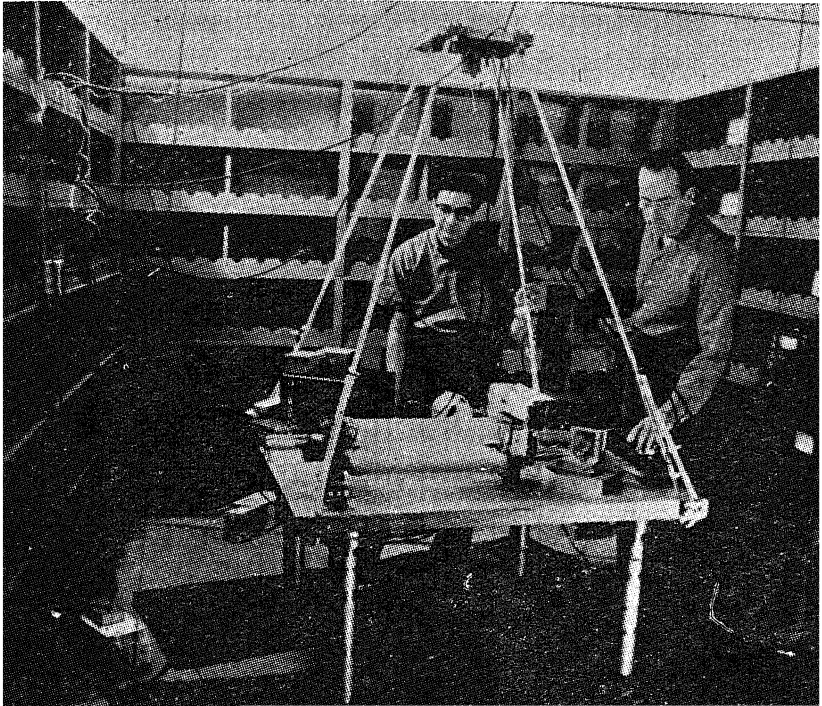
सब से पहले उसने इन प्रयोगशालाओं के उस पाठ्यक्रम पर काम शुरू किया जो युवा वैज्ञानिकों के प्रशिक्षण के लिए बने हुए थे ; और, प्रयोगशालाओं के विभिन्न विभागों से उसका परिचय धीमे-धीमे हुआ।

लेकिन यूरोप में महायुद्ध पहले ही छिड़ चुका था और शीघ्र ही टाउन्स को निर्देश हुआ कि वह डीन वूलब्रिज के साथ काम करे। बाद में उसने एक और रेडार-इंजिनीयर, साइमन रेमो, से जा मिलना था और रेमो-वूलब्रिज नाप के प्रसिद्ध कार्पोरेशन का निर्माण करना था। वूलब्रिज उन दिनों रेडार द्वारा बम्ब चलाने की प्रणाली का डिजाइन बना रहा था।

रेडार की पुर्जेबाजी की अपेक्षा सैद्धांतिक भौतिकी में टाउन्स की रुचि अधिक थी लेकिन सूक्ष्म तरंग—इलैक्ट्रानिकी के साथ उस का यह युद्धकालीन परिचय ही था जिसने उसे मेसर की लीक पर डाल दिया।

द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान रेडार के कर्मीदलों तथा चालकों के बीच, एक दूसरे के पक्ष के रेडार को जाम करने के उपकरणों के प्रयोग का जो द्वन्द्वयुद्ध चला था उसने रेडार के डिजाइन कर्ताओं को बाध्य कर दिया कि आवृत्ति को अधिकाधिक उच्च करते जायं। अन्ततोगत्वा, वायुवाहित उपयोग के लिए बने संग्रामिक रेडार सेट, आवृत्ति के लिहाज से १०,००० मेगासाइकिल प्रतिसैकण्ड तक या, तरंग लम्बाई के हिसाब से, तीन सेंटीमीटर तक जा पहुंचे।

इसके बाद वायुसेना ने बेल कम्पनी से अनुरोध किया कि २४,००० मेगासाइकिल प्रति सैकण्ड वाले रेडार पर शोध-कार्य करे। वायुसेना का विचार था कि जहां तक रेडार का संबंध है, ऐसा रेडार आवृत्ति के बिलकुल अक्षत सीमान्तर का उपयोग करेगा और बमबारी का अधिक परिशुद्ध उपकरण भी प्रदान करेगा।

लेकिन टाउन्स को याद था कि इस १$\frac{1}{4}$ सेंटीमीटर तरंग लम्बाई वाले प्रदेश में होने वाले विद्युत् चुम्बकीय विकिरण को, वायु में सदा उपस्थित रहने वाले अदृश्य जल वाष्प द्वारा दृढ़तापूर्वक अवशोषित कर लिया जाता है। लेकिन वायुसेना चाहती थी कि इसको आजमा कर देखा जाय। सो, टाउन्स ने

उपकरण बनाया और जांचा और, जैसा कि वह पहले कह चुका था, इसने बहुत अच्छा काम नहीं दिया।

लेकिन इस असफलता पर व्यय हुआ धन, कई गुणा होकर वायुसेना को वापिस मिल गया क्योंकि इस कार्य ने टाउन्स की दिलचस्पी सूक्ष्मतरंग-स्पेक्ट्रम विज्ञान में पैदा कर दी और उसकी दिलचस्पी में से मेसर भी पैदा हुआ, लेसर भी और हथियारों की एक ऐसी पीढ़ी पैदा हुई जिसकी अन्तःक्षमता इतनी अधिक थी कि किसी भी रेडार-बमबारी-प्रणाली की कमी हो नहीं सकती थी।

टाउन्स जान चुका था कि १$\frac{१}{४}$ सेंटीमीटर तरंगों को अमोनिया भी अवशोषित कर लेता है, जलवाष्प भी। उसने माप कर पता लगाया कि विभिन्न परीक्षात्मक अवस्थाओं में ऊर्जा का कितना अवशोषण होता है और इस बात पर शोधकार्य किया कि यह अवशोषण क्यों होता है। सन् १९४७ में टाउन्स ने, कोलम्बिया विश्वविद्यालय के विशिष्ट भौतिकीविद् आइसिडोर आई० राबी का यह सुझाव स्वीकार कर लिया कि वह बेल लेबोरेटरीज को छोड़ कर कोलम्बिया के संकाय (फैकल्टी) में आ जाय। टाउन्स शीघ्र ही, सूक्ष्मतरंग-स्पेक्ट्रम विज्ञान, अर्थात्, पदार्थ के रहस्यों का पता लगाने में सूक्ष्मतरंगों के उपयोग में प्रमुख प्रामाणिक व्यक्ति बन गया। सन् १९५० में अर्थात् इस संकाय में आने के दो वर्ष बाद टाउन्स भौतिकी का पूरा प्रोफेसर बन गया।

मेसर की संकल्पना

सन् १९५० के शुरू की बात है। नौसेना के अनुसन्धान-कार्यालय ने वैज्ञानिकों तथा इंजिनीयरों की एक समिति को आर्थिक सहायता दी कि मिलिमीटरी तथा उपमिलिमीटरी तरंगों के उत्पादन की समस्या पर शोध कार्य करे। टाउन्स ने इस समिति में लगभग छह मास काम किया मगर उसे इसकी प्रगति पर तथा भावी सफलता के बारे में गहरा असन्तोष रहा।

इस के बाद, १९५१ की वसन्त ऋतु में, उसके मन में वह ज्ञान प्रकट हुआ जो सीधा मेसर के जन्म का कारण बना। टाउन्स, इस समिति की बैठक में भाग

लेने के लिए वाशिंगटन डी०सी० गया हुआ था। वह अपने साले आर्थर एल० शॉलो के साथ किसी होटल के एक कमरे में ठहरा हुआ था। शॉलो, बेल लेबोरेटरीज में काम करता था। एक प्रातः टाउन्स, बड़े तड़के जगा। उसने चुपचाप कपड़े पहने ताकि उसके साले की नींद खराब न हो। वाशिंगटन की उस भूरी भोर में क्या हुआ? उसी के शब्दों में सुनिए: "मैंने देखा कि मैं फ्रैंकलिन पार्क की एक बैंच पर बैठा हूं और पूर्णतया खिले हुए एजेलिया पुष्पों की सराहना कर रहा हूं और साथ ही साथ हैरान हूं कि अति-क्षुद्र विद्युत् चुम्बकीय तरंगों के उत्पादन की समस्या का कोई वास्तविक समाधान है भी कि नहीं।"

तब तक अतिक्षुद्र तरंगों के उत्पादन के लिए उन कोटरों या तथाकथित अनुनादकों को अधिकाधिक छोटा किया जाता रहा था जिनमें तरंगें शक्तिसंचयन करती थीं। लेकिन आखिर एक हद है; इंसान चीजों को कहां तक छोटा कर सकेगा? इस काम के लिए पदार्थ के अपने परमाणु या अणु कैसे रहेंगे? अनुनादकों के तौर पर उन्हीं से काम क्यों न लिया जाय?

इतिहास साक्षी है कि भौतिकीविद् इस रास्ते को एक तरफ छोड़ कर निकल जाते रहे हैं क्योंकि ऊष्मागतिकी के विशेषज्ञ यह निश्चायक तर्क प्रस्तुत करते रहे हैं कि अणु चिरपरिचित कृष्णिका या आदर्श तापविकिरक के मुकाबले अधिक ऊर्जा को विकिरित नहीं कर सकते। लेकिन आणविक किरणपुंजों पर किए गए ताजे परीक्षणों ने संकेत दिए कि ऊष्मागति विज्ञानियों की दलीलें सब जगह लागू नहीं होतीं।

टाउन्स आगे कहता है: "कुछ ही मिनटों में मैंने, अपनी आदत के मुताबिक, एक लिफाफे की पीठ पर, उत्तेजित अणुओं की अनिवार्य संख्या तथा कोटर में होने वाली स्वीकार्य अधिकतम हानियों के पदों में, दोलन की क्रान्तिक अवस्था को परिकलित कर डाला।

उसने समिति के अपने सहयोगियों के साथ अपने विचारों पर विमर्श नहीं किया अपितु इस प्रतीक्षा में रहा कि कब वह अपनी कोलम्बिया स्थित प्रयोगशाला
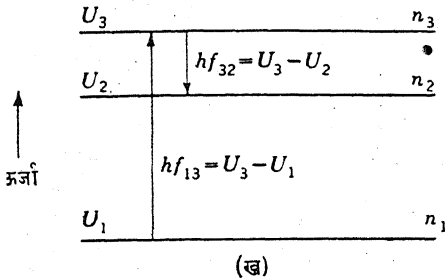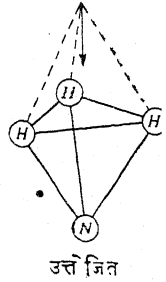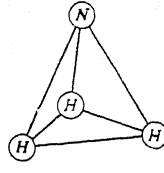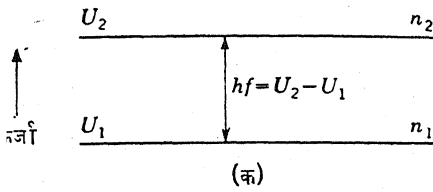
बाईं ओर : द्विस्तरीय अमोनिया-किरणपुंज-मेसर में ऊर्जा के स्तर। दाईं ओर: अमोनिया-अणु की आकृतियां।

(सौजन्य : इलेक्ट्रानिक्स)

में लौटे और प्रवर्धन सम्बन्धी अपनी नई संकल्पना पर शोध कार्य आरम्भ करे।

ये हैं कुछ विचार जिन्होंने टाउन्स को मेसर के पीछे लगा दिया। अगर अमोनिया के किसी अणु को देखें तो वह एक चतुष्फलक या चतुर्पार्श्विक पिरेमिड सा लगता है। इस पिरेमिड के प्रत्येक कोने पर एक परमाणु होता है। पिरेमिड के शिखर पर नाइट्रोजन का एक अकेला परमाणु होता है और इसके आधार के तीन कोनों पर हाइड्रोजन के तीन परमाणु होते हैं।

जब अमोनिया गैस को २४,००० मेगासाइकिल प्रति सैकण्ड की आवृत्ति वाली सूक्ष्मतरंग ऊर्जा द्वारा किरणित किया जाता है तो परमाणुओं के इस पिरेमिड का अन्दरला भाग मानो उलट कर बाहर आ जाता है। नाइट्रोजन का परमाणु हाइड्रोजन के तीन परमाणुओं से बने आधार में से मानो सुरंग बना कर

निकल जाता है और मूल अमोनिया अणु का दर्पण-प्रतिबिम्ब सा बना देता है। जब ऐसा होता है तो हम कहते हैं कि अणु उत्तेजित अवस्था में है।

जब अमोनिया गैस से भरी किसी थैली को किरणित किया जाता है तो प्रायः जितने अणु मूल अवस्था से उत्तेजित अवस्था में पहुँचते हैं उतने ही, स्वतः अपनी उत्तेजित अवस्था से मूल अवस्था में लौटते रहते हैं। इसे संतुलन कहते हैं और जब पदार्थ सन्तुलन की अवस्था में होते हैं तब ऊष्मागति वैज्ञानिकों की पुरानी दलील जरूर लागू होती है। ऐसा कोई पदार्थ, किसी सामान्य तप्तपिण्ड से अधिक ऊर्जा को विकरित नहीं कर सकता।

लेकिन टाउन्स का तर्क यूं चलता था: मान लो, उत्तेजित अणु अपने आप पृथक् होते जाते हैं और एक ऐसा प्रदेश बना देते हैं जिसमें उत्तेजित अणुओं की संख्या मूल अवस्था के अणुओं से कहीं अधिक है। क्या तब, उत्तेजित अणुओं से इतनी पर्याप्त ऊर्जा विकिरित नहीं करवाई जा सकती कि वे मिल कर एक आणविकसूक्ष्मतरंग-जनित्र बना दें? टाउन्स के विचार में ऐसा हो सकता था और वह इसे सिद्ध करने में जुट गया।

अमोनिया-किरणपुंज मेसर

उसने अपने गिर्द अनुसंधानकर्त्ताओं का एक समूह इकट्ठा कर लिया। इसमें एच० जे० जीगर भी था जो डाक्टर की उपाधि ले चुका था और जेम्स पी० गोर्डन भी था जो डाक्टर की उपाधि के लिए तैयारी कर रहा था। उनकी योजना यह थी कि उत्तेजित अमोनिया अणुओं को किरणपुंज का रूप देने के लिए एक मजबूत, स्थिर वैद्युत क्षेत्र का उपयोग किया जाय और इस किरणपुंज को किसी ऐसे डब्बे या कोटर के छोटे से छिद्र में से फोकस किया जाय जो ठीक २४,००० मेगासाइकिल प्रति-सैकण्ड पर समस्वरित हो।

टाउन्स को आशा थी कि उत्तेजित अमोनिया अणुओं को डब्बे में संकेन्द्रित करके आबादी का प्रतिलोमन, अर्थात्, उत्तेजित अणुओं का अधिमात्र (आधिक्य) प्राप्त किया जा सकेगा। इस अवस्था के प्राप्त होने के बाद जो भी उत्तेजित अणु अपनी

मूल अवस्था में लौटेगा वह शेष अणुओं की विश्रान्ति को भी चालू कर देगा और डब्बे में से २४,००० मेगासाइकिल प्रति सैकण्ड के संसक्त विकिरण को उत्सर्जित करवाने लगेगा। उन दिनों "ऋणात्मक अवशोषण" के नाम से इस क्रिया का पूर्व-कथन हो चुका था। फिर, उत्तेजित अणुओं के इस किरणपुंज की पिचकारियां, कोटर के छोटे से छिद्र में फेंकते रह कर, संसक्त दोलन को प्रायः अपरिमित काल तक कायम रखा जा सकता था।

टाउन्स के कथनानुसार, उसे ऐसा लगता था कि खास कर गोर्डन ने अपने डाक्टर की उपाधि सम्बन्धी अनुसन्धान को कुछ सन्दिग्ध से कार्य के लिए दांव पर लगा दिया था। गोर्डन मानता था: "पता नहीं इससे इस काम में सफलता मिलती है या नहीं लेकिन अगर इस काम के लिए सफलता न भी मिली तो हम इस से कोई और काम भी ले सकते हैं।"

दो साल तक टाउन्स तथा उसके सहयोगी छोटे-छोटे यन्त्रों को बनाते रहे, जांचते रहे, तोड़ते रहे और फिर से बनाते रहे। इन्हीं दिनों दो मित्र प्रयोगशाला में आए और उन्होंने टाउन्स से आग्रह किया कि इस आणविक-प्रवर्धक के बेकार धंधे को छोड़ दे और सरकारी धन को नष्ट करना बंद कर दे। इन दिनों टाउन्स खुद भी परेशान था। सिग्नल कोर के तत्त्वावधान में, सम्मिलित सेनाओं से मिलने वाली सहायता के ५०,००० डालर वह सचमुच खर्च कर चुका था और आणविक प्रवर्धक अभी तक वास्तविकता से उतना ही दूर था जितना पहले।

सन् १९५३ का अवसान समीप था। एक दिन टाउन्स, स्पेक्ट्रम विज्ञान की एक विचार-गोष्ठी में गया हुआ था कि जिम गोर्डन भागता-भागता वहीं आ पहुंचा और चिरप्रतीक्षित समाचार सुना दिया: मेसर में दोलन होने लगा था!

कहते हैं कि इस खुशी को मनाने के लिए टाउन्स, गोर्डन तथा अन्य सब विद्यार्थी सीधे एक स्थानीय जलपानगृह में चले गए हालांकि वह एक तहखाने में बना हुआ था। (तब तक जीगर, कोलम्बिया को छोड़कर मेसाचुसेट्स इंस्टीट्यूट आफ टेक्नोलोजी द्वारा संचालित, लिंकन लेबोरेटरी नाम के सरकारी अनुसन्धान

केन्द्र में जा चुका था)। इस नए यन्त्र के लिए वे लैटिन या ग्रीक का छोटा-सा नाम तलाश कर रहे थे, लेकिन बेकार।

बाद में, किसी और शाम को, विद्यार्थियों की सहायता से वे इस आद्यक्षर-संग्रह—मेसर—को गढ़ पाए। Maser (मेसर) : Microwave Amplification by Stimulated Emission of Radiation (माइक्रोवेव एम्प्लिफिकेशन बाई स्टिमुलेटेड एमिशन आफ रेडिएशन—विकिरण के उद्दीपित उत्सर्जन द्वारा सूक्ष्म तरंग प्रवर्धन)। टाउन्स ने माना है कि सरकार-समर्थित विशाल अनुसन्धान के इस युग में Maser (मेसर) का एक और अर्थ भी हो सकता है, Means of Acquiring Support for Expensive Research (मीन्स आफ एक्वायरिंग सपोर्ट फार एक्सपेंसिव रिसर्च—खर्चीले अनुसंधान के लिए सहायता प्राप्त करने का साधन)।

टाउन्स ने मेसर का आविष्कार कर लिया। विनयावनत होकर उसने इसका श्रेय भी जेम्स गोर्डन की "विजय तथा यशस्विता" को दे दिया लेकिन वह निश्चय कुछ नहीं कह सकता था कि इसकी उपयोगिता क्या है?

यह किसी किस्म का कोई प्रबन्धक था ही नहीं। यह तो एक दोलक था। यह, ढीठ बनकर, सिर्फ एक आवृत्ति पर परिशुद्ध रूप से दोलन करते रहने पर अड़ा रहा। इसको समस्वरित भी नहीं किया जा सकता था, एक संकीर्ण सीमान्तर पर भी नहीं।

लेकिन जैसा कि बाद में समझ आया, यह आवृत्ति स्थिरता अमोनिया-किरण-पुँज-मेसर का सर्वोत्कृष्ट गुण थी: यह उसका कोई दोष नहीं था। फिर, यह मेसर एक श्रेष्ठ घड़ी का काम देने वाला था। जब तक मेसर का आविष्कार नहीं हुआ था, संसार की सर्वोत्तम घड़ियों में भी आशंसा रहती थी कि उनमें दस साल में प्राय: एक सैकण्ड के हिसाब से गलतियां जमा होती रहती हैं। लेकिन आणविक-किरण-पुंज "घड़ी" में गलतियां जमा होने का दर था १०,००० सालों में सिर्फ एक सैकण्ड। इस प्रकार, अमोनिया-किरणपुंज-मेसर, आवृत्ति का परिशुद्ध

मानक बन गया। (वैसे, अब तो और भी अच्छी आणविक घड़ियां बन चुकी हैं जो सीसियम तथा रूबीडियन के वाष्पों से काम लेती हैं।)

ब्लूम्बर्गन : समस्वरण योग्य मेसर

जब मेसर की वास्तविकता सिद्ध हो गई तब प्रोफेसर टाउन्स ने कोलम्बिया से विश्रान्ति-अवकाश ले लिया और पेरिस में जा बसा। वहां, १९५५ में, उसकी कल्पना में एक ऐसा मेसर प्रकट हुआ जिसे समस्वरित किया जा सकता था। उसने अनुचुम्बकीय पदार्थों पर शोधकार्य करने की ठानी। अनुचुम्बकीय पदार्थ, ऐसी धातुएं या धात्विक लवण होते हैं जिन्हें चुम्बकित किया जा सकता है। इतने जोर से नहीं जितना कि लोह आदि चुम्बकीय पदार्थों को किया जा सकता है लेकिन ताम्बे जैसी अचुम्बकीय चीजों की अपेक्षा अधिक जोर से जरूर किया जा सकता है।

किसी चुम्बकीय क्षेत्र में, अनुचुम्बकीय वस्तुओं के ऊर्जा स्तर वही होते हैं जो इलेक्ट्रानों के चक्रणों के अभिविन्यास से निर्धारित होते हैं। (जैसे पृथ्वी, सूर्य के गिर्द घूर्णन करती हुई अपने अक्ष पर भी चक्रण करती रहती है, ठीक उसी प्रकार इलेक्ट्रान, अपने न्यूक्लियस के गिर्द घूर्णन करता हुआ अपने अक्ष पर चक्रण भी करता रहता है)। इलेक्ट्रानों के चक्रणों को दो में से किसी एक प्रकार से व्यवस्थित किया जा सकता है—मूल अवस्था के अनुरूपी हो तो चुम्बकीय क्षेत्र के अनुकूल, या, उत्तेजित अवस्था के अनुरूप हो तो चुम्बकीय क्षेत्र के प्रतिकूल।

क्वान्टम-आवृत्ति, चुम्बकीय क्षेत्र की तीव्रता के मान पर निर्भर होती है। अतः अगर अनुचुम्बकीय वस्तुओं के क्वांटम-अन्तरों को मेसर क्रिया प्राप्त करने के लिए काम में लाया जा सके तो, चुम्बकीय क्षेत्र की तीव्रता को परिवर्तित करके ऐसे मेसर को समस्वरित किया जा सकता है। यह, अमोनिया, किरणपुंज-मेसर की तरह किसी विशिष्ट आवृत्ति तक सीमित नहीं रहेगा। टाउन्स ने अपने सिद्धान्त को जर्मेनियम नाम की धातु पर परख कर देखा लेकिन इस बार उसके प्रयत्नों को सफलता नहीं मिली।

इस बीच, हार्वर्ड विश्वविद्यालय के भौतिकी के प्रोफेसर निकोलस ब्लूम्बर्गन ने अनुचुम्बकीय वस्तुओं द्वारा मेसर क्रिया प्राप्त करने के लिए एक और दिशा सुझाई। उसका विचार था कि दो नहीं बल्कि तीन ऊर्जा-स्तरों को काम में लाने वाला मेसर, अधिक सुगम तथा उपयोगी प्रवर्धक सिद्ध होगा।

ब्लूम्बर्गन उस समय छत्तीस वर्ष का था। उसका जन्म नीदरलैंड्स के डोर्ड्रेक्ट नगर में हुआ था। उसे, १९४३ में, यूट्रेक्ट विश्वविद्यालय से भौतिकी में डाक्टर की उपाधि मिली थी। उन दिनों हालैंड पर जर्मन लोगों का अधिकार था। वह छिपे हुए डच लोगों की सहायता से, विदेशी कब्जे में आई हुई अपनी भूमि से भाग आया था और अन्ततः हार्वर्ड पहुंच गया था। हार्वर्ड में उसने न्यूक्लीय-चुम्बकीय-अनुनाद के उस शोधकार्य को आरम्भ किया जिससे उसके तीन स्तरों वाले ठोस-अवस्था-मेसर के सिद्धान्त को योगदान मिलना था।

महायुद्ध की समाप्ति पर ब्लूम्बर्गन, थोड़े से समय के लिए नीदरलैंड्स लौट आया था और लीडन विश्वविद्यालय में अपना अनुसन्धान कार्य करता रहा था। वहां, १९४८ में उसने डाक्टर आफ फिलासफी की उपाधि प्राप्त की थी। वह हार्वर्ड लौट आया था और १९५६ में, उसने दुनिया को बता दिया था कि क्रियात्मक मेसर-प्रवर्धक को कैसे बनाना चाहिए।

संक्षेप में, ब्लूम्बर्गन के विचार ये थे: जिस पदार्थ के परमाणुओं में एक इले-क्ट्रान मुक्त होता है या तथाकथित क्रिस्टल-जालक संरचना में अनुपस्थित होता है, उसमें चुम्बकीय क्षेत्र के अनुकूल व्यवस्थित इलेक्ट्रानों को मूल या अनुत्तेजित अवस्था में स्थित माना जा सकता है। इस क्षेत्र के प्रतिकूल व्यवस्थित इलेक्ट्रानों को उत्तेजित अवस्था में स्थित माना जा सकता है। यही वह स्थिति है जिस पर पेरिस में अपने आर्सेनिक विलेपित या एन-टाइप के जर्मेनियम-मय यंत्र पर शोध-कार्य करते चार्ल्स टाउन्स को हमने छोड़ा था।

लेकिन ब्लूम्बर्गन बताता गया कि जब किसी पदार्थ के एक से अधिक इलेक्ट्रान अनुपस्थित होते हैं तब ऊर्जा की सब से अधिक उत्तेजित अवस्थाएं संभावित होती
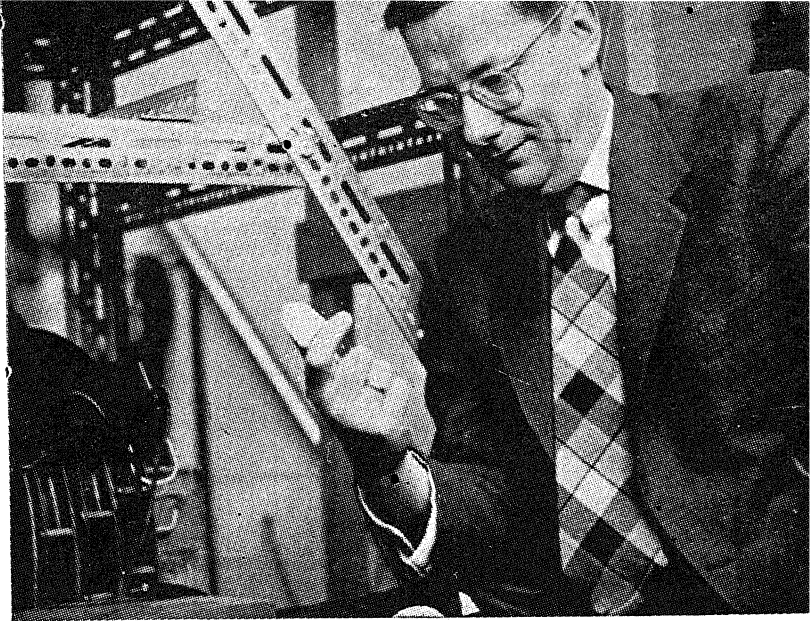
ठोस-अवस्था-मेसर का जनक निकोलस ब्लूम्बर्गन
(सौजन्य : इलेक्ट्रानिक्स)

हैं। सच पूछो तो प्रत्येक अनुपस्थित या मुक्त इलेक्ट्रान के पीछे एक उत्तेजित अवस्था होती है। सामान्य अवस्थाओं में, मूल अवस्था तथा सब की सब उत्तेजित अवस्थाओं के बीच इलेक्ट्रान चक्रणों का सांख्यिकीय वितरण होता है। इलेक्ट्रानों की बहुसख्या तो मूल अवस्था में ही रहती है, और ऊर्जा की अवस्था जितनी उच्च होती जाती है इसमें स्थित इलेक्ट्रानों की संख्या उतनी ही कम होती जाती है।

लेकिन तीन स्तरों वाले मेसर में, इलेक्ट्रानों का मूल अवस्था से उठाकर दो उत्तेजित अवस्थाओं में से उच्चतर तक लाने के लिए किसी प्रबल सूक्ष्मतरंग संकेत या पम्प को काम में लाया जा सकता है। आबादी का प्रतिलोमन तब माना जायगा जब कि प्रथम उत्तेजित या माध्यमिक अवस्था के मुकाबले, उच्चतम उत्तेजित अवस्था में अधिक इलेक्ट्रान होंगे। जब ऐसा हो जायगा तब यह माना जा सकेगा कि क्वान्टम यांत्रिक "बन्दूक का घोड़ा चढ़ गया है"।

अगर इन दोनों उत्तेजित अवस्थाओं की ऊर्जा के अन्तर के अनुरूपी, निम्नतर आवृत्ति के किसी और सूक्ष्मतरंग संकेत से इस मेसर-क्रिस्टल को किरणित होने दिया जाय तो इलेक्ट्रान, ऊर्जा के उच्चतम स्तर से गिर कर माध्यमिक पर आ जायेंगे और ऐसा करते समय सूक्ष्मतरंग ऊर्जा को निर्मुक्त करेंगे ।.यह सूक्ष्मतरंग ऊर्जा उस प्रवेशी सूक्ष्मतरंग संकेत को प्रवर्धित कर देगी जिसने क्वांटम-शिखर से उनके अधःस्खलन को चालू किया था । इस व्यवस्था से एक वास्तविक मेसर-प्रवर्धक का निर्माण होगा । फिर, यह ऐसी व्यवस्था होगी जिससे प्रवर्धन लगातार होता रहेगा क्योंकि इसका सूक्ष्मतरंगपम्प, प्रवेशी संकेत से स्वतन्त्र होगा और जब इलेक्ट्रान, प्रवेशी संकेत को प्रवर्धित करने के लिए माध्यमिक स्तर की ओर अधःस्खलित हो रहे होंगे तब भी ऊर्जा के उच्चतम स्तर की पुनःपूर्ति करता रहेगा ।

ठोस-अवस्था मेसर

अब वैज्ञानिक जगत्, क्वान्टम यांत्रिकी की प्रत्येक घटना का बड़ी उत्सुकता से अनुप्रेक्षण करने लगा था और शीघ्र ही दर्जन भर प्रयोगशालाएं, ब्लूम्बर्गन के सिद्धान्त के मुताबिक, तीन स्तरों वाला मेसर बनाने का यत्न करने लगीं । बेल टेलीफोन लेबोरेटरीज के एच०ई०डी० स्कोविल, जे० फेहर तथा एच० सीडल के दल ने प्रथम ठोस अवस्था मेसर को बना लिया । वैसे, वस्तुतः, यह एक दोलित्र था और सही मायनों में प्रवर्धक नहीं था । यह सूक्ष्मतरंग संकेतों को पैदा करता था और टाउन्स के मूल अमोनिया-किरणपुंज यन्त्र की तरह अन्य स्रोतों से प्राप्त संकेतों को तीव्र नहीं करता था ।

एम० आई० टी० की लिंकन लेबोरेटरीज में सब से पहले एलान एल० मैक्व्होर्टर तथा जेम्स डब्ल्यू० मीयर ने नए प्रवर्धक की कतिपय विशेषताओं को मापा और एक संशोधित यन्त्र बनाना शुरू किया ।

लिंकन लेबोरेटरीज का जेम्स मीयर एक हट्टाकट्टा मिसावरी निवासी है जिसे महायुद्ध के पूर्व की नियमित नौसेना में रेडियो-तकनीकी के तौर पर कार्य करना पड़ा था । भौतिकी में अनुसन्धान शुरू करने से पहले वह एप्रेंटिस सीमैन
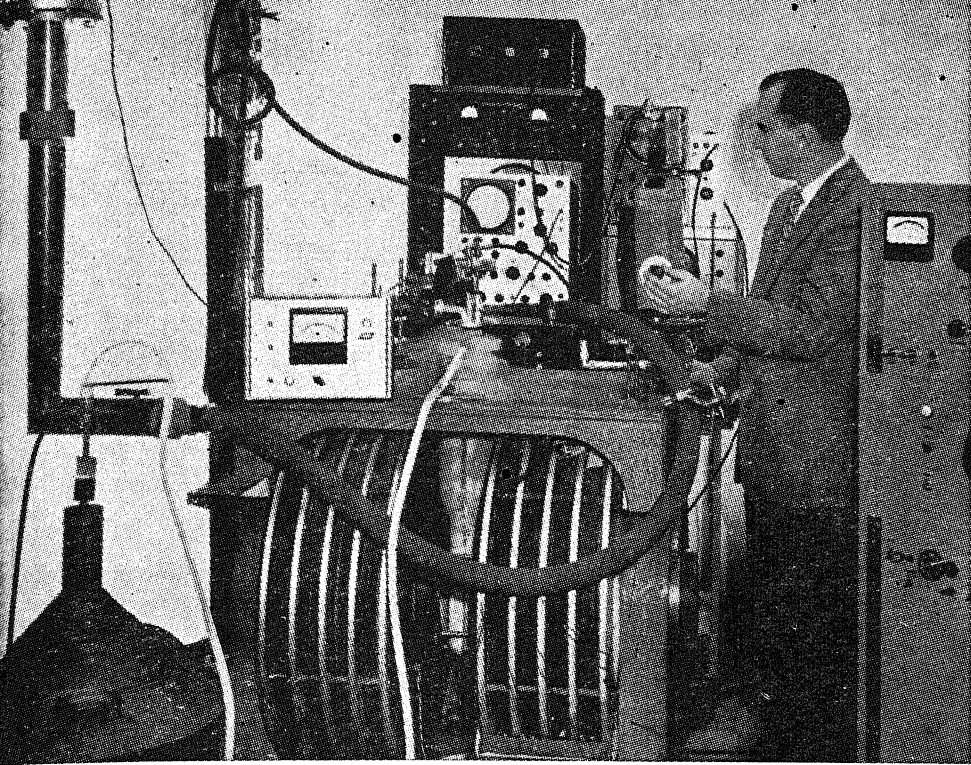
ठोस-अवस्था-मेसर प्रवर्धक का आविष्कारक जेम्स डब्ल्यू० मीयर तथा उसकी कृति ।

(सौजन्य : इलेक्ट्रानिक्स)

(शिक्षुनाविक) से छोटा लेफ्टिनेंट बन चुका था। उसका मेसर जो कि पहला वास्तविक प्रवर्धक है, अनुचुम्बकीय लवण के तौर पर पोटेशियम कोबल्टो सायनायड को बरतता है जिसमें $\frac{५}{१०}$ भाग, एक प्रतिशत क्रोमियम का मिलाया हुआ होता है।

यह क्रोमियम ही महत्त्वपूर्ण घटक है। इसमें तीन मुक्त इलेक्ट्रान होते हैं। इसका मतलब यह हुआ कि इसमें उत्तेजित ऊर्जा की तीन अवस्थाएं उपलब्ध होती हैं यद्यपि काम वस्तुतः दो से ही लिया जाता है।
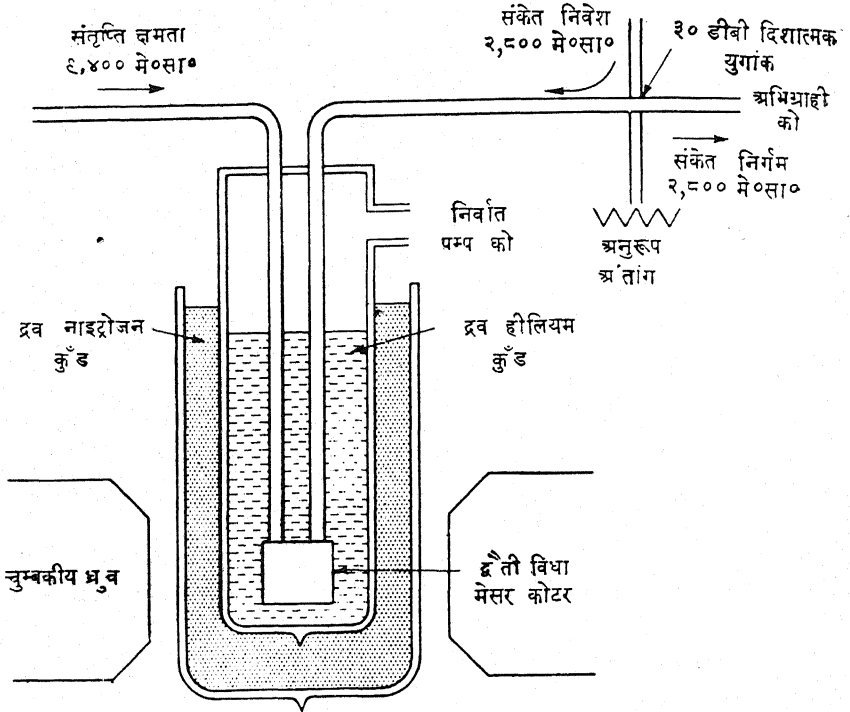
ठोस-अवस्था मेसर प्रवर्धक (सौजन्य : इलेक्ट्रानिक्स)

इस मेसर को एक दोहरी बोतल में या तथाकथित ड्यूअर फ्लास्क में प्रचालित किया जाता है और अन्दरली बोतल में द्रव हीलियम होती है, बाहरली में द्रव नाइट्रोजन। इस ठोस-अवस्था मेसर में, क्रोमलवण क्रिस्टल को चरमशून्य से सिर्फ १$\frac{१}{४}$ डिग्री सेंटीग्रेड अधिक तापमान पर रखा जाता है। इससे, पम्प शक्ति की आवश्यक मात्रा बहुत कम हो जाती है।

एक शक्तिशाली विद्युत् चुम्बक, इस क्रिस्टल के एक सिरे से दूसरे सिरे तक व्याप्त चुंबकीय क्षेत्र मुहैया करता है और पम्पिंग ऊर्जा प्राप्त होती है क्लिस्ट्रोन से अर्थात् एक ऐसी रेडार नलिका से जो ९,४०० मेगासाइकिल प्रतिसैकण्ड की आवृत्ति

पर लगातार प्रचलित रहती है। प्रवर्धित होने वाले संकेत २,८०० मेगासाइकिल प्रतिसैकण्ड की आवृत्ति पर अपने प्रवेश तथा निर्गम के मार्ग स्वयं तलाश कर लेते हैं। इसमें शक नहीं कि चुम्बकीय क्षेत्र को परिवर्तित करके, पम्प तथा संकेत की आवृत्तियों का एक भिन्न संयोजक प्राप्त किया जा सकता है लेकिन मेसर की सहकारी सूक्ष्म तरंग संबंधी सामग्री भी बदलनी पड़ेगी।

जल्दी ही लिंकन लेबोरेटरीज ने, बोस्टन के पास के मिलस्टोन हिल पर प्रतिष्ठापित उच्चशक्ति रेडार के अभिग्राही (रिसीवर) के साथ इन में से एक मेसर को संलग्न कर दिया। बहुत अर्से तक यह रेडार हमारे लिए, अन्तरिक्ष का प्रेक्षण करने वाली तीक्ष्णतम आंख का काम देता रहा। इसमें क्षमता थी कि हमारी वायुसेना तथा अन्तरिक्ष विभाग को प्रतिक्षण बताता रहे कि पृथ्वी की परिक्रमा करने वाले हमारे तथा रूस के कृत्रिम उपग्रह कहां-कहां हैं और क्या कर रहे हैं। इस रेडार ने, उन और भी अधिक उन्नत अन्तरिक्षखोजी रेडारों की डिजाइनों की जांच के लिए "परीक्षण शैया" का काम किया था जो आजकल हमारे प्रक्षेपास्त्र-जांच केन्द्रों पर तथा संसार के अन्य स्थानों पर प्रतिष्ठापित हैं।

ब्लूम्बर्गन ने स्वयं एक ठोस-अवस्था मेसर बनाया था और उसे हार्वर्ड विश्वविद्यालय के रेडियो-दूरदर्शी पर लगा दिया था जहां से वह अब तक सुदूर आकाश गंगाओं तथा नीहारिकाओं में होने वाले सूक्ष्मतरंग-ऊर्जा-उत्सर्जनों पर कान लगाए हुए है।

मेसर तथा अन्तरिक्ष युग

मेसर, अत्यन्त सूक्ष्मग्राही तथा अल्परव रेडियो प्रवर्धक होते हैं। उनके मुख्य प्रयोग दो क्षेत्रों में हैं: रेडियो (अक्रिय) तथा रेडार (सक्रिय) खगोल विज्ञान में तथा अन्तरिक्ष-रेडियो-संचारों में।

सन् १९३१ में ही कार्ल जैंस्की ने पता लगा लिया था कि कतिपय खगोलीय पिण्डों से न सिर्फ दृश्य प्रकाश अपितु रेडियो-संकेत भी उत्सर्जित होते हैं। वह

उन दिनों बेल लेबोरेटरीज में काम किया करता था। उसके बाद खगोलज्ञों ने इन रेडियो संकेतों का अध्ययन शुरू किया ताकि खगोल के बारे में और अधिक जानकारी जमा की जा सके।

उदाहरण के तौर पर, तारागण के बीच के अन्तरिक्ष में जो हाइड्रोजन गैस रहती है वह एक सुस्पष्ट रेडियो-संकेत उत्सर्जित करती है। इसके रेडियो-उत्सर्जनों से सुदूर आकाशगंगाओं के बारे में जानकारी हासिल करने का काम लिया जा चुका है। वे आकाशगंगाएं भी हमारी अपनी आकाशगंगा की तरह तारागणों के समूह ही हैं।

रेडियो खगोलिकी ने मानव के सूर्य सम्बन्धी तथा शुक्र और बृहस्पति जैसे ग्रहों सम्बन्धी ज्ञान में वृद्धि की है। सिग्नल तारामण्डल—हंस—में मानव पहले किसी दृश्य तारे को नहीं पा सका था। अब वहां इस एक प्रबल रेडियो स्रोत की उपस्थिति का पता लगा है। लॉस एंजल्स के पास स्थित माउंट पालोमर वेधशाला के खगोलज्ञों ने इन रेडियो संकेतों को अपना मार्गदर्शक बनाकर अपने शक्तिशाली, २०० इंची परावर्ती दूरदर्शी को उसी स्थल पर सधाया और एक तारे के धुंधले से चाक्षुष संकेत को प्राप्त किया।

इस प्रकार रेडियो खगोलिकी ने, प्रकाशिक दूरदर्शियों की मार से परे की सुदूर आकाशगंगाओं के अन्वेषण का एक साधन मुहय्या कर दिया है। परिणाम-स्वरूप खगोलज्ञों में अधिकाधिक रेडियो-एन्टेना बनाने की होड़ लग गई है। ये एन्टेना प्रायः परवलयज होते हैं या धातु की बनी विशाल तश्तरियां। लेकिन निर्माण, आधार तथा परिशुद्ध चालन के लिहाज से किसी तश्तरी की विशालता की भी एक हद है—नौ सेना के लिए अभिकल्पित तथा प्रज्ञापित ६००-फुटी तश्तरी, अंशतः इसी कारण संकट में पड़ गई थी।

लेकिन ५०-फुटी तश्तरी इस्तेमाल करने वाले रेडियो-दूरदर्शी को भी मेसर-प्रवर्धक वह सारी सूक्ष्म ग्राहिता प्रदान कर सकता है जो ५००-फुटी तश्तरी इस्तेमाल करने वाले रेडियो-दूरदर्शी में हो सकती है। जब ब्लूम्बर्गन ने पहली
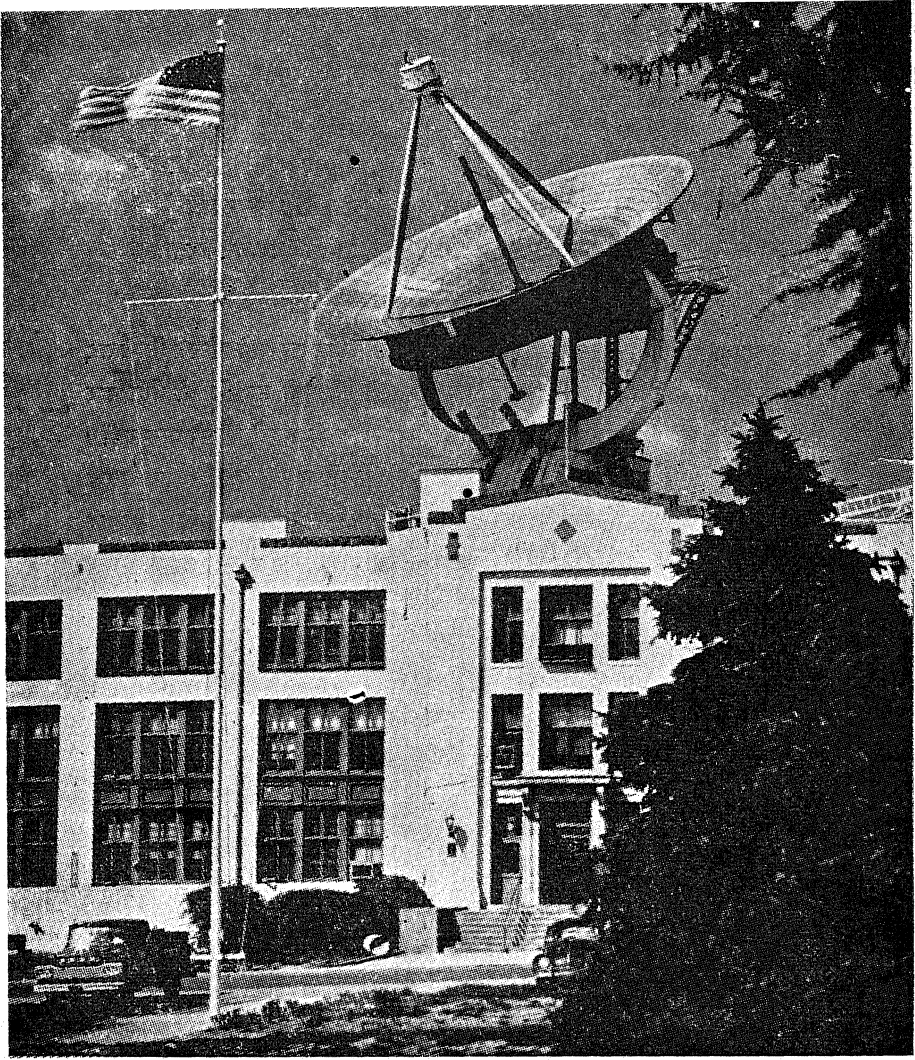
नौसेना-अनुसंधान प्रयोगशाला के शिखर पर प्रतिष्ठापित पचास-फुटी रेडियो-दूरदर्शी।
(सौजन्य : यू० एस० एन०)

बार अपने ठोस-अवस्था-मेसर को हार्वर्ड के ६०-फुटी रेडियो-दूरदर्शी में जोड़ा था तब से मेसर, रेडियो-खगोलज्ञों के कार्य को नए आयाम प्रदान करता जा रहा है।

एम०आई०टी० के मिल्स्टोन हिल पर स्थित रेडार पर लगे मीयर के मेसर ने शक्तिशाली, अन्तरिक्षखोजी रेडारों की एक पूरी की पूरी सन्तति को पैदा कर दिया है। इन रेडारों ने प्रक्षेपास्त्रों तथा उपग्रहों की लीक ही पकड़ी हो सो बात नहीं। इन्होंने चन्द्रमा, मंगल तथा शुक्र के धरातल के नक्शे भी बनाए हैं और खुद सूरज के आतशी पहलू में झांक कर भी देखा है। वायुसेना का जो १,००० फुटी दैत्याकार रेडार-दूरदर्शी, प्यूर्टोरिको के एरेसिबो नामक स्थान के पास एक पर्वत के पार्श्व को उत्कीर्ण करके बनाया जा रहा है वह अपने अभिग्राही के तौर पर एक मेसर-प्रवर्धक का इस्तेमाल करेगा।

हाइड्रोजन बम्ब-सह संचार

चूंकि मेसर प्रवर्धक, अन्य पूर्व प्रवर्धकों की अपेक्षा, रेडियो-प्रवर्धकों को १०० से १,००० गुणा तक अच्छा बना सकते हैं अतः अन्तरिक्ष रेडियो के लिए वे अमूल्य हैं। वायुसेना की जो वैस्टफोर्ड प्रायोजना है वह मेसाचुसेट्स के वैस्टफोर्ड तथा कैलिफोर्निया के कैम्प पार्क्स के बीच की अन्तर्महाद्वीपीय अन्तरिक्ष रेडियो शृंखला के दोनों सिरों पर इनका उपयोग करती है।

इस प्रायोजना का उद्देश्य है, आधुनिक युद्धजनित दूराशंकाओं में से एक को दूर करना। यह है, आयनमण्डल में किए गए किसी परमाणु-बम विस्फोट द्वारा लम्बी पार वाले रेडियो संचारों का खामोश कर दिया जाना। लम्बी पार वाला प्रचलित रेडियो, पृथ्वी से ६० से ४०० मील ऊपर उपस्थित विद्युत् चालक गैस की तहों से निर्मित आयन मण्डल से उछल कर आने वाले संकेतों पर निर्भर करता है। लेकिन, जैसा कि हमें ज्ञात है, इस प्रदेश में विस्फोटित परमाणु-बम्ब, लम्बी पार वाले रेडियो संचारों को १५ से ४५ मिनट की अवधि के लिए ठप्प कर देता है।

हमारे अनेक सेनानायकों की यह धारणा है कि हमारे विरुद्ध चोरी छिपे किए गए किसी भी न्यूक्लीय आक्रमण में पहली बात यह होगी कि कम से कम ५० मेगाटन वाले हाइड्रोजन बम्ब को हमारे देश के आयनमण्डल में विस्फोटित किया जायगा। जिस समय, इसके कारण, हमारी सेनाएं संचार क्षमता से विहीन हुई होंगी उस समय हम पर प्रक्षेपास्त्रों या मानव-चालित बमवर्षकों द्वारा भी प्रहार किया जा सकेगा।

इस प्रकार, वेस्टफोर्ड प्रायोजना के सामने प्रश्न यह है : क्या हम आयन मण्डल के बगैर संचार कर सकते हैं ? उत्तर : कर सकते हैं और करते हैं। मेसर से लैस अभिग्राहियों का प्रयोग करके वायुसेना ने एक सूक्ष्मतरंग किरणपुंज को चन्द्रमा की टक्कर से उछाल कर, पहले तो सूचना को ५०,००० बिट प्रतिसैकण्ड की दर से, एक समुद्र-तट से दूसरे तक पहुंचाया (बिट, सूचना की मात्रा का मूल पैमाना है, वर्णमाला के एक अक्षर को भेजने में सिर्फ चार बिटों के लगभग लगते हैं)। फिर उन्होंने अपने किरणपुंज को ईको-उपग्रह नाम के रजतप्लास्टिक के १००-फुटी गुब्बारे से टकराकर उछाला। अब वे संकेतों को ताम्बे की छोटी-छोटी सुइयों की हमारी उस पट्टी पर टकरा कर उछाल रहे हैं जो कक्ष में परिक्रमा कर रही हैं।

उपग्रहों से वार्त्तालाप

जब संचार-उपग्रह आविष्कृत हुए तब मेसर-प्रवर्धक, स्वभावतः, पहले से ही काम में आ रहे थे। प्रथम पूर्व-प्रवर्धक को न्यू जर्सी के होमडेल स्थान पर बेल लेबोरेटरीज द्वारा बनाए गए दैत्याकार ४००-वर्ग फुटी शृंग (एन्टेना), में संलग्न किया गया था। मूलतः इसका उपयोग, संकेतों को ईको-उपग्रह की टक्कर से उछालने के लिए किया गया था। इसके बाद दूसरा विशाल शृंग (एन्टेना) मेन के एंडोवर नामक स्थान में बनाया गया था और इन दोनों का उपयोग, टेल्स्टार, उपग्रहों से आने वाले टेलिवीजन चित्रों के अभिग्रहण के लिए किया गया था।

आजकल, मेसरों से लैस ऐसे ही केन्द्र इंगलैण्ड, फ्रांस, जर्मनी, इटली, ब्राजील, तथा जापान में भी काम कर रहे हैं। वे टेल्स्टार तथा रिले नाम के उपग्रहों से

आने वाले सूक्ष्मतरंग संकेतों का अभिग्रहण करते हैं और शीघ्र ही सिनकोम जैसे अधिक प्रगत संचार उपग्रहों के साथ काम करने लगेंगे।

उपग्रह-संचार-शृंखलाओं से वाहित होने वाली सूचना की किस्मों में टेलिवीजन चित्र तथा ध्वनि ही शामिल नहीं है अपितु बहुलित टेलीफोन-वार्तालाप, वर्णहीन तथा रंगीन दोनों प्रकार के फोटोग्राफों का प्रेषण, अखबार के पृष्ठों को कम्पोज करके छपाई के लिए तैयार कर देने वाले टेलीटाइपराइटर-संकेत, परिकलन यंत्र के आंकड़े और यहां तक कि मानव हृदय की, इलक्ट्रोकार्डियो ग्राफ द्वारा रिकार्ड की हुई, धड़कनें भी शामिल हैं।

लेसर का जन्म

जहां तक लेसर का सम्बन्ध है, भूतकाल के बारे में जो कुछ कहा गया है वह प्रस्तावना मात्र है। सन् १९५७ में, चार्ल्स एच० टाउन्स, मेसरों के क्षेत्र में होने वाली प्रगति के प्रति अधीर हो उठा। उस समय तक मेसर, मानव को आवृत्ति तथा काल के इतने परिशुद्ध मानक प्रदान कर चुका था जो कभी ख्वाब और ख्याल में भी नहीं आए थे और इतनी अधिक सूक्ष्मग्राहिता वाले तथा अल्परव प्रवर्धक प्रदान कर चुका था कि जिसकी मांग करने का कभी किसी ने साहस भी नहीं किया था। लेकिन फिर भी मेसर अभी तक सूक्ष्मतरंग तथा अवरक्त के बीच की स्पेक्ट्रमविज्ञानी अवांतर भूमि में प्रवेश पाने में असफल रहे थे।

इससे भी बढ़ कर, इस मोर्चे पर हमला अब भी उतना ही असंभावित लगता था जितना पहले। आणविक किरणपुंज दोलित्रों को एक ऐसे समस्वरित कोटर की आवश्यकता थी जो दोलन को कायम रखने के लिए वर्धन या प्रतिसम्भरण को मुहय्या कर सके। और, इंजिनीयरों के सामने फिर वही प्रश्न आ खड़ा हुआ: कोई डब्बा, छोटे से छोटा, कितना छोटा बनाया जा सकता है, इस लिहाज से मेसर ने अभी तक किसी समस्या को हल नहीं किया था।

फिर, ठोस-अवस्था-मेसर को एक ऐसी सूक्ष्मतरंग-पंपिंग-आवृत्ति की आवश्यकता थी जो उस प्रवेशी संकेत की आवृत्ति से उच्चतर हो जिसे प्रवर्धित

करना है। अतः इंजिनीयरों ने फिर क्लिस्ट्रोनों की चापलूसी शुरू कर दी अर्थात् ठीक उसी अवस्था में आ पहुंचे जिसमें उन्होंने द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति पर इस काम को छोड़ा था। मेसर ने कुछेक अत्यन्त परिशुद्ध तथा स्थायी दोलित्रों को तथा कुछेक अत्यन्त परिष्कृत प्रवर्धकों को जन्म दिया था लेकिन आवृत्ति के कोई नए सीमान्तर अनावृत नहीं किए थे। अवान्तर भूमि अब भी वैज्ञानिकों के लिए अज्ञात प्रदेश ही थी।

टॉउन्स तथा शॉलो : पूर्वकथन

अब टाउन्स ने अपने प्रश्न को उल्टा कर देखा। अगर ऊपर की ओर चल कर अज्ञात आवृत्ति के प्रदेश में सफलतापूर्वक प्रवेश नहीं किया जा सकता तो प्रत्यक्ष प्रकाश के नीचे की ओर क्यों न चला जाय ?

पदार्थों की एक पूरी फौज के प्रकाशिक स्पेक्ट्रानों का भौतिकीविदों को अच्छा ज्ञान था। इस प्रदेश में शोध कार्य करने की प्रविधियां भी सुविदित थीं। परिकलन से टाउन्स को पता लग गया कि स्पेक्ट्रम-ऊर्जा के ज्ञात संक्रमणों को तथा परावर्ती कोटरों को अनुनादकों के तौर पर बरत कर, मेसरों को प्रकाशीय प्रदेश में प्रचालित किया जा सकता है।

अब उसके इन परिकल्पनों में उसका साला, आर्थर एल० शॉलो भी आ मिला। वह बेल लेबोरेटरीज में अनुसन्धान करने वाला भौतिकीविद् था। शॉलो का जन्म न्यूयार्क के माउंट वर्नोन में हुआ था। यह स्थान न्यूयार्क सिटी के बाहर और पास ही है लेकिन उसने भौतिकी में बी०ए०, एम०ए० तथा पीएच० डी० की सब उपाधियां केनैडा के टोरंटो विश्वविद्यालय से प्राप्त की थीं। बेल लेबोरेटरीज में नियुक्त होने से पहले शॉलो, कोलम्बिया में डाक्टर की उपाधि के बाद मिलने वाली शिक्षावृत्ति पर कार्य करता रहा था। उससे पहले वह सूक्ष्मतरंग-स्पेक्ट्रमिकी सम्बंधी पाठ्य-पुस्तक के लेखन-कार्य में टाउन्स का सहयोगी रह चुका था।

अब शॉलो तथा टाउन्स ने अपना ध्यान, प्रकाशिक मेसर (जो बाद में लेसर कहलाया) के निर्माण के लिए आवश्यक अवस्थाओं को लेखबद्ध करने में लगाया।
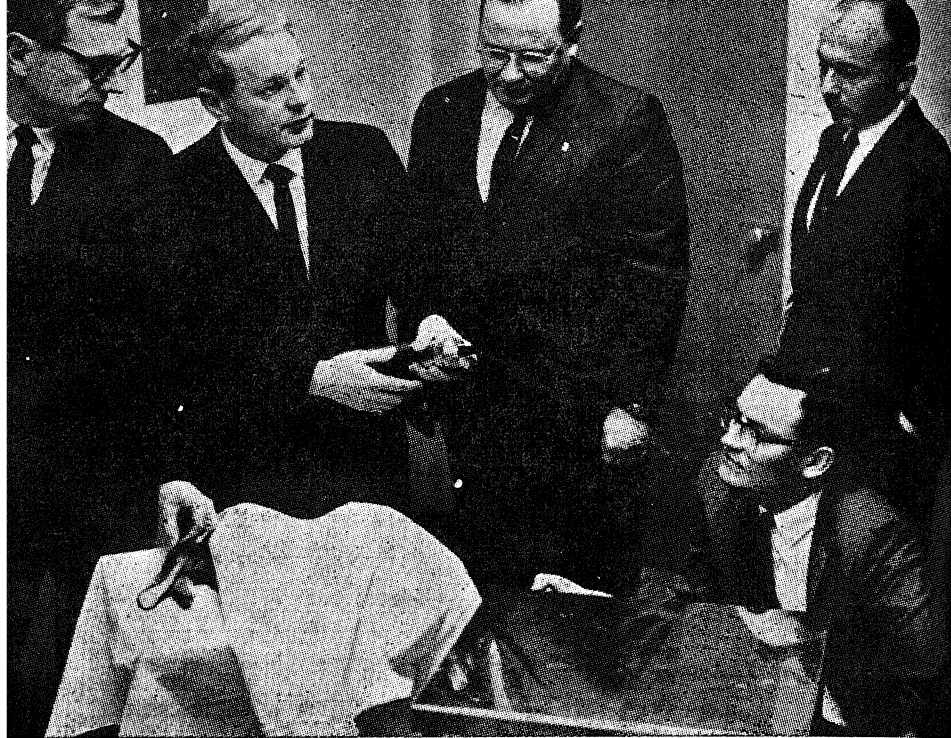
पालो एल्टो मेडिकल रिसर्च फाउंडेशन का दल खरगोश पर नेत्र-लेसर का परीक्षण कर रहा है। दल के सदस्य हैं: स्टेनफोर्ड के डाक्टर एच० सी० ज्वेंग, डाक्टर मिल्टन फ्लौक्स और प्रो० आर्थर एल० शॉलो तथा औप्टिक्स टेक्नोलोजी (प्रकाशिकी शिल्प विज्ञान) के नार्मन पेप्पर्स और नार्मन सिल्बरट्रस्ट। किसी मानवरोगी पर, वियोजित दृष्टि पटल के लिए जो प्रथम लेसर-आपरेशन हुआ था वह स्टेनफोर्ड के दो शल्य-चिकित्सको ने स्वयं स्टेनफोर्ड के इलेक्ट्रानिकी तथा रेडियो विज्ञान विभाग के डाइरेक्टर पर ही किया था।

(सौजन्य : इलेक्ट्रानिक्स)

उनकी योजना थी कि दो समतल तथा समान्तर दर्पणों का उपयोग किया जाय जिनके बीच ऐसे परमाणुओं का संग्रह रहे जिनमें से अधिकांश उत्तेजित ऊर्जा अवस्थाओं के हों।

जैसा कि सूक्ष्मतरंग मेसर में होता है, एक परमाणु केन्द्र स्वत: उत्सर्जित ऊर्जा का—लेकिन यहां, प्रकाश ऊर्जा का—अकेला क्वान्टम, अन्य परमाणुओं से

लालमणि-लेसर का आविष्कर्त्ता थियोडोर एच० मैमान, इसके प्रवान अंगों का अध्ययन कर रहा है।

(सौजन्य : ह्यू फीज)

भी उत्सर्जन को चालू या उद्दीपित कर देता है। अगर इस उद्दीपित उत्सर्जन को दो समान्तर दर्पणों की दिशा में लम्बरूप डाला जाय तो प्रकाश, इन्हीं दर्पणों के बीच इधर से उधर परावर्तित होता रहेगा। और अगर परमाणुओं से उत्सर्जित प्रकाश की कुल मात्रा, दर्पणों द्वारा किए जाने वाले परावर्त्तन से होने वाली शक्तियों से अधिक होती है तो इस प्रक्रम के दौरान प्रकाश तरंग की तीव्रता बढ़ जाती है। जो प्रकाश-फोटोन दर्पणों के प्रति लम्बरूप उत्सर्जित नहीं होते, वे अन्तराल में जा पड़ते हैं और इस क्रिया में भाग नहीं लेते।

अन्ततोगत्वा यह तरंग इस अन्तराल में उपस्थित सब उत्तेजित परमाणुओं की ऊर्जा को चूस डालती है तथा इसकी और वृद्धि नहीं हो सकती। यही अवस्था स्थायी दोलन की निष्पत्ति होती है।

टाउन्स तथा शालो ने घोषणा कर दी कि ऐसा दोलित्र स्थानिक दृष्टि से संसक्त रहेगा, इसके सारे प्रकाश-क्वांटमों के कदम मिल कर पड़ेंगे और इसकी आवृत्ति शुद्ध होगी। हालांकि यह लगभग एक अरब (बिलियन) मेगासाइकिल प्रति सैकण्ड की आवृत्ति पर गायन करेगा।

जब शॉलो तथा टाउन्स ने १९५८ में अपनी परिकल्पना प्रकाशित की तो देश के एक किनारे से दूसरे किनारे तक की वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं में सक्रियता की एक नई लहर दौड़ गई और वैज्ञानिक तथा इंजिनीयर लोग, शॉलो तथा टाउन्स द्वारा परिकलित यन्त्र के कार्यकारी माडल के निर्माण के लिए भारी भागदौड़ करने लगे।

लालमणि लेसर का आविष्कर्त्ता : मैमान

सच पूछो तो कामयाबी आखिरकार मिली दक्षिण कैलिफोर्निया में, जो न्यूयार्क के कोलम्बिया विश्वविद्यालय से एक महाद्वीप के फासले पर है। यह बात है जुलाई १९६० की जब कि मैलिबू स्थित ह्यूफीज रिसर्च लेबोरेटरीज में, एक जीनॉन फ्लैशलैम्प द्वारा किरणित लालमणि-क्रिस्टल ने संसक्त, एक वर्ण तथा गहरे लाल प्रकाश के सुई जैसे तेज किरणपुंज को पैदा किया था।

इस लेसर का आविष्कारक था, ह्यूफीज के क्वांटम-इलेक्ट्रानिकी विभाग का युवक अध्यक्ष, थियोडोर एच० मैमान। टेड मैमान ने इंजिनीयरी-भौतिकी में बी० ए० की उपाधि कोलोराडो विश्वविद्यालय से तथा विद्युत्-इंजिनीयरी में एम०एस० की और भौतिकी में पीएच० डी० की उपाधियां स्टेनफोर्ड विश्व-विद्यालय से प्राप्त की थीं। जब उसने लेसर का आविष्कार किया था तब उसे पीएच० डी० प्राप्त किए केवल पांच साल ही बीते थे।

स्टेनफोर्ड से डाक्टर की उपाधि प्राप्त करने के लिए मैमान ने जो अनुसन्धान किया था उसका सम्बन्ध सूक्ष्म तरंग स्पेक्ट्रमविज्ञान से था। रेडियो तथा टेलिवीजन के प्रेषित्रों, नियंत्रणतन्त्रों तथा इलेक्ट्रानी जांच-उपकरणों सम्बन्धी तरह-तरह की पुर्जे बाजी करने वाले इलेक्ट्रानी इंजिनीयर के तौर पर भी वह काम कर चुका था। कुछ देर के लिए वह लॉकहीड एयरक्रैफ्ट नाम की कम्पनी में अनुसन्धान-वैज्ञानिक का काम भी करता रहा था। वहां उसने नियन्त्रित प्रक्षेपास्त्रों से सम्बद्ध संचार-समस्याओं का अध्ययन किया था।

लेसर के आविष्कार से पहले जो पांच साल उसने ह्यूफीज में बिताए थे उनमें वह मेसर के परिष्कारों के लिए शोध कार्य करता रहा था। उसने द्रव नाइट्रोजन से ठंडा किए जाने वाले प्रथम मेसर का आविष्कार किया था और बाद में सूखी बर्फ द्वारा शीतलित का।

लेसर का आविष्कार करके मैमान ने ह्यूफीज का काम छोड़ दिया और पहले तो वह क्वांटाट्रोन इंकार्पोरेटेड की अनुप्रयुक्त-भौतिकी-प्रयोगशाला का उपाध्यक्ष तथा निदेशक बना और बाद में यूनियन कार्बाइड कम्पनी की सहायक संस्था, कोरेड कार्पोरेशन का अध्यक्ष।

मैमान का लेसर देखने में सादा सा यन्त्र था। इस लेसर का तथाकथित सिर वाला या कामकाजी सिरा एलुमिनियम के एक सिलिण्डर का बना था और सिर्फ दो इंच लम्बा और एक इंच व्यास का था।

पत्रकारों के सामने अपने आविष्कार की घोषणा करते समय मैमान ने कहा

था कि यह एक परमाण्विक रेडियो-प्रकाश है जो सूर्य के केन्द्रीय भाग से भी अधिक चमकदार है। उसने बताया था कि उसकी उपलब्धि, औद्योगिक अनुसन्धान के एक ऐसे बड़े प्रयत्न के चरम उत्कर्ष का द्योतक है जिसका कुछ भाग निजी क्षेत्र की और कुछ भाग सरकारी पूंजी की सहायता से चलता था। उसकी घोषणा के अनुसार, ह्यूफीज का सारा प्रयत्न, इस कम्पनी के अपने धन पर आधारित था।

उसने कहा था कि लेसर का प्रयोग बाह्य अन्तरिक्ष में स्थित लक्ष्यों की ओर प्रकाशतरंगों को निर्देशित करने वाले तथा अपूर्व स्पष्टता वाले चित्र लेकर आने वाले प्रकाश-रेडार के रूप में किया जा सकता है।

मैमान का विचार था कि यह सुई-सा तेज, प्रकाशकिरणपुंज, टेलिवीजन तथा वाक्-संचारों के लिए एक ऐसी गुप्त लाइन की व्यवस्था कर देगा जो स्थैतिक "जामों" (अवरोधों) से सुरक्षित होगी और जानबूझकर पैदा किए जामों का भी प्रतिरोध कर सकेगी।

उसने लेसर के, जीव-विज्ञान, चिकित्सा तथा उद्योगों सम्बन्धी व्यापक उपयोगों के सुझाव दिए और संकेत दिया कि सुई की नोक के बराबर फोकस किया हुआ लेसर किरणपुंज रोगाणुओं के, छोटे पौधों के तथा अवयवों के पृष्ठों को निर्जर्मित कर सकता है। यहां तक कि उनके किसी एक अंग का भी वाष्पन कर सकता है। उसने पूर्वकथन किया कि लेसर किरणपुंज के प्रकाश तथा ऊष्मा द्वारा प्रेरित रासायनिक तथा धातुकर्मीय परिवर्तनों के प्रभाव से पृष्ठीय क्षेत्रफलों को रूपान्तरित किया जा सकता है।

लेकिन बेल लेबोरेटरीज के एक अनुसन्धान दल द्वारा लालमणि-लेसर में किए गए भारी सुधारों के बावजूद, यह यन्त्र अनेक प्रयोजनों के लिए असन्तोषजनक बना रहा। जैसा कि हम देख आए हैं, यह विद्युत् शक्ति के अपेक्षया उच्चस्तर पर प्रचालित होता था और वह भी स्पन्दों में। फिर, इसका निर्गम भी एकदम एक-वर्णी या एक-आवृत्ति हो, सो बात नहीं थी।

जवान : गैस लेसर

बेल लेबोरेटरीज में काम करने वाले अली जवान, विलियम आर० बेनेट तथा टी० आर० हेरियट के एक दल ने १९६१ में गैसीय लेसर का आविष्कार किया था। जवान ने, जो कि बाद में एम०आई०टी० में चला गया था, हीलियम तथा निऑन गैसों के मिश्रण से भरी एक स्फटिक(क्वार्ट्ज)–नलिका में, एक विद्युत् विसर्जन को उत्तेजित करने के लिए एक छोटे से ऐसे रेडियो प्रेषित्र का प्रयोग किया था जैसा कि अव्यवसायी (शौकिया) रेडियो में काम आता है। इस विसर्जन ने हीलियम के परमाणुओं को उत्तेजित किया, हीलियम के उत्तेजित परमाणुओं ने अपनी ऊर्जा को निऑन परमाणुओं में स्थानान्तरित कर दिया जिससे उच्चतर उत्तेजित अवस्था वाले निऑन परमाणुओं की संख्या, मध्यवर्ती ऊर्जा अवस्था वाले निऑन परमाणुओं की संख्या से अधिक हो गई। इस क्रिया ने लेसर क्रिया की शर्तों को पूरा कर दिया।

गैस-लेसर इस लिहाज से और भी आकर्षक था कि इसका दोलन संतत चलता था और लालमणि लेसर की तरह स्पन्दों में नहीं। इससे भी बढ़कर, इसको परिशुद्ध तथा नियन्त्रित किया जा सकता था और, सब लेसरों के मुकाबले, उच्चतम दर्जे की आवृत्ति-शुद्धता प्राप्त की जा सकती थी। फिर, सिद्धान्ततः किसी लेसर से अधिकतम क्षमता के जिस दर्जे की आशा की जा सकती है, इसकी क्षमता लगभग उसी दर्जे की थी और, स्पेक्ट्रम विज्ञान में जिस प्रदेश को टाउन्स अवान्तर भूमि कहता था, गैस-लेसर उसके तट की प्रथम रेती को निरूपित करता था। लेकिन यह लेसरकिरणपुंज, दृश्य सीमान्तर में नहीं अपितु अदृश्य अवरक्त प्रदेश में था।

रेडिकर, नाथन, हाल ; अन्तःक्षेपण लेसर

इसके बाद १९६२ के पतझड़ में एक और प्रकार का लेसर सामने आया। यह था, तथाकथित अन्तःक्षेपण-लेसर। इसकी घोषणा तीन दलों ने एक साथ की : एक था एम० आई० टी० की लिंकन लेबोरेटरी में, जिसका नेता था, राबर्ट

एच० रेडिकर। दूसरा था, मार्शल आई० नाथन के आधीन, इंटरनेशनल बिजिनेस मेशीन्स यार्क टाउन हाइट्स, न्यूयार्क के अनुसन्धान केन्द्र में। तीसरे का नायक था, राबर्ट एन० हाल और इसके कार्य का स्थान था, जनरल इलेक्ट्रिक रिसर्च लेबोरेटरी, शेनेक्टेडी, न्यूयार्क। इसके कुछ ही देर बाद न्यूयार्क के बे-साइड में स्थित जनरल टेलीफोन तथा इलेक्ट्रानिकी अनुसन्धान केन्द्र में, टेक्सास के डल्लास नामक स्थान में स्थित टेक्सास इन्स्ट्रुमेन्ट्स इंकार्पोरेटेड में तथा बेल लेबोरेटरीज में काम करने वाले अनुसन्धान-दलों ने भी ऐसे ही कार्य की घोषणा कर दी।

जैसा कि हम जानते हैं, अन्तःक्षेपण-लेसर वस्तुतः एक अग्राभिनत गैलियम आर्सेनाइड या गैलियम आर्सेनाइड-फास्फाइड डायोड होता है।

भौतिकीविदों को अर्से से इस बात में दिलचस्पी थी कि जब इसमें से विद्युत् धारा गुजारी जाती है तो गैलियम फास्फाइड डायोड तेज लाल प्रकाश के छोटे-छोटे प्रस्फुरणों के रूप में किस प्रकार फुलझड़ियां चलाता है।

फिर यह मालूम पड़ा कि जब विद्युत्धारा इसमें से अग्रदिशा में चलती है तब गैलियम आर्सेनाइड डायोड, अवरक्त विकिरण को उत्सर्जित करता है। जब किसी प्रकार की आसूचना की अनुक्रिया के तौर पर यह धारा माडुलित या परिवर्तित हो जाती है तब इस डायोड द्वारा उत्सर्जित अवरक्त विकिरण भी, आयाम के लिहाज से परिवर्तित हो जाता है।

लिंकन लेबोरेटरी के बॉब रेडिकर के दल ने, गैलियम आर्सेनाइड डायोड द्वारा उत्सर्जित अवरक्त प्रकाश के किरणपुंज द्वारा एक टेलिवीजन चित्र को प्रेषित किया था। पहले पहल वे आसूचना को कुछेक फुटों तक ही प्रेषित कर सके थे। लेकिन बाद में, लेंसों तथा परावलयाकृति परावर्त्तकों से लैस, परिष्कृत उपकरण का प्रयोग करके रेडिकर, मेसाचुसेट्स की दो पहाड़ियों की चोटियों के बीच की तीस मील की दूरी तक सन्देश भेजने में कामयाब हो गया था।

टेक्सास इंस्ट्रुमेन्ट्स तो सचमुच, स्वल्पदूरी-संचारतन्त्रों में काम देने के लिए गैलियम आर्सेनाइड-अवरक्त डायोडों का निर्माण शुरू कर चुका था। लेकिन,
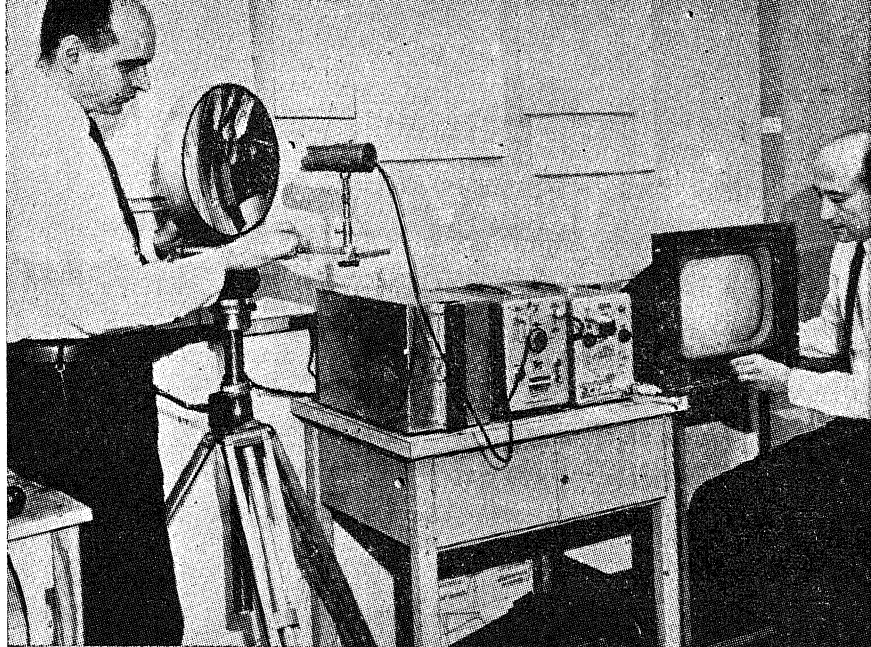
अन्तःक्षेपण लेसर के आविष्कारक। ऊपर के चित्र में एम० आई० टी० का राबर्ट एच० रेडिकर (खड़ा) है। नीचे के चित्रों में से बाएं में मार्शल आई० नाथन (बैठा) है तथा दाए में राबर्ट एन० हाल है।

(सौजन्य : इलेक्ट्रानिक्स, आई०बी०एम०, जी०ई०)
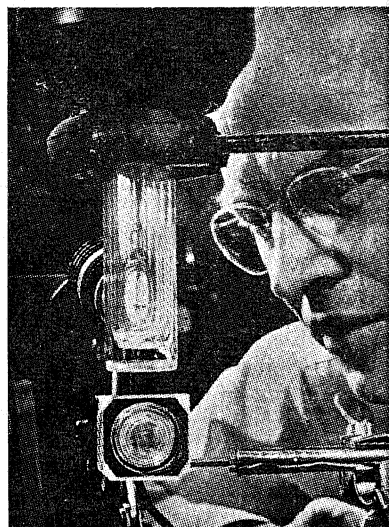
अभी तक, ये सब उत्सर्जन असंसक्त थे। कोई लेसर क्रिया देखने में नहीं आई थी।

बाद में लिंकन लेबोरेटरी, आई० बी० एम० तथा जनरल इलेक्ट्रिक में काम करने वाले अनुसन्धानदलों को यह बात क्रमशः सूझी कि इस संधि में से गुजरने वाली धारा के परिमाण को बढ़ाया जाय और देखा जाय कि क्या परिणाम होता है।

लेकिन डायोडों को जलाए बगैर ऐसा करना कठिन था। अतः वैज्ञानिकों ने पता लगा लिया कि उन्हें अपने डायोडों से द्रव नाइट्रोजन के तापमान पर काम लेना होगा और डायोडों में से लगातार गुजारने के बजाय धारा को उनमें से स्पन्दित करना पड़ेगा।

जब वे दस हजार एम्पियर प्रति वर्ग सेंटीमीटर के घनत्व वाली धारा का निर्माण कर सके तब गैलियम-आर्सेनाइड डायोड का असंसक्त अवरक्त विकिरण, संसक्त हो गया और वास्तविक लेसर-क्रिया सम्पन्न हो गई।

जल्दी ही जनरल इलेक्ट्रिक वाले दल ने पता लगा लिया कि एक गैलियम-आर्सेनाइड-फास्फाइड डायोड का उपयोग करके गहरे लाल रंग का संसक्त उत्सर्जन प्राप्त किया जा सकता है और कि फास्फोरस की मात्रा का परिवर्त्तन, उत्सर्जित विकिरण की तरंग लम्बाई को प्रभावित करता प्रतीत होता है।

इस तरह लालमणि लेसरों तथा गैसीय लेसरों के मुकाबले, अन्तःक्षेपण लेसर ने अनोखी खूबियां पेश कीं। यह संतत दोलन नहीं कर सकता था लेकिन गैस लेसर के मुकाबले, कहीं तेज दर से इसको स्पन्दित किया जा सकता था। फिर, इसके उत्सर्जन की तीव्रता, इस में से गुजरने वाली धारा के आयाम को घटा बढ़ा कर सुगमता से नियन्त्रित हो जाती थी।

ताजे सुधार

तीनों ही प्रकार के लेसर जब से आविष्कृत हुए हैं, तीव्र विकास की अवस्था से गुजर चुके हैं। लालमणि-लेसर ने तो अनेक प्रकार के पदार्थों का उपयोग करने

वाले प्रकाशतः पम्पित लेसरों की पूरी फौज को जन्म दे दिया है। पहले पहल, अनेक प्रकार के ठोस-अवस्था-क्रिस्टल प्रकट हुए। फिर नलिका में बन्द की हुई गैस आई और बाद में तरह-तरह के कार्बनिक द्रव आए, ऐसे काच के बने लेसर आए जिनमें दुर्लभ मृदाधातु विलीन होती थी और आखिर में प्लास्टिक लेसर भी आए। कुछेक प्रकाशतः पंपित लेसर ऐसे हैं जिन के लिए अब स्पन्दों के काम करना जरूरी नहीं चूंकि कतिपय अवस्थाओं में उनके प्रचालन को संतत किया जा सकता है।

प्रकाशतः पंपित लेसरों का निर्गम भी अब गहरे लाल अवरक्त विकिरण तक सीमित नहीं रहा। प्रकाशतः पंपित लेसरों में से कुछेक अवरक्त विकिरण को उत्सर्जित करते हैं। एक ऐसा भी है जो पराबैंगनी को उत्सर्जित करता है। अभी तक, लाल के सिवाय सब दृश्य वर्णों को केवल आवृत्ति-गुणन द्वारा निष्पन्न किया जा सकता है। अर्थात्, निकट-अवरक्त किरणपुंज को एक विशेष क्रिस्टल में से गुजार कर। लेकिन यह प्रक्रम अत्यन्त अकुशल है।

गैसीय लेसर अब भी गैसीय ही हैं और उनमें से अधिकांश अब भी अवरक्त प्रदेश में प्रचालित होते हैं। लेकिन यह पता लग चुका है कि दिष्ट धारा का कोई विद्युत्-उत्सर्जन तथा रेडियो-आवृत्ति का कोई स्रोत भी गैसीय लेसर को प्रचालित कर सकता है। हीलियम तथा निऑन के अतिरिक्त गैसों के और अनेकों संयोजनों ने ऐसे गैसीय लेसर बना दिए हैं जो सारे के सारे निकट अवरक्त प्रदेश में दर्जनों विभिन्न तरंग लम्बाइयों का उत्सर्जन करते हैं। गैस लेसर के रेडियो-आवृत्ति-उत्तेजन का मॉडुलन, किरणपुंज पर आसूचना को आरोपित करने का एक सरल उपाय सिद्ध हुआ है।

सो, हमने देख लिया कि किस प्रकार लेसर का इतिहास, प्रकाश तथा विद्युत् नाम की दो दृश्य घटनाओं को शृंखलित करने सम्बन्धी खोज का इतिहास है। इस प्रयत्न की विस्तृति में—विद्युत् चुम्बकीय तरंग समीकरणों के लेखन के रूप में प्राप्त की हुई जेम्स क्लर्क मेक्सवेल की १८६३ की उत्कृष्ट बौद्धिक उपलब्धि से लेकर १९६२ में घोषित रेडिकर, नाथन तथा हाल के अन्तःक्षेपण लेसरों तक—

एक पूरी सदी समा जाती है। यह ठीक है कि लेसर की जड़ें, हर्ट्स, प्लैंक, आईंस्टाइन श्रीडिंगर तथा हीसनबर्ग जैसे सभी महान् आधुनिक भौतिकीविदों के शोध कार्य तकजाती है लेकिन इसका प्रत्यक्ष उद्गम सिर्फ बारह साल पहले के अर्थात् १९५१ के एक बसन्ती भोर में है जिसमें चार्ल्स एच० टाउन्स, वाशिंगटन डी०सी० के बाग की एक बैंच पर बैठा, एजेलिया के फूलों की बहार निहार रहा था।

३

युद्ध तथा शांतिकाल में लेसर की भूमिका

लेसर के बारे में कहा जाता है कि यह वैज्ञानिक क्षितिज में एक मार्ग को प्रज्वलित करके चला गया है और अपने पीछे टूटे हुए खिलौना-गुब्बारों तथा छिदे हुए ब्लेडों की निशानियां छोड़ गया है। इस व्यंग्य का अवसर इसलिए मिला क्योंकि लेसर के एक सब से प्रसिद्ध प्रदर्शन में, लालमणि लेसर के किरणपुंज का उपयोग करके उस्तरे के ब्लेड को और उसके पीछे रखे खिलौना-गुब्बारे को छेदा गया था। इन प्रयोगों में काम आने वाले लेसर, आमतौर पर, छह इंच लम्बी तथा $\frac{3}{8}$ इंच व्यास वाली लालमणि-शलाकाएं होती हैं जिनके साथ सूटकेस के आकार का एक "बिजलीघर" होता है।

दूसरे प्रदर्शनों में, लेसरों ने कार्बन के छोटे-छोटे ब्लाकों को वाष्प और इस्पात रुई के गोलों को तापदीप्त बना दिया है।

सैनिक अनुप्रयोग : सीमाएं तथा संभाव्यताएं

ऐसे प्रदर्शनों के कारण, आशावादी लोग ऐसा मानने लगे हैं कि हमें सिर्फ इतना करना है कि अधिक बड़े और अधिक शक्तिशाली लेसर बना डालें और हम

देखते देखते—वैज्ञानिक कल्पना में से ही एक वस्तुतः विघटनकारी मृत्युकिरण पैदा कर लेंगे। फिर, इन भयावह आयुधों की शृंखलाओं को फैला कर हम शत्रु के टैंकों, हवाईजहाजों, सिपाहियों, यहां तक कि नियन्त्रित प्रक्षेपास्त्रों के अग्रभागों को वाष्प बना कर रख देंगे।

और राइफलों, मशीनगनों, तोपों, यहां तक कि रेडार, प्रक्षेपास्त्रों तथा परमाणुओं जैसे सब पुराने ढर्रे के खर्चीले अस्त्र-शस्त्रों को विस्मृति के गर्भ में लीन कर देंगे।

लेकिन उस्तरे के किसी ब्लेड को जला कर छिद्रित कर देने और किसी टैंक को वेध देने में बड़ा फर्क है। कुछ दूर पड़े खिलौना-गुब्बारे का पटाखा चलाने और १८,००० मील प्रति घंटा की गति से पृथ्वी के वायुमण्डल में पुनःप्रविष्ट हो रहे टी-२ प्रक्षेपास्त्र के विस्फोटक अग्रभाग को वाष्प बना देने में भी बड़ा फर्क है।

तो, लेसर की भी, अन्य अधिकांश चीजों की तरह अपनी सीमाएं हैं। सब से पहली बात यह है कि लेसरों में से सिर्फ लालमणि लेसर को बतौर हथियार इस्तेमाल करने की बात आजकल गम्भीरता से सोची जा रही है। मगर वह अत्यन्त अक्षम है। इस लेसर में जितनी ऊर्जा पम्प की जाती है उस में से सिर्फ १% संसक्त प्रकाश के रूप में निकलती है।

बाकी ९९ प्रतिशत को भी कहीं न कहीं जाना होता है। यह ऊष्मा की शकल में प्रकट होती है और इंजिनीयरों के सामने एक विशाल लेसर-शीर्ष को शीतलित करने की प्रबल समस्या आ खड़ी होती है। ऐसा करने के लिए, जैसा कि हम देख चुके हैं, उन्हें निम्नतापस्थापियों या ऐसी विशेष थर्मस बोतलों से काम लेना पड़ता है जिनमें द्रव हीलियम, द्रव नाइट्रोजन या दोनों गैसें भरी होती हैं। ऐसे जटिल शीतलनतन्त्र, युद्धक्षेत्र के लिए आवश्यकता से अधिक अनुपयुक्त होते हैं।

वैसे, इस बीच, सक्षमतर प्रकाशिक पम्पों के आविष्कार की दिशा में उल्लेखनीय प्रगति हो गई है। ऐसा पम्प, निकट-अवरक्त से लेकर पराबैंगनी तक के सारे

सीमान्तर की सब तरंग-लम्बाइयों पर अपनी प्रकाश-ऊर्जा को अंधाधुंध पैदा नहीं करेगा। वह तो इसको उस विशिष्ट नीली-हरी तरंगलम्बाई पर संकेन्द्रित करेगा जिसको लालमणि लेसर सब से अधिक अवशोषित करता है। कुछ वैज्ञानिकों ने कल्पना की है कि एक लेसर से दूसरे को पम्पित करने का काम लिया जा सकेगा लेकिन वर्तमान यन्त्रों का कोई भी संयोजन इस योजना को फिलहाल किसी लायक नहीं बना सका।

सैनिक प्रयोजनों के सिलसिले में ही, लालमणिलेसर के फ्लैशलैम्प (कौंध बत्ती) को ऊर्जित करने के लिए आवश्यक शक्ति की समस्या भी है। आखिरकार युद्धक्षेत्र में विद्युत्शक्ति का कोई सुगम सा साकेट हमेशा तो सुलभ नहीं होता और अगर दीर्घकालिक अवधियों तक ऊर्जा की विशाल मात्रा को उत्सर्जित करना पड़े तो बैटरियों के समुदाय भी बहुत देर नहीं चलते। लेकिन इधर-उधर से और तरीके निकाले जा सकते हैं। लैंसों तथा दर्पणों की एक सुविचारित व्यवस्था द्वारा सूर्य की किरणों को लेसर पर फोकस किया जा सकता है और इस प्रकार फ्लैशलैम्प या इलेक्ट्रानी शक्ति के प्रदाय का विकल्प मुहय्या किया जा सकता है। सौर भट्ठियां तो पहले ही कठोर धातुओं तथा मिश्रधातुओं को गलाने के काम आ रही हैं—उन के द्वारा बाल बढ़ाने की दवाइयों के नमूनों के वाष्प बनाए जाने का तो कहना ही क्या! फिर, फ्लैशलैम्प को सामर्थ्य प्रदान करने वाली बिजली मुहय्या करने के लिए या शायद भविष्य के किसी लेसर को सीधा पंपित करने के लिए रेडियो एक्टिव आइसोटोप भी काम आ सकते हैं।

लेसरों के अपने निर्गम को बढ़ाने के लिए भी विभिन्न प्रविधियां काम में लाई जा चुकी हैं। एक प्रविधि का नाम है, गुण का अपहरण। यह, चालाकी से, लेसर से इतनी ऊर्जा का निर्गम करा देती है जो उसके सामान्य निर्गम से अधिक होती है।

गुण-अपहरण के लिए, लेसर शलाका के सिरों पर लगे वास्तविक दर्पणों में से एक को कुछ देर के लिए हटा दिया जाता है और उसकी जगह एक और दर्पण को कुछ अधिक फासले पर लगा दिया जाता है। प्रकाश की किरण की टक्कर

एक ऐसी शलाका से होती है जो इतनी लम्बी नहीं होती जितनी दीखती है। ऊर्जा का निर्माण, इस असली शलाका के दिखावटी आकार को भरने के लिहाज से होने लगता है। असली दर्पण को हटा कर इसके गुण का "अपहरण" किया जा चुका है। फिर ज्यूं-ज्यूं ऊर्जा का निर्माण होता जाता है, असली दर्पण को पुन: अपनी जगह स्थापित कर दिया जाता है ताकि शलाका का समस्वरित गुण लौट आवे। लेकिन अब तक, काल्पनिक तौर पर कहीं अधिक लम्बी उस शलाका को भरने के लिए लेसर, बहुत बड़ी मात्रा में फालतू ऊर्जा को बना चुका है और सामान्य अवस्थाओं में जिस स्पन्द की उचित तौर पर आशा की जाती है उससे कहीं अधिक तीव्र स्पन्द के साथ यह सारी ऊर्जा फूट पड़ती है।

इस प्रकार, इंजिनीयर लोग ऐसे लेसर बनाने में लगे हैं जो कि अधिक शक्तिशाली भी होंगे और साथ ही साथ अधिक सक्षम भी। इस शोधकार्य द्वारा, स्वभावत:, शीतलन की कुछ समस्याओं से छुटकारा पाने में सहायता मिलेगी चूंकि जब लेसर के उपयोगी सिरे से निर्गमित होने वाली शक्ति की मात्रा बढ़ेगी तो उपकरण को गर्माने वाली शक्ति कम बचा करेगी और अतएव प्रशीतन की आवश्यकता भी कम पड़ा करेगी।

लेकिन इन सबसे बड़ी एक और समस्या है। लेसर-किरणपुंज, अभी तक प्रकाश का किरणपुंज ही है। और प्रकाश की तरह ही यह, कोहरे, वर्षा और बादलों से प्रकीर्ण या धुंधला हो जाता है। फिर जब सूर्य नहीं चमक रहा होता तब हमारी सौर भट्ठी को भी कुछ हो जाता है। सच तो यह है कि आकाश निर्मल हो तो भी लेसर के प्रभाव की अधिकतम दूरी फुटों में मापी जाती है मीलों में नहीं चूंकि इसके किरणपुंज को वायुमण्डल अवशोषित कर लेता है।

आधुनिक युद्ध कोई ऐसे खेल नहीं हैं जो कभी भी वर्षा के कारण बन्द कर दिए जाते हों। अत: जलवाष्प या वायुमण्डल के अन्य घटकों द्वारा अवशोषित हो जाने की समस्या, टेढ़ी खीर है।

किसी भले आदमी ने एक बार कहा था कि जिनको हराया नहीं जा सकता

उन से मिल जाना चाहिए। इस पर दूसरा भद्र पुरुष बोला था कि अगर आप उन्हें हरा नहीं सकते और वे आप को अपने से मिलने भी नहीं देते तो फिर उन से दूर भागने में ही भला है। और वायुसेना, लेसर के मामले में ऐसा ही कर रही है।

समस्या, पृथ्वी के वायुमण्डल की है? तो लेसर को वायुमण्डल से बाहर निकाल लो।

प्रक्षेपास्त्ररोधी लेसर ?

लेसर-आयुधों की एक क्रियात्मक व्यवस्था की ओर प्रथम चरण तो वायुसेना द्वारा उठाये जाने शुरू हो चुके हैं। इस प्रायोजना के अन्तर्गत, प्रथम तो लेसरों को पृथ्वी की उच्च तुंगताओं पर से और बाद में शायद कक्षा में घूमते अन्तरिक्ष केन्द्रों या प्रक्षेपास्त्र-रोधी प्रक्षेपास्त्रों पर से भी प्रचालित किया जायगा।

खरगोश के शोरबे के एक पुराने नुस्खे की पहली हिदायत यह है: "सब से पहले एक खरगोश पकड़ो।" इसी के मुताबिक, प्रक्षेपास्त्रों के विस्फोटक अग्रभागों को नष्ट करने की वायुसेना की योजना, विस्फोटक भाग का पता लगाने से शुरू होती है। यह सूचना कि कोई प्रक्षेपास्त्र चल पड़ा है, हमारी बैलिस्टिक मिसाइल अर्ली वार्निंग सिस्टम (प्रक्षेपास्त्र सन्बन्धी पूर्व चेतावनी की व्यवस्था) से प्राप्त हो जायगी। यह व्यवस्था तीन ऐसे विशाल रेडार केन्द्रों के जाल से बनी है जिन के ऐन्टेना, उत्तरीय आकाश के उदास पृष्ठाधार पर चित्रविचित्र विज्ञापनपट्टों तथा गुब्बारों की तरह खड़े हैं। एक केन्द्र अलास्का के फेअरबैंक्स नामक स्थान के निकट है। दूसरा, ग्रीनलैण्ड के थूले नामक स्थान के पास है और तीसरा, फाईलिंग डेल्स के निकटस्थ उत्तरी इंगलैण्ड की जंगली, झाबर भूमि पर।

प्रक्षेपास्त्र-पूर्वचेतावनी-व्यवस्था (बी० एम०ई० डब्ल्यू० एस०) के रेडार, केबलों तथा विशेष रेडियो-शृंखलाओं के जरिए अपने चेतावनी संकेत, एक कम्प्यूटर पद्धति के नियंत्रक केन्द्र में भेजते हैं। यहां संकेतों का विश्लेषण किया जाता है

और प्रक्षेपास्त्रों को खगोलीय पिंडों या हमारे अपने हवाई जहाजों आदि अन्य पदार्थों से विभेदित किया जाता है। प्रक्षेपास्त्रों द्वारा कोई आक्रमण हो तो प्रक्षेपास्त्र-चेतावनी-व्यवस्था हमें उससे बीस मिनट पहले ही चेतावनी दे देगी।

अगले चरण में लीक पकड़ने वाला ऐसा उच्चशक्ति, सूक्ष्मतरंग-रेडार बनाया जायगा जिसे प्रक्षेपास्त्र के अग्रभाग पर लगाया जा सकेगा और रेडार, लगातार, स्थिति संबंधी सूचना देता रहेगा।

इसके बाद यह लीक पकड़ने वाला रेडार, एक प्रकाशिक रेडार को ऐसे लक्ष्य के साथ संरेखित कर देगा जो परास को निर्धारित करने के लिए लेसर का उपयोग करेगा। लक्ष्य अभिग्रहण की यह पद्धति, खगोलज्ञों की उस पद्धति के अनुरूप है जिसमें किसी तारे का स्थान-निर्धारण करने के लिए विस्तृतक्षेत्र दूरदर्शी का उपयोग किया जाता है और फिर उसका अध्ययन करने के लिए इसकी जगह उच्च शक्ति वाला संकीर्णक्षेत्र-दूरदर्शी आ जाता है।

यह प्रकाशिक लेसर, परास, ऊंचाई तथा दिगंश (या क्षैतिज दिक्स्थिति) सम्बन्धी ठीक-ठीक सूचना को नियन्त्रक कम्प्यूटर तक पहुँचा देगा जो, क्रमशः, अन्तिम और शक्तिशाली लेसर को चालू कर देगा—ऐसे लेसर को जो प्रक्षेपास्त्र के अग्रभाग के भेद्य भाग को जलाकर प्रक्षेपास्त्र को नष्ट कर देगा।

इससे यह सवाल सामने आता है कि प्रक्षेपास्त्र का परमाणु बम वाला सिरा कितना भेद्य होता है? सब से पहले, मान लीजिए, हमारी चर्चा का विषय ऐसा विस्फोटक सिरा है जिसमें हाइड्रोजन बम रखा है। जैसे अमरीकी विस्फोटक भाग, मिनटमैन प्रक्षेपास्त्र पर लगाए गए हैं उनका विनाशी बल ७००,००० से ८००,००० टन टी०एन०टी० (बारूद) के बराबर होता है। रूस के टी-२ प्रक्षेपास्त्र के विस्फोटक भाग, निःसन्देह इससे बड़े हैं लेकिन उनका विनाशी बल भी शायद एक मेगाटन (१,०००,०००) टी०एन०टी० से बहुत अधिक नहीं है।

हाइड्रोजन बम या संलयन अभिक्रिया के लिए ड्यूटीरियम से काम लिया जाता है, यह हाइड्रोजन का एक भारी रूप होता है जिसके न्यूक्लिअस में एक

प्रोटोन तथा एक न्यूट्रोन होता है। इस बम में तीन न्यूक्लीय संलयन या ताप-न्यूक्लीय अभिक्रियाएं होती हैं:

प्रथम अभिक्रिया में ड्यूटीरियम के दो परमाणु या ड्यूटिरोन मिल (या संलियत हो) जाते हैं और हीलियम-३ तथा एक न्यूट्रोन का निर्माण करते हैं। इस अभिक्रिया से ऊर्जा की निर्मुक्ति भी होती है।

दूसरी अभिक्रिया में दो ड्यूटिरोन मिलकर एक ट्रिटियम न्यूक्लिअस तथा एक प्रोटोन बनाते हैं। ट्रिटियम, हाइड्रोजन का एक रेडियो एक्टिव समस्थानिक होता है, इसके न्यूक्लिअस में एक प्रोटोन तथा दो न्यूट्रोन होते हैं। ट्रिटियम की अर्ध-आयु बारह साल होती है।

तीसरी अभिक्रिया में एक ट्रिटियम न्यूक्लिअस तथा एक ड्यूटिरोन मिल कर हीलियम-४ तथा एक न्यूट्रोन बनाते हैं और ऊर्जा को भी निर्मुक्त करते हैं।

ताप-न्यूक्लीय अभिक्रियाएं तभी होती हैं जब ड्यूटीरियम के तापमान को सेंटीग्रेड की दस लाख डिग्रियों तक बढ़ा दिया जाता है। हाइड्रोजन बम में ऐसे तापमानों तक पहुंचने के लिए ऊष्मा तथा दाब को एक साथ प्रयुक्त किया जाता है। इस क्रिया को निष्पन्न करने के लिए पहले परमाणु बम के अन्दर ही विस्फोट (अन्तः विस्फोट) किया जाता है।

लेकिन परमाण्विक या न्यूक्लीय विखंडन जन्मित विस्फोट तब होता है जब कि तथाकथित क्रान्तिक द्रव्यमान में विखण्डनीय पदार्थ उपस्थित हो। परमाणु बम के फ्यूज लगाने वाले तथा संलयन करने वाले परिपथों का काम होता है प्लूटोनियम या यूरेनियम-२३५ जैसे विखण्डनीय पदार्थ के दो खण्डों को एकत्र कर देना ताकि वह क्रान्तिक द्रव्यमान पैदा हो जाय।

अमरीकी आयुधों में, इस क्रांतिक द्रव्यमान के घटक ऐसे डट्टों के साथ संलग्न होते हैं जो उन पटाखों या छोटे-छोटे विस्फोटक आवेशों द्वारा आगे की ओर
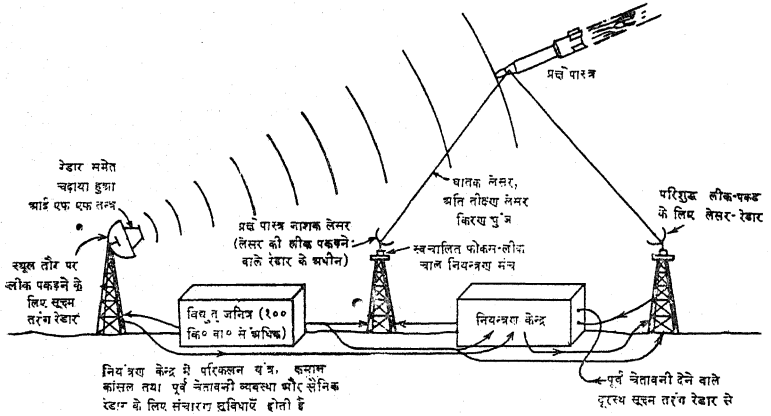
अन्तर्महाद्वीपीय प्रक्षेपास्त्रों के प्रतिरोध के लिए प्रस्तावित लेसर-सुरक्षा व्यवस्था।
(सौजन्य : इलेक्ट्रानिक्स) :

धकेले जाते हैं जो संलयन करने वाले तथा फ्यूज लगाने वाले इन इलेक्ट्रानिक परिपथों द्वारा नियमित अनुक्रम में उत्सर्जित होते रहते हैं।

अगर लेसर द्वारा किए गए सूक्ष्म छेदन भी भेद्यस्थानों पर अनुप्रयुक्त हों तो ऐसे यंत्र के विरुद्ध अत्यन्त सफल हो सकते हैं ; असमय में ही पटाखे चला दिए जा सकते हैं, काल-समंजन परिपथों को बेकार किया जा सकता है और बम्ब को समतापमण्डल (स्ट्रेटोस्फिअर) में ही, बिना अपनी हानि किए, पूर्वविस्फोटित किया जा सकता है (जिसकी सम्भावना बहुत नहीं) या इसे इस प्रकार बेकार किया जा सकता है कि यह जमीन पर गिर पड़े और कोई हानि न कर सके (इसकी सम्भावना अधिक है)।

लेकिन रूसी उपकरण के प्रेक्षण से यह धारणा बनती है कि उनकी प्रवृत्ति

जटिल विद्युत् यांत्रिक मशीनबाजी को त्याग कर सरल, जानदार तथा भरोसे की यांत्रिक विधियों को अपनाने की है। अतः वे, डट्टे को आगे धकेलने के लिए सम्भवतः घड़ी की चाभी भरने जैसी यंत्रविधि का या शक्तिशाली कुंडलित स्प्रिंग का उपयोग कर रहे हैं।

इससे बढ़ कर, बहुत संभावना है कि रूसी लोग बम चलाने की, 'सम्पर्क' पर आधारित यंत्रविधियों का उपयोग कर रहे हैं ; इनकी बदौलत पृथ्वी से छूते ही बम फट जायगा चाहे उसका संलयन करने का तथा फ्यूज लगाने का तन्त्र बेकार हो चुका हो । इस प्रकार, उनके न्यूक्लीय विस्फोटकाग्र, सूक्ष्म छेदनों द्वारा, हमारे विस्फोटकाग्रों से कम भेद्य सिद्ध होंगे। इस सब से बिलकुल स्पष्ट हो जाता है कि ऐसे लेसर के निर्माण में हमारी इतनी दिलचस्पी क्यों है जो वायुमण्डल में पुनः प्रवेश करते हुए अग्रभाग को वस्तुतः वाष्प बना कर रख दें और कि जब तक काम का ऐसा स्तर प्रदर्शित नहीं किया जाता तब तक हमारे सैनिक नेता लेसर आयुधों को बहुत अधिक महत्त्व क्यों नहीं देना चाहते। इस सब के लिए यह मानकर चलना होगा कि हमारे पास अग्रभाग की स्थिति को परिकलित करने वाले लम्बे चौड़े तथा जटिल उपकरण का, लेसर को तेजी से उछाल कर उपयुक्त स्थिति में पहुंचाने का, इस को परिशुद्धतया लक्ष्य पर फोकस करने का और इसको उस स्थिति में इतनी देर खड़ा रखने का प्रबन्ध है कि यह क्षति पहुंचा सके।

प्रलोभिकाओं, अर्थात्, स्थल सेना के नाइक ज़िअस या नाइक-X जैसे प्रक्षेपास्त्र-रोधी प्रक्षेपास्त्रों से बम्बारी चालू कराने के लिए छोड़े गए नकली प्रक्षेपास्त्रों की समस्या भी लेसर द्वारा विनाश की धारणा को बेकार नहीं कर सकती चूंकि, उपलब्ध अवधि के अन्दर-अन्दर, एक शक्तिशाली तथा यथार्थ लेसर-सुरक्षा-व्यवस्था, वास्तविक प्रक्षेपास्त्र को भी जला डालेगी, उसकी प्रलोभिकाओं को भी। लेकिन ऐसा कोई तरीका निकालना होगा कि मित्र देशों के उपग्रह या अन्य यान नष्ट न हो सकें। इसके लिए आई० एफ० एफ० (आइडेंटिफिकेशन-फ्रेंड-आर-फो=शत्रु-मित्र-पहचान) तन्त्र को, लीक पकड़ने वाले सूक्ष्मतरंग रेडार के साथ संलग्न करना होगा। आई०एफ०एफ०, एक स्वचालित और कूटभाषा में उत्तर देने वाला

तन्त्र होता है जिसमें रेडार पर एक प्रश्नकर्त्ता होता है और यान पर एक उत्तरदाता होता है (जिसे ट्रांसपोंडर कहते हैं)। जब भी कोई मित्रयान रेडार की मार में आजाता है ये दोनों एक दूसरे को चुनौती तथा प्रतिसंकेत देने लगते हैं।

प्रकाशिक रेडार का निर्माण तो पहले ही चालू हो चुका है। ट्रिनिटी साइट वह स्थान है जहां फौलादी जंजीर की बाड़ें अब भी प्रथम परमाणु बम से पिघली हुई चमकदार रेत के कई एकड़ों को घेरे हुए हैं। यहां से कुछ ही मील दूर न्यू मेक्सिको के क्लाउड क्राफ्ट स्थान में भूमि, टूलारोस बेसिन के युक्का तथा मैस्कीट के झाड़ों से चित्रित गर्म रेगिस्तानी धरातल से एक मील ऊंची है।

यहां के एक ऐसे पर्वत-शिखर पर, जिसकी वायु निर्मल, शुष्क तथा करारी है, वायुसेना ने लीक पकड़ने वाला दैत्याकार, ४८-इंची दूरदर्शी स्थापित किया है, इसमें एक लेसर-प्रेषित्र भी लगा हुआ है। इसी यथार्थमापी आरोपण पर दो १५-इंची दृष्टिमूलक अभिग्रहण वाले दूरदर्शी भी लगे हुए हैं। इस तन्त्र की पकड़ में १०० मील के फासले तक का ३०० वर्गफुट का क्षेत्र आ जायगा और यह किसी पदार्थ के स्थान का उससे १० फुट के फासले तक निर्धारण कर सकेगा।

डिस्कवरर उपग्रहों की लीक पकड़ने के लिए वायुसेना, प्रकाशिक रेडार का उपयोग करने वाली है। इन उपग्रहों को समय-समय पर कैलिफोर्निया के वांडनबर्ग स्थान में स्थित वायुसेना के अड्डे से इस प्रकार छोड़ा जाता है कि वे पृथ्वी के गिर्द ध्रुवीय कक्षाओं में स्थापित हों।

लेकिन अन्तर्महाद्वीपीय प्रक्षेपास्त्रों से सुरक्षित रखने योग्य नगरों या अन्य सुभेद्य स्थलों के पास ऐसे पहाड़ सदा सुलभ नहीं होते। अतः अन्य परिचालन स्थल भी ढूंढने होंगे। जैसा कि मैं इस अध्याय के प्रारम्भ में कह आया हूं, हो सकता है कि प्रक्षेपास्त्ररोधी लेसरों को, कक्षा में स्थित अन्तरिक्ष मंचों पर आरोपित करना सम्भव हो जाय। ये लेसर, रेडार-नियंत्रित होंगे और सौर ऊर्जा द्वारा पंपित हो सकेंगे। लेकिन लेसर के यथार्थ फोकसन के लिए आवश्यक स्थिरता वाले मंच के निर्माण की समस्या रहेगी। फिर यह भी है कि अन्तर्रोधक या प्रक्षेपास्त्ररोधी

राकेट, लेसरों का वहन करें और प्रकाशिक पंपिंग को मुहय्या करने के लिए उस प्रकार के रासायनिक फ्लैशचूर्णों का प्रयोग किया जाय जैसे कि फ्लैशबल्बों से पहले के जमाने के फोटोग्राफरों के काम आते थे।

तो, वर्तमान स्थिति के मुताबिक, आजकल के लेसरों से निकलने वाले विस्फोटक इतने कम रहेंगे कि किसी न्यूक्लीय विस्फोटकाग्र को बहुत क्षति नहीं पहुंचा सकेंगे। आजकल के उच्चशक्ति लेसरों को, विस्फोटों के बीच में चार या पांच मिनटों का व्यवधान रखना पड़ता है ताकि अगले विस्फोट के लिए आवश्यक ऊर्जा संचित हो सके और लेसर का अग्रभाग ठंडा हो सके। अगर हम उनका परिचालन, बाह्य अन्तरिक्ष से कर सकें जहां कि सूर्य की किरणें प्रकाशिक पंपिंग मुहय्या कर सकें और तेज सर्दी, ऊष्मा को विसरित कर सकें तो लेसर अधिक सक्षम हथियार बन सकता है। ऊर्जा संचय-अवधि को छोटा करने की समस्या का आंशिक समाधान तो तथाकथित गैटलिंग-गन-लेसर ने कर दिया है। इसमें छह लेसर-शलाकाएं, उसी प्रकार वृत्ताकार व्यवस्थित होती हैं, जिस प्रकार किसी रिवाल्वर के सिलिंडर की फायर-चेम्बर होती हैं।

ऊर्जा, ऊष्मा, स्थिरता तथा वायुमण्डलीय अवशोषण की समस्याएं हल हो जायं तब भी यह प्रश्न बना रहेगा कि दुश्मन, कौन-कौन सी लेसर-रोधी चालें चल सकता है। वह, लेसर किरणपुंज के मार्ग में धुएं का पर्दा खड़ा कर सकता है। या, अपने न्यूक्लीय विस्फोटकाग्र से इस किरणपुंज को विक्षेपित करने के लिए वह अत्यन्त पालिशदार पृष्ठ का सहारा ले सकता है। परमाणु-बम विस्फोट से उत्पन्न होने वाले, फारेनहाइट के ३,००० डिग्रियों तक के तापमान से सैनिकों तथा उपकरणों को बचाने के लिए परावर्तन प्रविधियों के सम्भावित उपयोग पर आजकल अनुसन्धान हो रहा है लेकिन लेसर किरणपुंज के विरोध में पालिशदार पृष्ठ की सफलता संदिग्ध है। यह बात पक्की है कि किसी पालिशदार परावर्त्तक का पृष्ठ किसी प्रकार मैला हो गया तो लेसर के लिए अपना काम शुरू कर देना और शायद अपने लक्ष्य को नष्ट कर देना भी सम्भव हो जायगा। और, जब किसी प्रक्षेपास्त्र का अग्रभाग पृथ्वी के वायुमण्डल में दोबारा प्रविष्ट होता है तब पैदा

होने वाली तीक्ष्ण गर्मी, चमकीले से चमकीले परावर्ती पृष्ठ को भी मलिन करके छोड़ती है।

लेसर की शक्ति

प्रक्षेपास्त्रों के बाहरी भागों तथा अन्य धात्विक पदार्थों को जलाने के सम्बन्ध में लेसर की क्षमताएं ठीक-ठीक क्या हैं? यह तो स्पष्ट है कि बहुत सी ऊर्जा को प्रकाश के एक संकीर्ण से किरणपुंज में भर देने से १८६,००० मील प्रतिसैकण्ड की रफ्तार से विनाश की बौछार करना सम्भव हो सकता है। लेकिन विनाश कितना होगा?

लेसर, अपने लक्ष्य पदार्थों में इतना ताप पैदा कर सकते हैं जो सूर्य के पृष्ठ के ताप से भी गई गुणा अधिक हो। एक परीक्षण में, लेसर के किरणपुंज को जंगरोधी इस्पात (स्टेनलेस स्टील) के एक खण्ड के पृष्ठ पर टकराया गया। इस पृष्ठ पर से धातु वाष्पित हो गई या उड़ गई और एक गर्त पैदा हो गया। साथ ही, इस पृष्ठ से बहुत नीचे के भाग भी क्षतिग्रस्त हो गए। गर्त के नीचे, इस्पात पिघल कर फिर ठोस हो गया था और कुड़कीला, ढलवां लोहा बन गया था। उससे भी नीचे के हिस्से का इस्पात आंशिक रूप से तापानुशीतित (अनीलित) हो गया था।

लेसर-ऊर्जा को जूलों में मापा जाता है। जूल, मीटरी पद्धति में ऊर्जा की एक इकाई होती है। ऊर्जा की परिभाषा है, कार्य करने की क्षमता। इस प्रकार इसका सम्बन्ध शक्ति से है अर्थात् कार्य की दर से। उदाहरण लीजिए। मूलतः अश्वशक्ति (हॉर्सपावर) कार्य की उस मात्रा को कहते हैं जिसको एक घोड़ा एक दिन में निष्पन्न कर सकता था। अठारहवीं सदी में इस पद को इश्तिहारी मतलबों के लिए गढ़ा गया था और इसका उपयोग उन दिनों आविष्कृत होने वाले भाफ के इंजनों की उपयोगिता की तुलना, घोड़ों से करने के लिए किया जाता था जो उस जमाने में मानव के कार्य का अधिकांश बोझ उठाया करते थे।

जूल की परिभाषा करनी हो तो इसे एक वाट-सैकण्ड (वाटों तथा सैकण्डों

का गुणनफल या एक क्लॉम-वोल्ट (क्लॉमों तथा वोल्टों का गुणनफल) कह सकते हैं : ये दोनों पदावलियां बिल्कुल तुल्यमान हैं। क्लॉम, विद्युत्-आवेश का पैमाना है। यह ६२,५०० लाख अरब इलेक्ट्रानों के बराबर होता है। पचास-जूल ऊर्जा वाला लेसर, एक मील परे पड़े कागज या लकड़ी में आग लगा सकता है। उस्तरे के ब्लेड में छेद करने तथा गुब्बारा फोड़ने के प्रदर्शन में जो मॉडल काम आया था वह सिर्फ २० जूल उत्सर्जित करता था। एक कंपनी तो पहले ही ३५०-जूली लेसर को व्यापारिक तौर पर बेचना शुरू कर चुकी है। यह अधिक बड़ी यूनिट, इस्पात की $\frac{१}{८}$ इंची चादर को काट सकती है। एक और कम्पनी ने ५००-जूल वाले लेसर का प्रदर्शन किया है और दावा किया है कि यह इस्पात की $\frac{१}{४}$ इंची चादर को काट सकता है। यह ५००-जूली लेसर, लालमणि की शलाका का उपयोग करता है जो १२ इंच लम्बी और $\frac{५}{८}$ इंच व्यास की होती है। इसको इलेक्ट्रानिक फ्लैश वाले आठ लैम्पों की व्यवस्था द्वारा पंपित किया जाता है और द्रव नाइट्रोजन द्वारा ठंडा करना पड़ता है।

और, लालमणि-शलाका वाली किस्म से अधिक कार्यक्षमता वाले लेसरों की योजना बन चुकी है। एक लेसर का आधार होगा, हाइड्रोजन का ऊर्जा की दो अवस्थाओं की बीच रूपांतरित होते रहना। इसका निर्गम, स्पेक्ट्रम के दूर-अवरक्त प्रदेश में ८५,००० एं का होगा लेकिन प्रकाशिक लेंस, फिर भी, इसके किरणपुंज को फोकस करके एक सेंटीमीटर व्यास तक का कर सकेंगे। आशंसा यह है कि विकासात्मक मॉडल, दो सौ फुटी निर्वातित नलिका में १,००० डिग्री फारेनहाइट तापमान वाला किरणपुंज प्रदान कर सकेंगे। वायुमण्डलीय अवशोषण के कारण, ऐसे लेसर का प्रचालन ऐसे स्थान से करना होगा जो कम से कम १००,००० फुट अन्तरिक्ष के भीतर हो। इसके लिए इसकी स्थापना या तो कक्षा में परिक्रमा करते हुए किसी अन्तरिक्ष मंच पर करनी पड़ेगी या स्ट्रेटोस्कोप किस्म के किसी गुब्बारे के गॉण्डोला (किश्ती) में। पृथ्वी के वायुमण्डल में तो इसकी मार एक मील से भी कम की रहेगी।

इस लेसर के लिए कम से कम दस लाख वाट की शक्ति की आवश्यकता होगी।

अतः इसको किसी न्यूक्लीय स्रोत से ही शक्ति प्राप्त करानी होगी। इस लेसर के कैप्सूल का व्यास कम से कम दस फुट रखना होगा और लम्बाई तीस फुट। न्यूक्लीय शक्ति के इसके स्रोत को एक उलडी पर स्थापित किया जाएगा।

एक कम्पनी ऐसा लेसर बना रही है जो एक अरब जूल प्रदान करेगा। इसके बारे में कुछ भी बताया नहीं गया है सिवाय इसके कि इसका लेसर-पदार्थ कोई ठोस पदार्थ है और कि इसकी पंपिंग की व्यवस्था परम्परानिष्ठ नहीं है।

लेकिन लेसर, आखिरकार, जलाता कैसे है? इसके द्वारा काटे जाने की क्रिया का वर्णन स्थानीयकृत विस्फोट के रूप में किया गया है। उदाहरण के तौर पर, अगर एक जूल के किसी लेसर पुंज को कार्बन पेपर की चादर पर फोकस किया जाय और स्पन्द दीर्घ अवधि का हो तो लेसर इस कागज को झुलसा मात्र देता है। मगर जब स्पन्दन की अवधि को घटा कर, मानो, एक माइक्रो सैकण्ड या एक सैकण्ड के दस लाखवें भाग का कर दिया जाता है तब किरणपुंज के इस कागज के साथ टकराते ही चटकने की आवाज सुनाई देती है। यह चटक उन गैसों के कारण होती है जो बाहर निकलने का यत्न कर रही होती हैं।

ऐसे ही, धातुओं को काटने के प्रसंग में भी, लम्बे स्पन्द, ऊष्मा को लक्ष्य के पृष्ठ पर ही विसरित हो जाने देते हैं और, इस प्रकार, काटने की क्रिया को कम कर देते हैं। लेकिन त्वरित, उच्चशिखर-शक्ति के स्पन्द, पृष्ठ पर से तिरछे हथौड़े की तरह कतरनें उतार देते हैं, प्रत्येक स्पन्द अपने लक्ष्य के कुछ भाग को वाष्पित करता जाता है।

इन प्रभावों को देख कर कुछ वैज्ञानिक मानने लगे हैं कि लेसर किरणपुंज, पुनः प्रवेश करते हुए प्रक्षेपास्त्र के अग्रभाग के आगे महाविनाश करने वाली प्रघाती तरंग को स्थापित कर सकता है। दूसरे वैज्ञानिक ऐसा मानते हैं कि अकेला विकिरण-दाब ही प्रक्षेपास्त्रों को उनके प्रक्षेप-पथ के किसी स्थल पर विक्षेपित करने को काफी होगा।
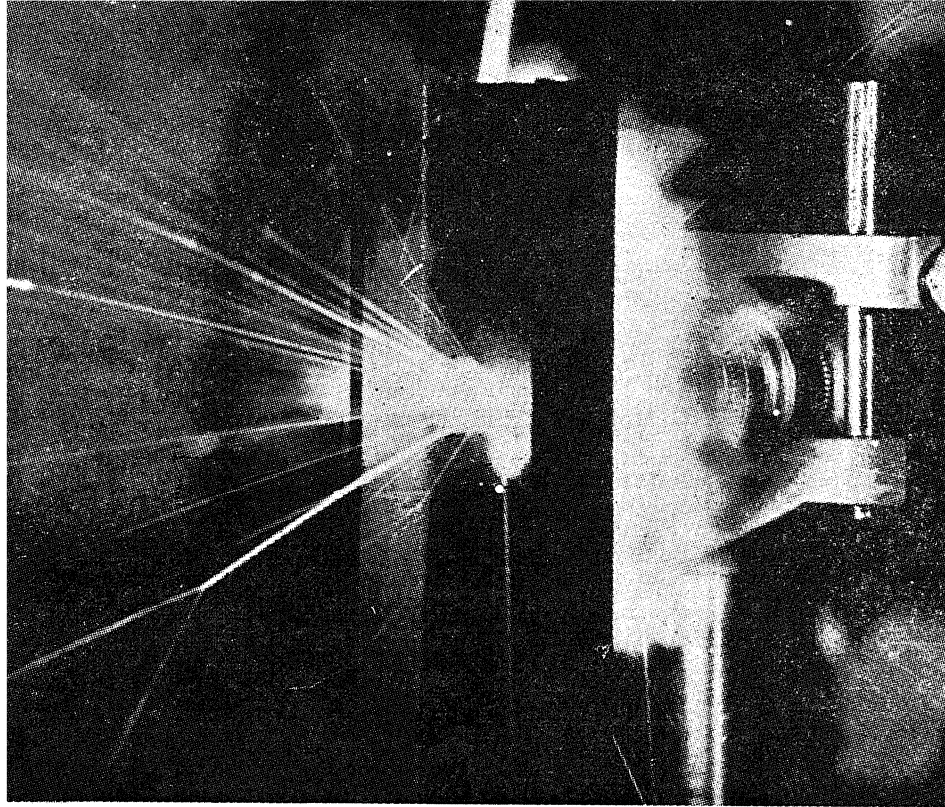
५०० जूल वाले लेसर का किरणपुंज, इस्पात के एक गर्डर को फाड़ कर पार निकल गया है। (सौजन्य : रेथिआन)

लेसर : समुद्र के नीचे

लेसर, न सिर्फ बाह्य अन्तरिक्ष में अपितु हमारे दूसरे मोर्चे—भीतरी अन्तरिक्ष पर भी निर्णायक आयुध सिद्ध हो सकता है। भीतरी अन्तरिक्ष या जलीय अन्तरिक्ष (हाइड्रोस्पेस) ऐसे पद हैं जिनका उपयोग आजकल उस विस्तृत, अज्ञात प्रदेश का उल्लेख करने के लिए किया जाता है जो पृथ्वी के दो-तिहाई पृष्ठ पर व्याप्त, शक्तिशाली महासमुद्रों के नीचे स्थित हैं।

जिस क्षेत्र पर आज तक मानव के पैर पड़े हैं, उससे दुगना क्षेत्र यहां पड़ा है। इसके घेरे में हिमालय से ऊंचे पर्वत हैं और ग्रेंड केन्यन से कई गुणा गहरे महाखड्ड

हैं, रेगिस्तानी उजाड़ हैं तथा घने जंगल हैं। इस में से गल्फ स्ट्रीम तथा हेमबोल्ट करेंट जैसी प्रबल नदियां बहती हैं और इसकी गहराइयों में ऐसे अद्‌भुत प्राणी बसते हैं जिनकी आकृतियां तथा आदतें मानव की विचारशक्ति पर जोर डाल रही हैं।

अब इस अज्ञात संसार को लक्ष्य करके यह नहीं कहा जा सकेगा :

"मानव के हाथों यह पृथ्वी
जर्जर होती आई है।
पर सागर तट से आगे न
सत्ता उस की बढ़ पाई है।"

किसी भी आगामी महायुद्ध में, पानी की सतह के नीचे लड़ी जाने वाली लड़ाइयां उतनी ही—शायद अधिक भी—निर्णायक होंगी जितनी कि पृथ्वी के पृष्ठ पर, पृथ्वी के वायुमण्डल में, यहां तक कि बाह्य अन्तरिक्ष में लड़ी जाने वाली।

परमाणु-प्रणोदित पनडुब्बी के आविष्कार ने पनडुब्बियों को इस बात से छुटकारा दिला दिया है कि वे समय-समय पर समुद्र-पृष्ठ पर निकल कर उन विद्युत् बैटरियों को पुन: आवेशित करवाती रहें जो पहले निमग्न यान को शक्ति प्रदान किया करती थीं। परमाणु शक्ति संपन्न पनडुब्बियां पहले ही ध्रुवीय, प्लावी हिमपुंज के नीचे से होकर उत्तर ध्रुव तक जा चुकी हैं और, डूबे डूबे ही, सारे संसार का पूरा चक्कर काट चुकी हैं।

तथाकथित" एल्बाकोर" खोल ने परमाणुशक्ति वाली तथा पारम्परिक शक्ति वाली, दोनों प्रकार की पनडुब्बियों के लिए सम्भव कर दिया है कि जलपृष्ठ पर चलने वाली तीव्रतम वाहिकाओं से अधिक नहीं तो बराबरी की तेजी से यात्रा कर सकें ("एल्बाकोर" उस पनडुब्बी के नाम पर जिसमें सब से पहले यह डिजाइन काम आया था)। इन पनडुब्बियों द्वारा भी हवाई जहाज की तरह तीन विमाओं में जंगी चालें चली जा सकती हैं।

पनडुब्बीरोधी लेसर ?

समुद्रगत परिचालनों में एक बड़ा दोष है जो आक्रमण करने वाले को भी बाधा देता है, बचाव करने वाले को भी, शिकारी को भी बाधा देता है, शिकार को भी। पनडुब्बियों का अधिकांश परिचालन अंधेरे में ही करना पड़ता है। उत्तर-ध्रुवीय महासागर या कैरिबियन समुद्र जैसी निर्मल जलराशियों की अपेक्षा उथली गहराइयों में, प्राकृतिक प्रदीप्ति का प्रयोग करने वाली जलगत टेलिवीजन व्यवस्था शायद १५० गज तक भी मार कर सके। समुद्र-वैज्ञानिकों ने रिपोर्ट दी है कि प्रकाश का (सिर्फ एकतरफा) प्रयोगात्मक प्रेषण भी प्रायः २,५०० फुट तक किया जा चुका है। रेडार तो यकीनी तौर पर तभी काम करता है जब कि पनडुब्बी जल के पृष्ठ पर हो।

अतः, संस्पर्श-नौचालन या "चाक्षुष" नौचालन के लिए, अर्थात् जलगत पदार्थों से बचने तथा शत्रु के यानों की तलाश के लिए पनडुब्बियों को सोनार (साउंड नेविगेशन एण्ड रेंजिंग के रोमन आद्यक्षरों का संग्रह=स्वनान्वेष) पर ही निर्भर करना पड़ेगा। सोनार, किसी हद तक रेडार की तरह ही कार्य करता है : उच्च आवृत्ति (अधिकांश सेटों में २० से ३०० किलोसाइकिल प्रतिसैकण्ड के बीच) की अश्रव्य ध्वनि का एक स्पन्द उत्सर्जित किया जाता है जो किसी जलगत पदार्थ या शत्रु की पनडुब्बी से टकरा कर उछलता है और लौट कर एक विशेष केथोड-किरण-नलिका में प्रतिध्वनि उत्पन्न कर देता है।

मगर सोनार भी कई गम्भीर सीमाबन्धनों का शिकार है। समुद्री केंकड़े, ह्वेल मछलियां तथा डाल्फिन जैसे कुछ समुद्री प्राणी, कोलाहल पैदा करते हैं जिसको सोनार के अभिग्राही (रिसीवर) इकट्ठा कर लेते हैं और मिथ्या संकेत पैदा कर देते हैं। सोनार के "ऐंटेना' (ट्रांसड्यूसर) जिन किरणपुंजों को प्रस्तुत करते हैं उनकी संकीर्णता के लिहाज से रेडार सेटों के किरणपुंजों से कोई तुलना नहीं हो सकती। अतः सोनार जल के नीचे की घटनाओं का उतना सुस्पष्ट चित्र प्रस्तुत नहीं कर सकता जितना कि रेडार, जल के ऊपर की घटनाओं का। फिर, सोनार

का किरणपुंज, समुद्रजल द्वारा विस्तारित या प्रकीर्ण कर दिया जाता है जिससे स्पष्टता और भी कम हो जाती है। प्लैंक्टन नाम की छोटी-छोटी मछलियों के तैरते हुए झुण्ड और गाद, प्रकीर्णन की समस्या को और घपले में डाल देते हैं। जल के नीचे ध्वनि की तरंगें सदा उस तरह सीधी नहीं चलतीं जैसे कि रेडार की, प्रायः, वायु में। समुद्र जल के खारेपन का अन्तर भी सोनार के किरणपुंज को मोड़ देता है और लक्ष्य वहां प्रतीत होने लगता है जहां वह दरअसल होता नहीं।

फिर, एक और बात भी है। अधिकांश पनडुब्बियों में शत्रु के सोनार संकेतों को ग्रहण करने की क्षमता वाले संसूचक लगे होते हैं। इस वास्ते, बहुत पेशतर इसके कि पनडुब्बी का सोनार उसके शिकार की स्थिति को प्रकट करे, कोई भी चोरी-चोरी शिकार करने वाली (अहेरी) पनडुब्बी, अपने सोनार के कारण, अपनी ही उपस्थिति को प्रकट कर देती है। और ऐसे संसूचक सिर्फ पनडुब्बियों पर ही होते हों, सो बात नहीं। अतिक्रमी पनडुब्बियों का पता लगाने के लिए खास तौर पर डिजाइन किए हुए जलफोनों (हाइड्रोफोनों) से लैस, सुनने की जलगत चौकियों की शृंखलाएं भी मौजूद हैं। हमारी ऐसी शृंखलाएं, एटलांटिक तथा पैसिफिक महासागरों की तरफ से हमारे समुद्रतटों की ओर आने वाले मार्गों की रक्षा कर रही हैं। एक शृंखला, एलास्का से परे के एल्यूशियन द्वीपसमूह में है और एक, ग्रीनलैण्ड के जलडमरूमध्य के पार। रूसियों ने भी ऐसी ही सुरक्षा-व्यवस्थाएं कर रखी होंगी।

ऐसी बारूदी सुरंगें भी बन चुकी हैं जो सोनार किरणपुंज के लगते ही विस्फोटित हो जाती हैं और ऐसे डिजाइन के टारपीडो भी जो शत्रु के सोनार का लक्ष्यवेध कर देते हैं।

स्पष्ट है कि हमें जल के भीतर काम देने के लिए, सोनार से प्राप्त आंखों से. अच्छी आंखें दरकार हैं। हम चाहते हैं कि इस क्षेत्र में भी लेसर का प्रवेश हो जाय।

अन्तर्महाद्वीपीय प्रक्षेपास्त्रों के अग्रभागों से बचाव के लिए उपयोग की सम्भावना

के सिलसिले में हम लेसर-रेडार की चर्चा कर चुके हैं। इसी प्रकार, प्रकाश के एक संसक्त तथा अतिसंधानित किरणपुंज (या प्रकाश के छोटे-छोटे अन्तरालों वाले स्पन्दों की श्रेणी) द्वारा, समुद्र के भीतर के लक्ष्य क्षेत्र की, एक समय में एक रेखा के हिसाब से, बार-बार बारीक जांच करवाई जा सकती है। उस क्षेत्र के पदार्थों से टकरा कर लौटने वाला प्रकाश, एक फोटोनलिका में संग्रहीत हो जायगा और इसके संकेत, प्रचलित टेलिवीजन चित्र नलिका की तरह ही, एक विशेष केथोड किरण-नलिका पर दीख जायेंगे।

यह सुई-सा तेज लेसर किरणपुंज एक ऐसा चित्र बनायेगा कि लक्ष्य क्षेत्र का प्रत्येक पदार्थ आकार, आकृति तथा अवस्थिति के लिहाज से यथार्थ रूप में दीखेगा। फिर एक ही झलक में यह भी दीख जायगा कि प्रत्येक पदार्थ कितने-कितने फासले पर है।

इस प्रकार के लेसर-रेडार पहले ही बन चुके हैं। जिस विशेष क्रिस्टल में से लेसर किरणपुंज गुजरता है उस पर लगे विद्युत् संकेतों की क्रिया के द्वारा लेसर किरणपुंज को तेजी के साथ लक्ष्यक्षेत्र में घुमाया जा सकता है। ऐसा क्रिस्टल पोटाशियम डाइहाइड्रोजन फास्फेट (K.D.P.) का भी बन सकता है, अमोनियम डाइहाइड्रोजन फास्फेट (A.D.P.) का भी। कितना विचित्र संयोग कि है ये दोनों ही पदार्थ, समय-समय पर प्रचलित सोनार-ट्रांसड्यूसरों में काम में आते रहे हैं। एक वैज्ञानिक, ऐसा विशेष मृत्तिका पदार्थ बनाने के लिए शोधकार्य कर रहा है जो सिरे के दर्पणों का स्थान भी ले सके तथा बारीक जांच का काम भी निष्पन्न कर सके।

जल के भीतर लेसर किरणपुंज के प्रेषण के सामने, रेडार किरणपुँज वाली कोई समस्या नहीं आती। सिर्फ एक मूका (भाफ निकलने का छिद्र) की जरूरत होती है। लेसर, पानी के भीतर भी (सीमित दूरी तक) काम देता है, वायुमण्डल में भी और बाह्य अन्तरिक्ष में भी।

प्रसंगवश कह दें कि संकेत को भेजने तथा प्रतिध्वनि को वापस प्राप्त करने के लिए रेडार को द्विपथ दृश्यता की आवश्यकता होती है लेकिन संचारणों में महत्त्व

एकपथ दृश्यता का ही होता है। जलगत लेसर-व्यवस्था का एक महत्त्वपूर्ण उपयोग होगा, एक पनडुब्बी से दूसरी पनडुब्बी तक का संचार जिसमें सुई-सा तेज लेसर किरणपुंज, गोपनीयता को बनाए रखेगा। आजकल एक पनडुब्बी से दूसरी पन-डुब्बी तक सन्देश, सोनार द्वारा भेजे जाते हैं; इसका किरणपुंज अतिविसरित हो जाता है और उसे सब लोग सुन सकते हैं।

लेकिन लेसर किरणपुंज, होता तो एक प्रकाशकिरणपुंज ही है। यह ठीक है कि यह अतिविशिष्ट प्रकाश किरणपुंज होता है: तीव्र, संसक्त तथा अतिसंधानित या समान्तर। लेकिन इससे उसके प्रकाशरूप होने में कोई फर्क नहीं पड़ता। और जैसा कि गहरे पानी में गोता लगाने वाले लोग जानते हैं, समुद्रजल तो सूर्य के तीव्र प्रकाश को भी तेजी के साथ अवशोषित कर लेता है।

फिर, समुद्रजल का बाह्य रूप, न्यूनाधिक, नीला-हरा होता है; इसका रंग औसतन ५,३०० एं के लगभग होता है।

माथावी, नीला-हरा लेसर

आजकल जितने दृश्यप्रकाश लेसर काम कर रहे हैं उनमें से अधिकांश गहरे लाल प्रदेश में काम करते हैं। अतः जहां तक रंग का संबंध है, जल के भीतर की अवस्थाएं बदतर नहीं हो सकतीं। व्यावहारिक दृष्टि से देखा जाय तो लेसर किरण-पुंज का वर्ण, समुद्र-जल के वर्ण का पूरक ही होता है। परिणामतः, समुद्र-जल अवशोषक फिल्टर का काम करता है और इस किरणपुंज की तीक्ष्णता को बुरी तरह घटा देता है।

आवश्यकता है नीले-हरे लेसर की। और, नौसेना की बीसों टुकड़ियां ऐसे ही किसी यन्त्र की खोज में मानो समुद्री खजाने की तलाशी ले रही हैं।

इस बीच, यह पता लगाने के लिए खोज जारी है कि अगर क्रियात्मक संभावनाओं वाला कोई नीला-हरा लेसर-रेडार मिल जाय तो उसकी क्षमताएं क्या होंगी। वाशिंगटन डी०सी० के ठीक उत्तर-पश्चिम में मेरीलैण्ड के कार्डरॉक स्थान में

स्थित डेविड टेलर मॉडल बेसिन में नौसेना ने कुछ परीक्षण किए हैं। यहां नौसेना का बड़ा भारी जलाशय है। किसी जहाज का वास्तविक निर्माण प्रारंभ करने से पूर्व इसमें उसके खोल के डिजाइन के पैमाना-मॉडल रूप की जांच की जाती है।

नौसेना वैज्ञानिकों ने ५ इंच व्यास के दो पनडुब्बी-परिदर्शी (पेरिस्कोप) लिए। एक, संकेतों को इस बेसिन की ओर युग्मित करने के लिए और दूसरा, संकेतों को युग्मित करके बाहर भेजने के लिए। उन्होंने एक ऐसे रेडार-प्रेषित्र से काम लिया जिस के भीतर लेसर लगा हुआ था। इस लेसर की ऊर्जा, एक जूल का सात सौवां भाग मात्र थी। यह, निर्गम के लिहाज से स्पन्द की शिखर शक्ति के २०० वाट के अनुरूप बैठती है। वैज्ञानिकों ने पाया कि इसकी अधिकतम परास १५० फुट के करीब है।

इसके बाद, नीले-हरे लेसर का भ्रम पैदा करने के लिए उन्होंने लालमणि शलाका-लेसर को शक्तिशाली श्वेतप्रकाश से बदल दिया और लगभग ४,९००, ५,३३०, तथा ५,६५० एं के इस असंसक्त प्रकाश के संचरण को मापने के लिए, फिल्टरों का उपयोग किया। इन आंकड़ों से वैज्ञानिकों ने तखमीना लगाया कि जो नीला-हरा (५,३०० एं) लेसर, पूर्वप्रचलित लालमणि लेसर का तुल्यमान होगा उसकी परास १,००० फुट होगी।

एक और दल, एक संकीर्ण किरणपुंज को प्राप्त करने के लिए २५०-वाट के पारद-आर्क लैम्प के आगे फिल्टर लगाता और लेंसों तथा परवलयिक परावर्त्तकों के तन्त्र का उपयोग करता रहा है। इसके सदस्य हरे रंग वाले टोंटी के जल से भरे आठ फुट लम्बे हौज में संकेतों को आगे-पीछे टकराते रहे हैं। अपने शोधकार्य से उन्होंने तखमीना लगाया है कि लेसर की जल के भीतर एकपथ परास ३,००० फुट है। उन्होंने जलगत प्रकाशिक संसूचन तंत्र के लिए एक नाम भी सुझाया है। यह भी आद्यक्षरसंग्रह ही है : वेडार (विजिबल इनर्जी डिटेक्शन एण्ड रेंजिग—दृश्य ऊर्जा का संसूचन तथा परासन)।

नीला-हरा लेसर प्राप्त करने के दो तरीके हैं। एक यह है कि किसी ऐसे पदार्थ

का पता लगाने का यत्न किया जाय जा ५,३०० एं पर लेसर-क्रिया करे। अकार्बनिक तथा कार्बनिक दोनों ही प्रकार के अनेक प्रतिदीप्तिशील पदार्थों पर अनुसंधान हो रहा है लेकिन अभी तक किसी सफलता की सूचना नहीं मिली है। दूसरा तरीका यह है कि निकट-अवरक्त सीमान्तर में काम करने वाले लेसर के निर्गम को लेकर उसे दुगना किया जाय और नीले-हरे प्रकाशिक सीमान्तर तक ले जाया जाय।

ऐसे एक प्रयत्न में नियोडाइमियम नाम की दुर्लभ मृदा से प्रलेपित काच के लेसर का उपयोग हुआ है। इसका मूल निर्गम १०,६०० एं का है तथा निकट अवरक्त प्रदेश में है। निओडाइमियम लेसर में एक परावर्त्तक स्थिर होता है और एक चक्रण करता है। चक्रण-परावर्त्तक, ऐसा गुण-अपहरणकारी प्रभाव पैदा करता है कि स्पन्दन की तीव्रता बढ़ती जाय।

यह अवरवत किरणपुंज पहले एक फिल्टर में से गुजरता है जिससे इसमें से दृश्य प्रकाश निकल जाता है। फिर यह एक फोकसन लैंस में से गुजरता है। इस के बाद यह के०डी०पी०(K.D.P.)या ए०डी०पी०(A.D.P.)के ऐसे अरैखिक क्रिस्टल में से गुजरता है जो इसकी आवृत्ति को दुगना (तरंगलम्बाई को आधा) कर देता है। परिणामस्वरूप ५,३०० एं का किरणपुंज प्राप्त होता है जिसे बाद में पुनः संधानित होने (किरणपुंज को समान्तर करने) के लिए एक और लेसर में से गुजरना पड़ता है और अगर कोई अवरक्त विकिरण बचकर निकल आया हो तो उसे अवशोषित करने के लिए एक और फिल्टर में से गुजरना पड़ता है।

इस तथाकथित हार्मोनिक या आवृत्ति-द्विगुणन-लेसर की क्षमता १ तथा ३ प्रतिशत के बीच होती है। उदाहरण के लिए ३००,००० वाट का निवेश होता है तो १०,००० वाट के लगभग निर्गम हो जाता है। फिर भी स्पन्द की शिखरशक्ति की पर्याप्त मात्रा बनी रहती है। इस द्विगुणकारी क्रिस्टल के किरणपुंज में लेसर वाली विशिष्टता—सुई-सी तीक्ष्णता—होती है। इस में एक विशेष गुण होता है: जिस काच में निओडाइमियम को विलीन किया जाता है उसकी किस्म के मुताबिक इसकी वास्तविक आवृत्ति में अन्तर लाया जा सकता है। इस प्रकार,

जलराशि के रंगों में अन्तर होने के कारण, सम्भव है, पनडुब्बी को उत्तर एटलांटिक महासागर के लिए जो लेसर शलाका वहन करनी पड़े वह पैसिफिक महासागर के लिए उपयुक्त लेसर शलाका से जरा भिन्न हो।

इस व्यवस्था का आविष्कार करने वालों का सुझाव है कि इसका उपयोग न सिर्फ लक्ष्य के परिशुद्ध रूपरेखण के लिए तथा एक पनडुब्बी से दूसरी पनडुब्बी तक के संचारणों के लिए किया जा सकता है अपितु टारपीडुओं तथा चालकरहित पनडुब्बियों, जलगत प्रक्षेपास्त्रों को मार्ग दिखाने के लिए भी किया जा सकता है और जिस सोनाररोधी पिक-अप व्यवस्था की हम पहले चर्चा कर आए हैं उसका घोड़ा दबाए बिना, बारूदी सुरंगों का पता लगाने के लिए भी किया जा सकता है।

लेसर वाले पार्श्वायुध ?

लेसर के और भी कई सैनिक उपयोग सुझाए गए हैं। इन में से जो क्लिष्टतर है उन में से एक है तथा कथित लेसर-पिचकारी-बन्दूक। यह एक प्राणिनाशक हथियार होगा जो सुवाह्य होगा और सैनिक इसे पार्श्वायुध की तरह लिए चला करेंगे। लालमणि लेसर को पंपित करने वाले प्रकाश को मुहय्या करने के लिए यह एक रासायनिक यौगिक से काम लिया करेगा। एक छोटा-सा यांत्रिक पम्प, रासायनिक अवयवों को लेसर के अग्रभाग में अन्तःक्षिप्त करेगा जहां वे संयुक्त होकर भड़क उठेंगे और लालमणिशलाका को प्रकाशतः पंपित करेंगे। इस निर्गम को एक लेंस, तीक्ष्णता के साथ फोकस कर देगा ताकि ज्वलन हो सके। स्पष्ट है कि ऐसी तरकीब को व्यावहारिक रूप देने से पहले अनेक तकनीकी बाधाओं को पार करना होगा। लेकिन हमें इतना मालूम है कि स्थलसेना ने न्ययार्क विश्वविद्यालय में एक ऐसी प्रायोजना चालू कर रखी है जिसमें लेसरों से छोटे-छोटे प्राणियों को मारने का काम लिया जाता है; फिर इन प्राणियों का शवच्छेदन किया जाता है और यह निर्धारित किया जाता है कि शरीरक्रियाविज्ञान के लिहाज से ठीक-ठीक क्या क्षति हुई है।

अवरक्त-संचारव्यवस्था

लेकिन इन्हीं दिनों लेसर के अनुप्रयोग अपने क्षेत्र को युद्धक्षेत्र तक फैलाने की तैयारी कर रहे हैं। एक प्रयोजन है, सुरक्षित अवरक्त-संचारव्यवस्था। एक अवरक्त लेसर, एक फोटो-नलिका-अभिग्राही में अदृश्य प्रकाश के एक संकीर्ण किरणपुंज को भेजेगा। इस किरणपुंज को अन्तरायित करके (रोककर) इसके द्वारा मोर्स कोड के गर्र-गट को प्रेषित किया जा सकता है या निशान तथा खाली स्थान के उन पंचखण्डी संयोजकों को प्रेषित किया जा सकता है जो टेलीटाइप राइटर-कोड के उपयोग के लिए दूरस्थ स्वचालित टाइपराइटरों को प्रचालित करते हैं। यह लेसरकिरणपुंज, वाक्-संचार व्यवस्थाओं का वहन भी कर सकता है। यह शत्रु के द्वारा अन्तःखण्डित नहीं हो सकेगा बशर्ते कि शत्रु को पता न लगे कि किरणपुंज कहां अवस्थित है और लगभग कौन-सी तरंग लम्बाई काम में लाई जा रही है।

लेसर-परासमापी

हमारी सेना ने तथा उत्तर अटलांटिक संधि संगठन ने युद्धक्षेत्र में उपयोग के लिए एक और लेसर-यन्त्र खरीदना शुरू कर रखा है। यह है, लेसर-परासमापी।

किसी मॉर्टर, हाउत्सर या फील्डगन से शत्रु-क्षेत्र के किसी विशिष्ट लक्ष्य की दूरी का पता लगाना कठिन और अक्सर खतरनाक काम होता है। लेकिन तोप की उपयुक्त उठान को तथा गोलों पर फ्यूजों (पलीतों) के विन्यास को निर्धारित करना आवश्यक होता है। अधिक बड़ी तोपों, ११-इंची परमाणुतोप या नौसेना की बड़े व्यास की राइफलों के मामले में परास या दूरी का ज्ञान होना ही चाहिए ताकि यह निर्धारित किया जा सके कि गोले के पीछे के ब्रीच में बारूद के कितने थैले रखे जायं।

इस परास का पता लगाने का एक तरीका यह है कि एक ऐसी आधाररेखा का सर्वेक्षण तथा आलेखन किया जाय जो शत्रु की लाइनों के समान्तर चलती हो और अपने घेरे में आपकी तोपों को भी ले ले या उनसे एक ज्ञात विस्थिति पर

हो। जब आधार रेखा के दो ज्ञात बिन्दुओं पर आधार रेखा तथा लक्ष्य की ओर आने वाली रेखा के बीच का कोण अभिनिश्चित कर लिया जाता है तब त्रिगुणन द्वारा परास का पता लग जाता है। ये पैमाइशें, एक प्रकार के कोणमापक पर आरोपित प्रकाशिक-दूरदर्शी की सहायता से की जाती हैं। परन्तु आजकल के युद्धों में लाइनें स्थिर नहीं होतीं। फिर, शत्रु के अच्छे निशानेबाजों के प्रधान लक्ष्य भी तोपखाने के सर्वेक्षक ही होते हैं।

फिर, अगर आप एक आधार रेखा का सर्वेक्षण नहीं कर सकते तो आप को एक आधार रेखा साथ ले चलनी होगी। इसीलिए प्रकाशिक परासमापी, ऐसे दूरदर्शियों की जोड़ी काम में लाता है जिनमें कुछेक फुट का फासला रहता है। होने को तो युद्धक्षेत्रों के लिए रेडार-सेट भी मौजूद हैं लेकिन कुछ भारी भरकम हैं और युद्धक्षेत्र की अवस्थाओं में उन्हें सम्हालना मुश्किल होता है।

जो भी हो, ऐसा प्राय: कभी नहीं होता कि पहली ही बार में परास का पता लग जाय। इस वास्ते लक्ष्य को "बढ़ती" तथा "कमती" पैमाइशों के साथ एक कोष्ठक में रखना पड़ता है और हवाई जहाज में या सीमाग्र रेखा पर एक अग्रवर्ती प्रेक्षक को रखना पड़ता है जो बमबारी के प्रभावों पर निगरानी रखता है और परिणामों की सूचना रेडियो द्वारा वापस भेजता रहता है। इस बीच, आप खुद ही अपनी तोपों की स्थिति का ज्ञान शत्रु को दे रहे होते हैं और स्वयं को दुश्मन की बैटरीरोधी मार का शिकार बना देते हैं। आजकल जब कि मॉर्टर संसूचक रेडार, तोप के गोले के निकलने के स्थान तक की लीक पकड़ लेते हैं, बैटरीरोधी गोलाबारी कामयाब रहती है और अग्रवर्ती प्रेक्षक का स्थान भी कोई रंगशाला नहीं होता। इस व्यवस्था में हमारे तोपखाने के न जाने कितने होनहार युवक अफसर बेकार मारे जाते हैं।

लेसर-परासमापी को राइफल के स्कन्ध पर रख दिया जाता है और किसी तिपाई या अन्य किसी चौकी के बगैर भी निशाने पर सधाया जा सकता है। कुल मिला कर इसका वजन २ पौंड होता है। राइफल जैसा भाग तथा पिट्ठू

भी इसमें शामिल है। राइफलनुमा भाग में लेसर-प्रेषित्र, अर्थात् लालमणिशलाका तथा फ्लैश लैम्प होता है, दो फुट लम्बा प्रकाशिक दूरदर्शी होता है जिससे किरणपुंज को फोकस किया जाता है, निशाना लेने वाला प्रकाशिक दूरदर्शी होता है और अभिग्राही होता है जो कि एक प्रकाशवैद्युत सेल होता है।

पिट्ठू में बैटरियां होती हैं, इलेक्ट्रानी स्पन्द-परिपथ होते हैं, अभिग्राही प्रवर्धक होते हैं तथा वाचकतन्त्र होता है। यह अंकवाचकतन्त्र, परास को सीधे संख्याओं में ही प्रकट कर देता है। ये संख्याएं एक ऐसी छोटी-सी खिड़की पर

राइफल की शकल का लेसर-परासमापी, अपनी लम्बी नली से प्रकाशकिरण-पुंज को छोड़ता है। लघुतर नलिका, परावर्तित प्रकाश के स्पन्दों को ग्रहण करती है। दूरबीनी दर्शा, निशाना साधने के लिए है।

(सौजन्य : ह्यूफीज)।
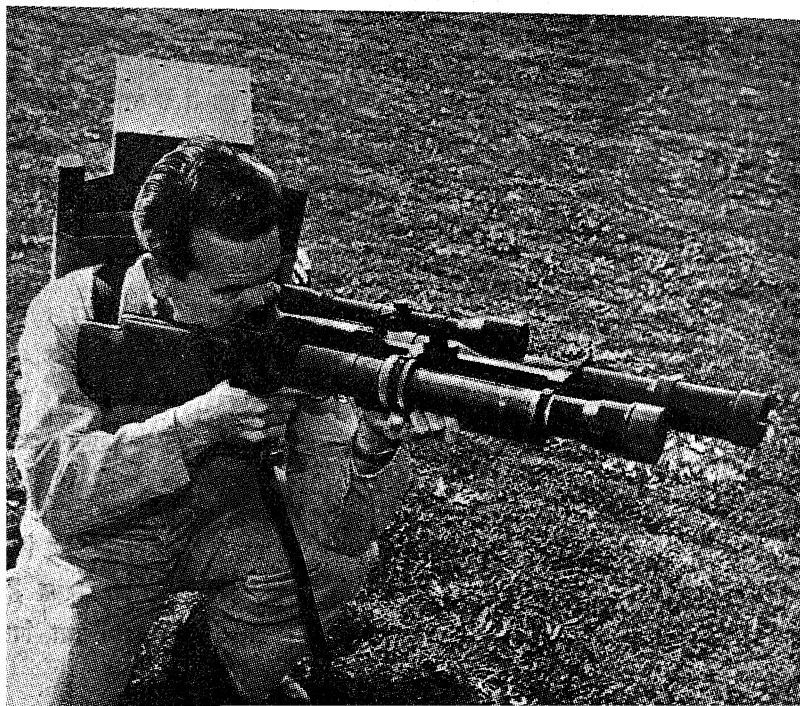
दीख जाती हैं जैसी कि डेस्क-गणित्र पर या मोटर गाड़ी के चक्करमापी (ओडोमीटर) पर होती है।

एक लेसर-परासमापी ने सात मील परे की इमारतों से पन्द्रह फुट तक की परास निर्धारित कर दिखाई है। एक हजार फुट की ऊंचाई पर उड़ते हेलीकाप्टर से इसका इस्तेमाल किया गया तो इसने ११,००० गज तक की परास निर्धारित कर दी। अवस्थाएं आदर्श हों तथा दृष्टिपथ ऐसा हो कि पृथ्वी की वक्रता बाधा न दे तो इसका अधिकतम परासमापन ६० मील के लगभग होगा।

लेसर-परासमापी, युद्धक्षेत्र में ही काम आता हो, सो बात नहीं। इसका उपयोग, समुद्र में भी हो सकता है या इसे हवाई जहाज के अग्रभाग पर भी रोपित किया जा सकता है ताकि वलित-पंख राकेटों के उपयोग के लिए आवश्यक जानकारी मुहय्या कर सके। जलराशियों या गह्वरों के सर्वेक्षण तथा मानचित्रण के क्षेत्र में काम आने वाली व्यापारोपयोगी क्षमता भी इसमें है। भूमि पर इसका परासमापन, बेशक, दृष्टिरेखा तथा मौसम की दशाओं के कारण सीमित रहता है।

बाह्य अन्तरिक्ष में शांतिपूर्ण उपयोग

जैसा कि हम देख आए हैं, लेसर का यथार्थ माध्यम, बाह्य अन्तरिक्ष ही है। यहां इसकी शक्ति को अवशोषित करने वाले बादल या वर्षा होती ही नहीं और यहां, किसी अभियान की सफलता और असफलता का दारोमदार, परासमापी के तौर पर इस यंत्र की परिशुद्धता पर होगा। हमारी स्पेस एजेंसी (अन्तरिक्ष अभिकरण) ने भी इसकी संभाव्यता पहचानने में देर नहीं लगाई।

लेसर-रेडार

लेसर के प्रथम परीक्षणों में से एक, विर्जीनिया के वैलोप्स आइलैण्ड में किया गया था। यह एक लम्बा, निम्नस्थ, चीड़ के पेड़ों वाला बंजर और रेतीला गढ़ा है जहां के ओल्ड डोमिनियन से एटलांटिक महासागर की मीलों लम्बी फेनिल तरंगों की झांकी ली जा सकती है।

स्पेस एजेंसी वाले प्रतिष्ठापन में वैज्ञानिकों ने, प्रकाश को १,५००किलोमीटर की दूरी पर कक्षा में घूमते उपग्रह से टकरा कर उछालने के लिए, स्पन्दित लालमणि-लेसर से काम लिया था। इस उपग्रह का नाम था, नासा एस-६६ ध्रुवीय आयन मण्डल-उपग्रह। इसको हमारी प्रशान्तसागर स्थित प्रक्षेपास्त्र शृंखला से ऐसी कक्षा में स्थापित किया गया था जो दोनों ध्रुवों पर से गुजरती थी ताकि पृथ्वी के उपरितन वायुमण्डल की अवस्थाओं को मापा जा सके। यह उपग्रह एक ऐसे फलक से लैस था जो ३६० आध-इंची परावर्ती घनाकृतियों की मोजेक (पच्चीकारी) का बना हुआ था। इनको ऐसे विशेष प्रकार से डिजाइन किया गया था कि लालमणि लेसर के प्रकाश का यथासंभव उत्तर परावर्तन प्राप्त हो सके । लेसर परासमापी की इस व्यवस्था द्वारा उपग्रह की स्थिति से ५० फुट के अन्दर-अन्दर उसका स्थान निर्धारण कर लेना सम्भव हो गया था।

इस प्रकार के परीक्षणों से उपग्रह तथा अन्तरिक्षयान सम्बन्धी संचार व्यवस्था तथा चालन के लिए लेसर-उपकरणों की प्रभावोत्पादक संख्या प्राप्त हो रही है।

अन्तरिक्ष-संचार व्यवस्था

अमरीका अगली बार जिस मानव-चालित अन्तरिक्षयान को छोड़ेगा वह जैमिनी प्रायोजना का भाग होगा और एक ही अन्तरिक्षपुटक में दो अन्तरिक्ष यात्रियों का वहन करेगा। जेमिनी प्रायोजना का उद्देश्य है, उपग्रहों को—पहले कक्षा में घूमते राकेट-संवर्धक पिंडों के साथ तथा बाद में अन्य मानवचालित अन्तरिक्षयानों के साथ—मिलाने तथा ठहराने (गोदी में लाने) की प्रविधियों को निष्पन्न करना।

जैमिनी अन्तरिक्षयानों में से एक, एक छोटे से हस्तवाहित गैलियम-आर्सेनाइड लेसर-प्रेषित्र से पृथ्वी पर के एक ऐसे स्थान पर रखे अभिग्राही पर निशाना साधेगा जो प्रदीप्त रखा जायगा। फिर वह इस लेसर किरणपुंज द्वारा एक ३० सैकण्ड का वाचिक सन्देश भेजेगा ताकि अन्तरिक्ष से भूमि तक की संचार-व्यवस्था के सम्बन्ध में इसकी क्षमता जांची जा सके।

डाप्लर लेसर रेडार

दो उपग्रह मिलें, इस के लिए आवश्यक होगा कि उस अन्तिम रफ्तार का परिशुद्ध ज्ञान हो जिससे वे एक दूसरे के पास आ रहे हैं। इस समय तक इसको अभि-निश्चित करने का उत्तम साधन डाप्लर रेडार है। इस रेडार में से छोड़े गए संतत सूक्ष्मकिरणपुंज को गतिशील लक्ष्य से टकराकर उछाला जाता है। पुलिस विभाग, मोटर चालकों की चाल को मापने के लिए डाप्लर रेडार सेटों का व्यापक उपयोग करते हैं। प्रेषित तथा परावर्तित संकेतों की आवृत्ति में अन्तर होता है जो इस बात से निर्धारित होता है कि प्रेषित्र की तुलना में लक्ष्य कितना तेज चल रहा है।

डाप्लर चालमापियों में, रेडार किरणपुंज की गति, उस पास आते हुए यान की चाल द्वारा त्वरित (तेज) कर दी जाती है जिससे टकरा कर यह परावर्तित होता है। चूंकि तरंगलम्बाई स्थिर रहती है इसलिए यान से टकरा कर उछलने वाली प्रतिध्वनि, रेडार सेट की ओर, रेडार सेट से आने वाले संकेत के मुकाबले उच्चतर आवृत्ति पर लौटती है। इन दो आवृत्तियों के बीच का अन्तर, विस्पन्दी स्वर कहलाता है। यह पास आने वाले यान की चाल का समानुपाती होता है।

प्ररूपी सूक्ष्मतरंग रेडार के मुकाबले, डाप्लर लेसर रेडार, अन्तिम चाल को दस हजार गुणा अधिक परिशुद्धता के साथ निर्धारित कर सकेगा। यह उपग्रह की अन्तिम चाल को तीन मील प्रति सैकण्ड से लेकर एक हजार इंच प्रति सैकण्ड तक की अन्तिम चाल को नाप सकेगा।

डाप्लर लेसर में, हीलियम निऑन वाले संतत-तरंग लेसर (११,५३० एं) से काम लिया जायगा। इसका निर्गम सिर्फ एक वाट का होगा लेकिन यह अन्तरिक्ष में लगभग १,००० मील तक की दूरी को माप सकेगा। फिर, इसकी दस-वाट वाली इकाई का वजन सिर्फ १५ पौंड होगा।

रेडार तुंगतामापी

जैमिनी प्रायोजना के बाद एपोलो प्रायोजना का नम्बर है। इसमें एक

अन्तरिक्षपुटक होगा जिसमें तीन अन्तरिक्षयात्री होंगे और इसे चन्द्रमा की कक्षा में स्थापित किया जायगा। इनमें से एक अन्तरिक्षयात्री चन्द्रमा की परिक्रमा करने वाले मूल अन्तरिक्षयान में रहेगा। शेष दो, "खटमल" या एल०ई०एम० (ल्यूनर एक्सकर्शन माड्यूल—चन्द्र अभियान माड्यूल) पर सवार हो जायेंगे जो मुख्य एपोलो पुटक से छूटेगा और चन्द्रमा के पृष्ठ पर उतरेगा। योजना यह है कि अन्तरिक्षयात्रियों की यह जोड़ी यहां एक लम्बा सप्ताहांत बिताएगी।

अब इस बात की सम्भावना हो गई है कि कम से कम, बाद के चन्द्र-खटमलों में से कुछेक, लेसर-तुंगतामापियों से लैस होंगे ताकि जब एल० ई० एम०, चन्द्रमा के पृष्ठ के पास पहुंच रहा हो तब तुंगता तथा अन्तिम चाल की परिशुद्ध पैमाइश की जा सके।

चूंकि यह खटमल चन्द्रमा के पृष्ठ पर पीठ के भार उतरेगा अतः तुंगतामापी को यान की रेचक नली में से प्रेक्षण करना पड़ेगा। और, राकेट का रेचन वस्तुतः प्लैज्मा या इलेक्ट्रानी तरीके से चालन करने वाली आयनीकृत गैस का पिच्छक होता है। ऐसा प्लैज्मा, अनेक रेडियो आवृत्तियों तथा सूक्ष्मतरंग आवृत्तियों के लिए अप्रवेश्य होता है लेकिन लेसर किरणपुंजों के लिए नहीं।

पृथ्वी के वायुमण्डल में पुनः प्रवेश करते अन्तरिक्ष-यान के साथ संचार संपर्क स्थापित करने के लिए भी प्लैज्मा-आच्छद के वेधन की क्षमता का महत्त्व है। जब किसी अन्तरिक्षपुटक की टक्कर वायुमण्डल से होती है तब वायु का घर्षण, यान के भाग को गर्म करके तापदीप्ति की अवस्था तक पहुंचा देता है। साथ ही, आसपास की वायु को आयनीकृत कर देता है जिससे वह वैद्युत तरीके से चालन करने वाली हो जाती है और, परिणामतः वह प्लैज्मा-आच्छद प्रकट हो जाता है जो सामान्य रेडियो संचार व्यवस्था को भंग कर देता है और जिसके कारण मर्करी-प्रायोजना के मानवचालित अन्तरिक्षयानों में से कुछ के अन्तिम क्षणों में सारा संसार कई मिनटों तक आशंकित हो जाता रहा है।

नीरवता के इस आच्छद को वेधने की लेसर की क्षमता के कारण, अन्तरिक्ष-

यानों तथा उपग्रहों सम्बन्धी संचार-व्यवस्था के क्षेत्रों में लेसर के प्रति भारी दिल-चस्पी पैदा हो गई है।

लेसर-घूर्णाक्षस्थापी (जाइरोस्कोप)

अब रह जाता है अन्तरिक्षयान का मध्यमार्ग-संचालन। प्रक्षेपास्त्रों की सब उड़ानें तीन प्रावस्थाओं में बंटी होती हैं: वर्धक, मध्यमार्गी तथा अन्तिम। वर्धन की प्रावस्था में उनको निशाने पर साधना और उनकी यन्त्रचालित उड़ान का मार्गदर्शन, भूमि से किया जाता है। अन्तिम प्रावस्था में वे तुंगतामापियों से काम ले सकते हैं जिनका वर्णन हम अभी कर चुके हैं। इनके बीच की प्रावस्था में वे, तारकीय या जड़त्वीय मार्गदर्शन पर या दोनों के संयोजन पर निर्भर करते हैं।

जड़त्वीय मार्गदर्शन में, यान की स्थिति का निर्धारण करने के लिए इस के संतत विस्थापन को, अन्तरिक्ष के एक स्थिर बिन्दु की तुलना में मापा जाता है। अन्तरिक्ष में इस स्थिर बिन्दु के निर्धारण के लिए एक जड़त्वीय मंच या तथाकथित "स्थायी मंच" से काम लिया जाता है। जड़त्वीय मंच, यान के जड़त्वीय मार्ग-दर्शन तन्त्र का केन्द्र होता है। तीन घूर्णाक्षस्थापियों की क्रिया से इसको अन्तरिक्ष में स्थिर किया जाता है।

जड़त्वीय मार्गदर्शन में इन घूर्णाक्षस्थापियों से कैसे काम लिया जाता है। इसको एक खिलौना-घूर्णाक्षस्थापी निर्दशित कर देता है। ऐसे खिलौने में, एक अपेक्षया भारी पहिया, एक कीलक पर चक्रण कर रहा होता है। जब तक यह तेजी से चक्रण करता रहता है, इसमें सीधा खड़ा रहने की प्रबल प्रवृत्ति बनी रहती है। अगर आप इसे धक्का दें तब भी यह सर्पिल से तरीके से घूमघाम कर फिर अपनी खड़ी स्थिति में लौट आता है।

अगर आप तीन घूर्णाक्षस्थापियों को ऐसे अक्षों पर चक्रित करें जो एक दूसरे पर लम्ब बनाते हों तो इस तीन-घूर्णाक्षस्थापी-तंत्र पर पड़ने वाले किसी भी

से एक या अनेक घूर्णाक्षस्थापियों में विस्थिति की प्रवृत्ति

ऐसा ही तीन-घूर्णाक्षस्थापी-यंत्र होता है जो इस प्रकार
र्णाक्षस्थापियों द्वारा लगाए गए प्रत्यवस्थान-बल से एक
। इस संकेत को प्रतिपुष्ट किया जाता है और इस मंच
र बिन्दु के सापेक्ष, स्थिर रखने के लिए इसका उपयोग

ीय मार्गदर्शन तन्त्र में तीन संवेदग्राही तन्त्र भी होते हैं।
ये एक दूसरे के साथ समकोण पर स्थित होते हैं। प्रत्येक
दिशा में होने वाले, यान के किसी भी त्वरण को जान
संकेत दे देता है। जब इस संकेत को, समाकलक कहलाने
ों में से उत्तरोत्तर गुजरा जाता है तब प्राप्त होने वाला
कि यान उस दिशा में कितनी दूर जा चुका है। तीनों
से, जड़त्वीय मंच के साथ एक स्थिति निर्देशक के तौर पर
रिक्ष में यान की हर वक्त की स्थिति को निर्धारित करते

गैस
लेसर

र्महाद्वीपीय प्रक्षेपास्त्र, छोटे प्रक्षेपास्त्र, अन्तरिक्षखोजी
रस पनडुब्बियां, यहां तक कि मानवचालित वायुयान भी
का प्रयोग करते हैं।

ा कि घूर्णाक्षस्थापी अपना कार्य कर सकें इसके लिए
से चक्रण करते रहें। और यही काम मुश्किल है। अच्छे
स्थापी भी, घर्षण के मारे कुछ देर बाद मन्द पड़ जाते
स्थायी हो जाता है। फिर, इस तन्त्र को, कभी-कभी
प्रकार सही करना पड़ता है जैसे पोलेरिस-वाहक

द३
द१
सेष
अन्तरि
सकता

लेकिन इंजिनीयर लोग शायद ऐसे लेसर-घूर्णाक्षस्थापी की कल्पना कर चुके हैं जिसे कभी सही नहीं करना पड़ता। यह घूर्णाक्षस्थापी, बिल्कुल चक्रण नहीं करता। इसके बदले एक लेसर किरणपुंज घूर्णन करता है। इसमें एक हीलियम-निआन-गैस-किरणपुंज का उपयोग होता है। आपको याद होगा कि यह लेसर अपने दोनों सिरों से, संसक्त अवरक्त प्रकाश के किरणपुंज को उत्सर्जित करता है। यह लेसर एक वर्गमीटर के चौखटे की एक भुजा के बीचों बीच लगा होता है। चौखटे के प्रत्येक कोने पर ४५-अंश-दर्पण लगे होते हैं जो लेसर के एक सिरे से आने वाले किरणपुँज को दक्षिणावर्त घूर्णित करते हैं और दूसरे सिरे से आने वाले किरणपुंज को वामावर्त्त। अब अगर इस किरणपुंज घूर्णाक्षस्थापी पर कोई बल नहीं पड़ता तो दोनों किरणपुंजों की आवृत्तियां बराबर रहती हैं और जब किरणपुंजों को प्रकाशसंयोजक में से गुजार कर प्रकाश-संसूचकों तक पहुंचाया जाता है तो विस्पन्दों या आवृत्तियों में कोई अन्तर नहीं निकलता।

लेकिन अगर इस तन्त्र को घूर्णित किया जाय तो एक किरणपुंज की आवृत्तियां बढ़ जाती हैं और दूसरे की कम हो जाती हैं। हालांकि प्रकाश का वेग स्थिर होता है फिर भी घूर्णन के कारण पथ की लम्बाइयां बदल जाती हैं। यांत्रिक गति के कारण आवृत्ति में होने वाला यह परिवर्तन वैसा ही है जैसा कि पुलिस विभाग के चाल-मापकों में काम आने वाला रेडार डाप्लर प्रभाव होता है। विस्पन्दी स्वर, उस दर का अनुरूपी होता है जिस पर लेसर-घूर्णाक्षमापी का घूर्णन होता है।

यहां वस्तुतः हम इस उपकरण के घूमने के कोण को नहीं माप रहे अपितु इस के घूमने के दर को या उसके कोणीय वेग को माप रहे हैं। कोणीय वेग की पैमाइश के आधार पर घूर्णन के यथार्थकोण को जानना हो तो केल्कुलस की समाकलन संक्रिया को निष्पादित करना होगा। इस संक्रिया को निष्पादित करने का सुगम तरीका यह है कि कोणीय वेग के अनुरूपी विद्युत् संकेत को समाकलक कहलाने वाले इलेक्ट्रानी परिपथ में से गुजारा जाय। इस परिपथ का निर्गम उस सम्पूर्णकोण का अनुरूपी होता है जिसमें से यह घूर्णाक्षस्थापी—और अतएव वह यान जिस पर यह रोपित है—चूर्णित किया गया है।
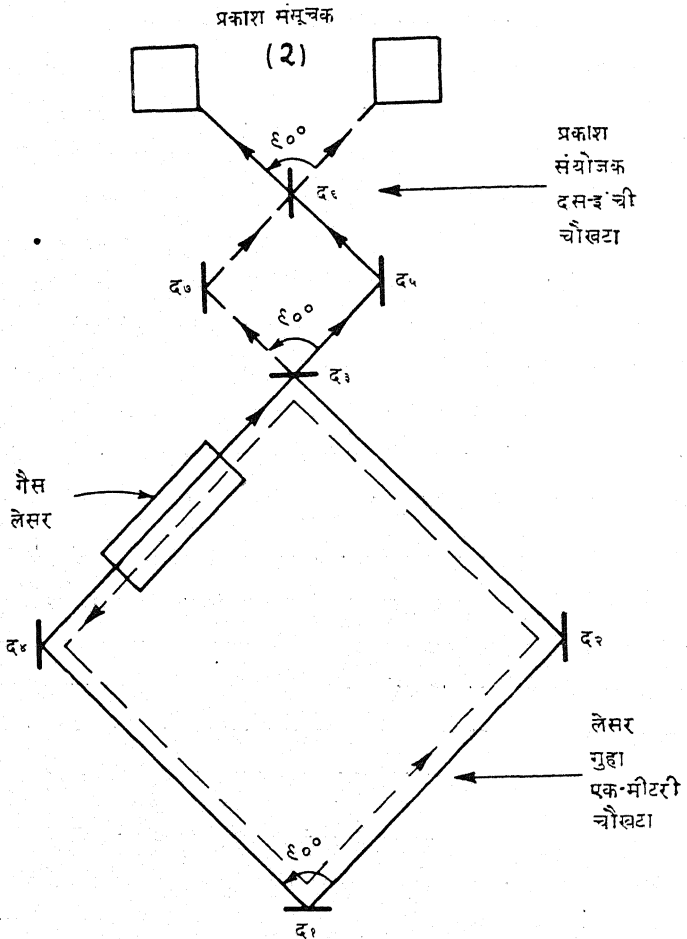
द३ आंशिक रूप से पारदर्शी दर्पण है
द६ पारदर्शी दर्पण है
शेष सब दर्पण शतप्रतिशत परावर्ती हैं—

अन्तरिक्षयान के मध्यमार्ग-पथप्रदर्शन के लिए लेसर-घूर्णाक्षस्थापी का उपयोग हो सकता है।

(सौजन्य : इलेक्ट्रानिक्स)

इस प्रकार यह लेसर-घूर्णाक्षस्थापी, उस विद्युत् यांत्रिकी-उपकरण का अनुरूपी होता है जिसे दर-(या वेग)-घूर्णाक्षस्थापी कहते हैं। एक वलय-लेसर-घूर्णाक्ष-स्थापी ने दो अंश प्रतिमिनट के घूर्णन के वियोजन को निष्पन्न कर लिया है।

लेसर : उद्योगों में

कहां अन्तरिक्ष में यानसंचालन और कहां मशीनें बनाने वाला कारखाना? लेकिन लेसर, औद्योगिक कार्य भी करता है। धातुओं को वेल्ड करने तथा धातुओं और अन्य पदार्थों को काटने तथा मशीन करने में भी लेसर उपयोगी सिद्ध हुए हैं।

यह मत समझो कि कोई व्यक्ति बरमा-मशीन, इंजनचालित खराद या पिसाई की मशीन की जगह लेसर लगाने लगा है। वह तो ऐसा ही होगा जैसे कोई आप के घर में रंग-रोगन करने के लिए कलाकार की रंग मिलाने की पटिया को बरतने लगे या ऐतवार को भूने मांस के टुकड़े, नम्बर १० के डाक्टरी नश्तर से करने लगे। इसी तरह कोई भी व्यक्ति धातुओं को काटने के लिए आक्सीएसिटिलीन-ज्वालाओं का स्थान या धातुओं को जोड़ने के लिए विद्युत्-वेल्डिंग सेटों का स्थान, लेसर को दे देने की बात नहीं सोच रहा।

सूक्ष्म वेल्डिंग तथा मशीन करना

लेकिन आधुनिक शिल्प विज्ञान—विशेषतः इलेक्ट्रानिकी तथा वायुअन्तरिक्ष-उद्योगों—में अनेक कार्य, परिशुद्धता से करने होते हैं। और लेसर, सचमुच, एक परिशुद्ध औजार है।

पिन की मूठ के आकार के ट्रांसिस्टर तो पहले ही बन चुके हैं और उनमें से प्रत्येक को तीन ऐसे वेल्डित जोड़ों की जरूरत होती है जो परिशुद्धतया अवस्थित हों। एक परीक्षण में, लेसर ने एक-मिल (१/१००० इंच) व्यास वाली तार को ट्रांसिस्टर के एक खण्ड में एक सैकण्ड के दस लाखवें भाग में वेल्ड कर दिया था। यह वेल्डिंग, प्रचलित तापसंपीडन-वैल्डरों के कार्य की अपेक्षा तीव्रतर भी रहा, अधिक भरोसे का भी।

सूक्ष्म इलेक्ट्रानिकी के क्षेत्र में, अनेक ट्रांसिस्टरों तथा अन्य पुर्जों के तुल्यांक
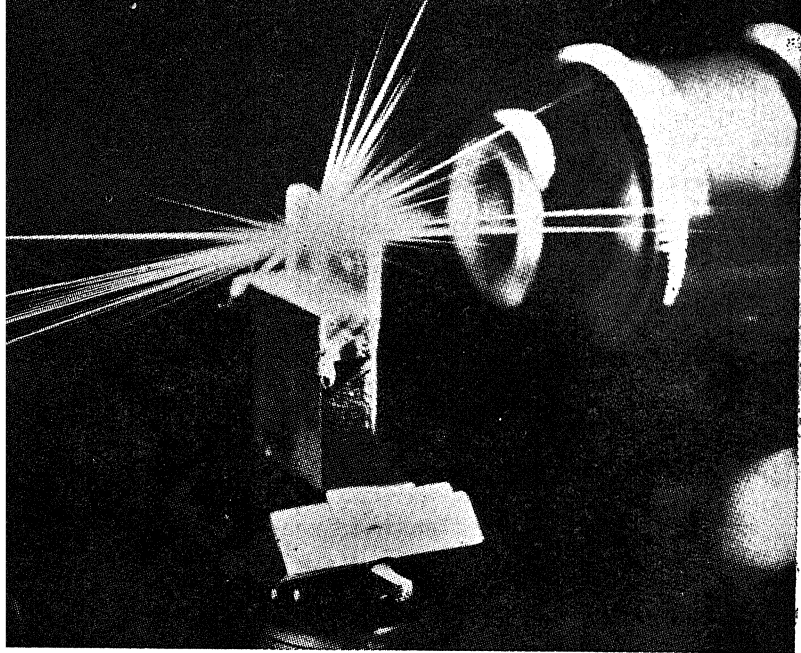
लेसर ने नीलम के १/१६ इंच मोटे क्रिस्टल का एक मिलिसैकण्ड (१/१००० से०) में वेधन कर दिया। पृष्ठ-तापमान, २,८०० डिग्री सेंटीग्रेड है।

(सौजन्य : इलेक्ट्रानिक्स)

से युक्त सम्पूर्ण इलेक्ट्रानी परिपथों को सिलिकोन के इतने छोटे खण्डों पर विसरित तथा निक्षेपित किया जा रहा है कि एक बड़ी सुई के नक्के में से होकर निकल जायं। इन सूक्ष्म परिपथों में से कुछेक में दर्जन भर वैल्ड (टांके) लगाने पड़ते हैं और दूसरों को जटिल तरीके से मशीन भी करना पड़ता है। ये हैं लेसर के अधिक सम्भावित कार्य।

लेसर ने, ताम्बा-कांस्टेंटेन थर्मोकपुल बनाने के लिए ऐसी दो तारों को वैल्ड कर दिखाया है जिनमें से प्रत्येक का व्यास ०·००४ इंच था——इस बात की भी आवश्यकता नहीं पड़ी कि पहले विद्युत्‌रोधी को उतार कर तारों को नंगा तो कर लिया जाय।

एक और परीक्षण में एक ७$\frac{5}{16}$ इंची लालमणि शलाका-लेसर ने, उच्च-

चालकता वाले, आक्सिजन-रहित ताम्बे के दो ऐसे खण्डों को वेल्ड कर दिया था जिन में से प्रत्येक ०·००५ इंच तथा ०·०६० इंच लम्बा था। और, वेल्डिंग क्रिया के दौरान ताम्बा, कांच की दो पट्टियों के बीच फंसा रहा था।

लेसरों ने धातुओं की पुरानी और नई, ३२ किस्मों को पिघला कर या वाष्पित करके दिखा दिया है। इनमें रांगा (टिन), कोलम्बियम, मोलिब्डीनम, जिर्कोनियम भी हैं तथा दूसरी भी हैं जो वायु-अन्तरिक्ष उद्योगों के लिए महत्त्व की हैं। इनके गलनांकों का सीमान्तर २०० से ३,४१० डिग्री सेंटीग्रेड तथा क्वथनांकों का सीमान्तर १,००० से ६,००० डिग्री सेंटीग्रेड है।

लेसर, अन्तरिक्षयुग में काम आ रहे और बरतने में मुश्किल मिश्रधातुओं को ही गला, काट या टांक सकते हों, सो बात नहीं। वे चीनी मिट्टी जैसे ऐसे अधात्विक पदार्थों को भी काट सकते हैं जो इतने भंगुर होते हैं कि प्रचलित साधनों से काटे नहीं जा सकते। और, विद्युत्रोधी पदार्थों पर, संचार-उपग्रहों के सौर सेलों को वॉन एलन पट्टियों के विकिरण से बचाने वाले नीलम क्रिस्टलों पर, यहां तक कि हीरों पर भी इन से काम करवाया जा चुका है।

निरीक्षण तथा फोटोग्राफी

सामान्य श्वेतप्रकाश में वर्ण-विपथन का दोष होता है जिसके कारण लेंस या प्रिज्म में से गुजरते समय कुछेक वर्ण-चटक दूसरों की अपेक्षा अधिक मुड़ जाते हैं। अतः लेसर किरणपुंज की एकवर्णिता, इसको अन्य औद्योगिक उपयोगों के लिए भी विलक्षण उपयुक्तता प्रदान कर देती है। यांत्रिक पुर्जों के परिशुद्ध निरीक्षण के लिए यह व्यापक सम्भावनाओं को प्रस्तुत करता है। प्रकाशिक तथा एक्सरे के स्पेक्ट्रमों के विश्लेषण के लिए, बेहद तंग और समान्तर खिंची लकीरों के विवर्त्तन ग्रेटिंग बनाने में इसका उपयोग किया जा रहा है।

सूक्ष्मपरिपथों के विसरण छादक बनाने के लिए भी लेसर उपयोगी होते हैं। इन छादकों का निर्माण, अतिपरिशुद्धता के साथ होता है क्योंकि इनसे सिलिकन डायोक्साइड के वे ढांचे बनते हैं जिनके गिर्द वे अपद्रव्य चलते हैं जिनको सिलिका

खण्ड में विसारित करके ट्रांसिस्टरों, डायोडों तथा अन्य पुर्जों का निर्माण किया जाता है।

तीव्र चाल की औद्योगिक फोटोग्राफी में भी लेसरों का उपयोग हो सकता है—विशेषतः श्लीएरिंग या क्षुर-धार फोटोग्राफी में जो कि पराध्वनिक वायु-वाहिकाओं में प्रधाती तरंग की आकृतियों के प्रत्यक्षीकरण में काम आती है।

लेसर-परिकलन यन्त्र

जिस रोध को इंजिनीयर लोग कभी अलंघनीय समझते रहे हैं उसे पार करने में लेसर, स्वचालित अंक-परिकलन यन्त्रों की सहायता कर सकते हैं। यह रोध उस तेजी (क्षिप्रता) का है जिस तेजी से विद्युत् धारा का निर्माण करने वाले इलेक्ट्रान, तार पर चल सकते हैं।

पहले के इलेक्ट्रानी परिकलन यन्त्र, जोड़ने, तुलना करने, सूचना के खण्डों को स्थानांतरित करने की अपनी मूल संक्रियाओं को निष्पन्न करने में सैकण्डों के कई हजारवें हिस्से खर्च करते हैं। वे मिलिसैकण्ड-परिसर में काम करते हैं।

आधुनिक परिकलन यन्त्र, सबमाइक्रोसैकण्ड (उपसूक्ष्म सैकण्ड) परिसर में काम करते हैं। ये अपनी मूल संक्रियाओं को एक सैकण्ड के एक लाखवें हिस्से से भी कम में कर डालते हैं। संक्रिया की तेजी की इस प्रगति ने ऐसे प्रश्नों को हल करना सम्भव कर दिया है जिनको पहले के परिकलन यन्त्रों पर हल करना सम्भव नहीं था।

किसी प्रश्न को हल करने में आप जितना काम करते हैं, परिकलन यन्त्र उससे कहीं अधिक करता है। उदाहरण के लिए, किसी संख्या का वर्गमूल निकालना हो तो परिकलन यन्त्र, एक दी हुई श्रेणी की सब संख्याओं के वर्ग तब तक निकालता जाता है जब तक इससे ऐसी संख्या नहीं मिल जाती जिसका वर्ग उस संख्या से मेल खाता हो जिसका वर्गमूल निकालना है।

सच पूछो तो परिकलन यन्त्र को सिर्फ जोड़ ही करना होता है—घटाना तो

जोड़ का प्रतिलोम मात्र या "नवपूरक" योग मात्र रहता है। गुणा, बारंबार जोड़ होता है और भाग, बारंबार घटाना।

इस प्रकार गणित शास्त्र के लिहाज से परिकलन यन्त्र बहुत तीव्रबुद्धि नहीं होते। अपनी चतुराई के अभाव को, संक्रिया में भारी तेजी लाकर पूरा करना पड़ता है। और अब जब कि मानव, परिकलन यन्त्रों को अधिकाधिक जटिल प्रश्नों को हल करने में लगा रहा है उसके सामने दो विकल्प हैं : या तो अधिकाधिक बड़े परिकलन यन्त्र बनाए जायं ताकि प्रश्नों को कई भागों में विभक्त किया जा सके और प्रत्येक भाग को मशीन के भिन्न भिन्न-भागों में हल किया जाय या ऐसे परिकलन यन्त्र बनाए जायं जो अपना काम अधिक तेजी से कर सकें। सच पूछो तो मानव ने दोनों ही विकल्पों को थोड़ा बहुत अपनाया है और, परिणामतः परिकलन यन्त्रों के आकार तथा गुण, दोनों, साथ-साथ बढ़ रहे हैं।

परिकलन यन्त्र का यह विकास सम्भव हुआ है अधिकाधिक तीव्रगामी तथा अधिकाधिक भरोसे के इलेक्ट्रानी पुर्जों के आविष्कार से। पुर्जों के लिए अधिक भरोसे का होना आवश्यक है क्योंकि जितनी बड़ी मशीन होगी उतनी ही आशंका रहती है कि कोई पुर्जा फेल हो जायगा और मशीन को ठप्प कर देगा। इसलिए निर्वात-नलियों का उपयोग बन्द कर दिया गया और ट्रांसिस्टरों का शुरू हो गया और उसके बाद और भी छोटे और तेज ट्रांसिस्टरों का।

लेकिन यह सवाल फिर भी बना रहा : विद्युत् धारा का एक स्पन्द, तार पर चलने में जितना समय लगाता है उससे आप कैसे निबटेंगे ? कुछ साल पहले इसका जवाब यह प्रतीत होता था कि धारा के स्पन्दों का उपयोग बन्द कर दिया जाय और उन सूक्ष्मतरंग संकेतों का उपयोग शुरू कर दिया जाय जो प्रकाश की गति से चलते हैं। लेकिन अगर आप चाहते हैं कि अनेक सूक्ष्मतरंग संकेत एक दूसरे का अतिक्रमण न करें तो आवश्यक होगा कि विशेष प्रकार के ऐसे खोखले केबलों से काम लिया जाय जिनमें सूक्ष्मतरंग संकेत चल सकें।

इस प्रकार का जो सब से छोटा केबल, इंजिनीयर लोग बना पाए हैं उसका

व्यास ३०/१००० इंच के लगभग है। लेकिन इन केबलों में भी संकेत की बहुत सी शक्ति नष्ट हो जाती है। फिर, सूक्ष्म-तरंग संकेत पैदा करने के लिए आवश्यक उपकरण भी भारी भरकम तथा बहुत महंगा होता है।

इसलिए समाधान यह हुआ

परिकलन यन्त्र, प्रकाश की चाल से काम करें, इसके लिए प्रकाश से ही काम क्यों न लिया जाय? लेसर के आविर्भाव ने इस समस्या के स्पष्ट-से प्रतीत होने वाले इस समाधान को व्यावहारिक बना दिया।

प्रकाशिक परिकलन यन्त्र, सूक्ष्मतरंग केबलों के बदले प्रकाशिक तन्तुओं से काम लेता है: ऐसे प्रकाशिक तन्तुओं को बनाना सम्भव है जो व्यास में एक इंच के दस लाखवें भाग मात्र हों। एक इंच के एक हजारवें भाग जितनी चौड़ाई वाले तन्तु तो सामान्य हो गए हैं। इस प्रकार, ऐसा प्रकाशिक परिकलन यन्त्र बनाया जा सकता है जो सूक्ष्मतरंग परिकलन यन्त्र से कई गुणा छोटा हो—शायद विद्युत्-परिकलन यन्त्र से भी छोटा।

तारों के या सूक्ष्मतरंग केबलों के मुकाबले, प्रकाशिक तन्तुओं में एक और भी विशेष गुण है। तारों या केबलों पर चलती-चलती विद्युत् धारा या सूक्ष्म-तरंग संकेत, रास्ते भर अपनी ऊर्जा खोते जाते हैं और किसी न किसी स्थल पर प्रवर्धक कहलाने वाला इलेक्ट्रानी परिपथ लगाना पड़ता है ताकि संकेत, वर्धित होकर यथास्थिति में आ जाय। जहां एक संकेत को, अनेक समान्तर लाइनों के भरण के लिए शाखाओं में या पंखाकार फैलना पड़ता है—जैसा कि परिकलन यन्त्र के कार्य में प्रायः होता है—तब ऐसा करने की विशेष आवश्यकता होती है: लेकिन प्रकाशिक परिकलन यन्त्र में यह प्रवर्धन आसान रहेगा।

आपको याद होगा कि प्लास्टिक लेसर में यूरोपियम जैसी एक दुर्लभ मृद्धातु ने, संसक्त प्रकाश को पैदा करने के लिए आवश्यक ऊर्जा का संक्रमण मुहय्या किया था और यह भी कि इस दुर्लभ मृदा का परमाणु, कीलेट कहलाने वाले जटिल तथा
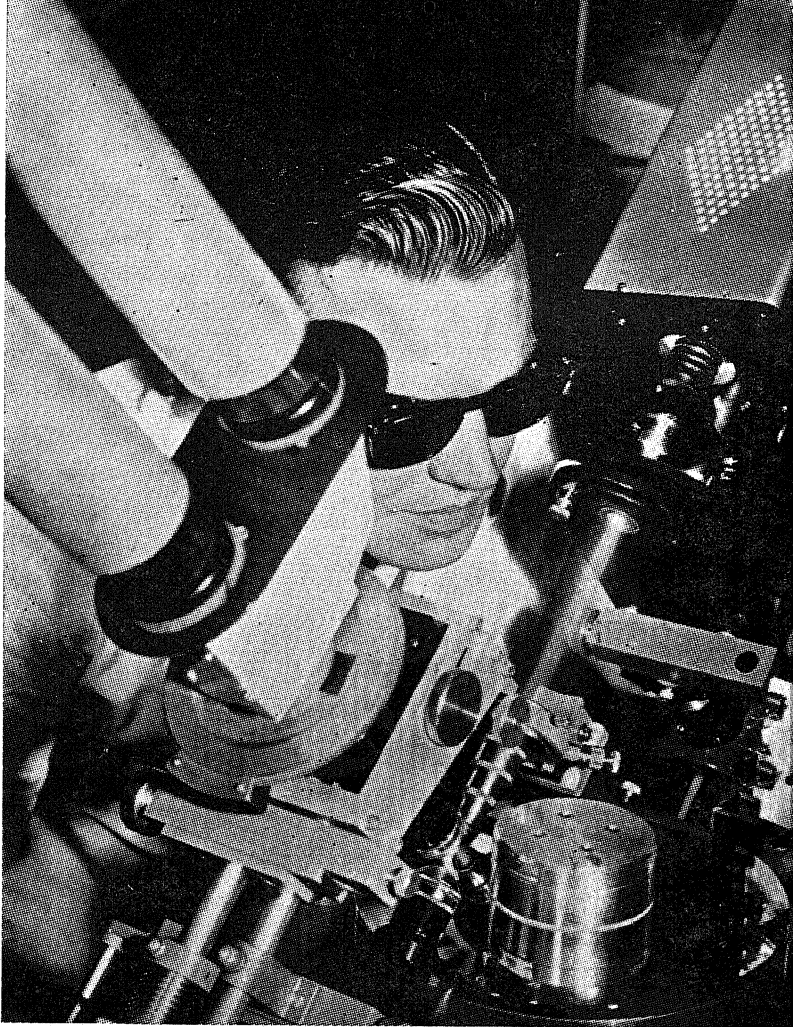
स्वचालित अंक-परिकलन यन्त्र के चुम्बकीय डायल पर जमा आंकड़ों को पढ़ने के लिए लेसरकिरणपुंज का उपयोग किया जा रहा है।

(सौजन्य : इलेक्ट्रानिक्स)

वलयाकार अकार्बनिक अणु में अन्तर्विष्ट किया जा सकता है। इन कीलेट अणुओं को, यथावसर, द्रव, काच या प्लास्टिक में निलम्बित किया जा सकता है।

अगर अब, परिकलन यन्त्र के स्पन्द के सारे मार्ग पर, कीलेट अणुओं को प्रकाशिक तन्तु शलाका में निलम्बित किया जाय और इस कीलेट का इतना पम्पन किया जाय कि फायरिंग शुरू होने की न्यूनतम सीमा से जरा सा कम रहे तो लाइन पर आने वाला संसक्त प्रकाश का स्पन्द, सारे के सारे प्रकाशिक तन्तु से फायरिंग करवाने लगेगा और स्पन्द अपने गन्तव्य स्थान तक, लाइन में शक्तिनाश करके और कमजोर होकर नहीं पहुंचेगा अपितु, उलटे, प्रवर्धित होकर पहुंचेगा।

इस प्रकार के प्रकाशिक परिपथ की दिलचस्प बात यह है कि इसकी कार्य-पद्धति, मानव-तन्त्रिका कोशिका या न्यूरोन की कार्य-पद्धति से बहुत मिलती-जुलती है। फर्क सिर्फ इतना है कि प्रकाशिक तन्तु को मानव-तन्त्रिकाकोशिका से भी छोटा बनाया जा सकता है और तन्त्रिकाकोशिका के मुकाबले, इस पर संकेत, अधिक तेज चल सकते हैं।

इस प्रकार समय और स्थान की बचत होगी तो परिकलन यन्त्रों को किसी एक ही नियत ढंग से डिजाइन नहीं करना पड़ा करेगा और उनके प्रत्येक चरण के इस प्रकार "हिज्जे" नहीं करने पड़ेंगे जैसे किसी जड़मति बच्चे के लिए करने पड़ते हैं। एक ही मंजिल के रास्ते अनेक होते हैं और परिकलन यन्त्र को इस प्रकार "प्रशिक्षित" किया जा सकता है कि निविष्ट अवस्थाओं के एक सेट की मौजूदगी में एक रास्ता पकड़े और कुछ दूसरी अवस्थाओं के सेट की मौजूदगी में कोई और रास्ता। इस प्रकार के परिपथों का उल्लेख, अनुकूली तर्क के नाम से होता है और इनकी बदौलत परिकलन यन्त्र किसी काम को करके उसी प्रकार सीख सकता है जिस प्रकार मानव।

सरेदस्त जो बड़ा मसला प्रकाशिक परिकलन यन्त्रों के बारे में पेश है वह यह है कि इनकी दक्षता को इतना अधिक बढ़ाया जाय कि इनको प्रचालित करने वाली शक्ति को बेहद ऊंचाई पर न रखना पड़े। लेकिन कोई भी नई किस्म का उपकरण

महीनों या बरसों के इंजिनीयरी परिष्कारों के बाद ही अपनी क्षमता के शिखर पर पहुंचता है और तब शक्ति की खपत, निःसन्देह, कम हो जाती है।

जिन दिनों पुराने मन्दगति एनियक परिकलन यन्त्र का, दैत्याकार मस्तिष्क समझ कर, स्वागत किया जा रहा था उन दिनों वैज्ञानिकों ने ठीक ही कहा था कि एनियक किसी भी लिहाज से मस्तिष्क नहीं है। उन्होंने यह भी कह दिया था कि मानव मस्तिष्क की क्षमता को एक परिकलन यन्त्र में भर सकना कभी भी सम्भव नहीं होगा। दृढ़ स्वर में उन्होंने कहा था कि ऐसे परिकलन यन्त्र का आकार एम्पायर स्टेट बिल्डिंग से भी बड़ा रखना होगा। और, इसे ठंडा करने में नियागरा जैसी तीन नदियों का जल लग जाया करेगा।

जो भी हो, शक्यताओं से तुलना करें तो परिकलन यन्त्रों का आकार लगातार घटता ही गया है और एक दिन आयगा कि प्रकाशिक परिकलन यन्त्र सब से छोटा सिद्ध होगा। और अगर परिकलन यन्त्र इतना छोटा हो कि, सारा का सारा, द्रव हीलियम में डुबोया जा सके तो इसके शीतलन की भी कोई गम्भीर समस्या नहीं रह जायगी।

पृथ्वी पर लेसर-संचार व्यवस्था

वायु मण्डल के भीतर थोड़ी दूरी की संचार व्यवस्थाओं के लिए और बाह्य अन्तरिक्ष में कहीं अधिक लम्बी दूरियों के लिए भी लेसर काम आ सकते हैं। अन्तःक्षेपण लेसर या अर्धचालक-डायोड लेसर का, शब्दों के या संगीत के प्रेषण के लिए उपयोग करना विशेषतया सुगम है।

माडुलेशन की एक व्यवस्था है जिससे किसी संकेत पर आसूचना को आरोपित किया जा सकता हैं। इसे स्पन्द-आवृत्ति-माडुलेशन कहते हैं। इसी का उपयोग किया जाता हैं। इस व्यवस्था में वाणी या संगीत के प्रबलतर हो जाने पर डायोड लेसर के फ्लैश होने का दर बढ़ जाता है। एक सरल सी व्यवस्था, संकेतों को प्रायः उसी खूबी के साथ प्रेषित कर देगी जिसके साथ थोड़ी दूरी की टेलीफोन की लाइनें

करती हैं। अन्तःक्षेपण लेसर को चालू करने वाले, दिष्टधारा के व्यक्तिगत स्पन्दों की चौड़ाई, एक सैकण्ड के दस लाखवें भाग के २/१०वें हिस्सों में होती है और उनका परिमाण पांच एम्पियर होता है।

लेसर द्वारा टेलिवीजन

लेसर-प्रकाश किरणपुंज द्वारा किसी नियमित टेलिवीजन संकेत के ध्वनि तथा चित्र वाले हिस्सों को प्रेषित करने के लिए जटिलतर व्यवस्था की जा चुकी है। इस किरणपुंज का स्रोत, हीलियम-निऑन गैस-लेसर था जो गहरेलाल प्रदेश में ६,३२८ एं पर प्रचालित होता था।

लेसर-किरणपुंज पर टेलिवीजन की ध्वनि तथा चित्रों को प्रेषित करने के लिए परीक्षणात्मक व्यवस्था।

(सौजन्य : इलेक्ट्रानिक्स)
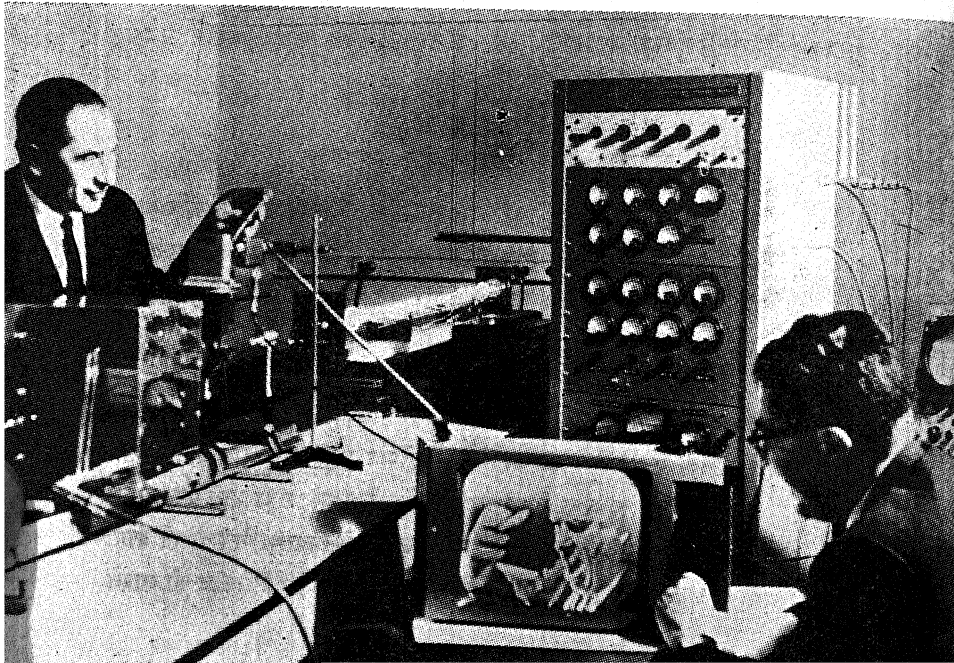
किरणपुंज को माडुलित करने के लिए उसे के० डी० पी० (पोटाशियम डाइहाइड्रोजन फास्फोट) के एक क्रिस्टल में से गुजारा जाना था। इस के०डी०पी० में एक बड़ा दिलचस्प प्रकाशिक गुण है। जब किसी क्रिस्टल को (आमने-सामने के पार्श्वों पर प्रकाशिक खिड़कियों वाले) सूक्ष्मतरंग कोटर नाम के डब्बे में रखा जाता है और सूक्ष्मतरंग ऊर्जा द्वारा किरणित किया जाता है तब यह एकवर्णी प्रकाश किरणपुंज के ध्रुवण को माडुलित कर देता है।

ध्रुवित प्रकाश में, प्रकाश की सब किरणें होती हैं जो एक दिशा में व्यवस्थित होकर एक किरणपुंज का निर्माण करती हैं। धूप के ध्रुवित चश्मे चौंध को इस प्रकार कम कर देते हैं : सब तरफ चमकने वाले बेतरतीब परावर्तनों को अवरुद्ध करके तथा सिर्फ व्यवस्थित प्रकाशतरंगों को आपकी आंखों तक जाने देकर।

जब के०डी०पी० क्रिस्टल सूक्ष्मतरंग ऊर्जा से संतृप्त हो जाता है तब यह इन प्रकाशतरंगों के अक्ष को ९० अंश घुमा देता है। जब क्रिस्टल में ऊर्जा न्यूनतम होती है तब घूर्णन बिलकुल नहीं होता। अब, अभिग्राही सिरे पर अगर ऐसी व्यवस्था हो जिसमें चतुर्थांश-तरंग-पट्टिका तथा रैखिक विश्लेषण हो तो आप ऐसी व्यवस्था कर सकते हैं कि जब किरणपुंज को ९० डिग्री घुमाया जाय तब यथासम्भव अधिकतम प्रकाश पार हो जाय और ध्रुवित लेसर किरणपुंज को घुमाया जाय तो पार जाने वाला प्रकाश न्यूनतम हो।

लेसर-टेलिवीजन तन्त्र में, एक घरेलू अभिग्राही से निकलने वाले टेलिवीजन संकेत का उपयोग करके ३,००० मेगासाइकिल प्रति सैकण्ड के एक सूक्ष्मतरंग संकेत को माडुलित किया गया था और इसे उपवाहक का नाम दिया गया था। फिर, इस माडुलित उपवाहक को, प्रगामी तरंग-नलिका कहलाने वाले विशेष प्रकार के सूक्ष्मतरंग-उपकरण द्वारा प्रवर्धित किया गया था। यही सूक्ष्मतरंग संकेत था जिसको के०डी०पी० क्रिस्टल पर अनुप्रयुक्त किया गया था।

अभिग्राही सिरे पर इस लेसर किरणपुंज को उस विशेष सूक्ष्मतरंग प्रकाश-नलिका पर फोकस किया गया था जिसने, रैखिक विश्लेषण में से आते हुए लेसर

प्रकाश की तीक्ष्णता में जल्दी-जल्दी होने वाले परिवर्तनों का अनुगमन करके, उसी सूक्ष्मतरंग संकेत को पुनः प्राप्त किया था जो के०डी०पी० क्रिस्टल पर अनुप्रयुक्त किया गया था ।

प्रकाशनलिका से आने वाले इस विद्युत्-संकेत को और अधिक प्रगामीतरंग-नलिकाओं द्वारा प्रवर्धित करके, विडिओ संसूचक कहलाने वाले इलेक्ट्रानी परिपथ द्वारा पुनः सामान्य टेलिवीजन संकेत में रूपान्तरित कर दिया गया था ताकि इसको एक पारंपरिक टेलिवीजन की चित्रनलिका पर दिखाया जा सके ।

भविष्य की टेलीफोन व्यवस्थाएं

जैसा कि बताया जा चुका है, एक साथ चलने वाले ६०० टेलीफोन-वार्तालापों को इस प्रकार के एक लेसरकिरणपुंज पर वाहित किया जा सकता है। सच तो यह है कि एक लेसरकिरणपुंज पर कितने टेलीफोन-वार्तालापों को वहन किया जा सकता है, इसकी कोई सीमा नहीं। एक किरणपुंज में इतनी गुंजाइश रहती है कि किसी दिए हुए समय पर संसार के किसी भाग में होने वाले प्रत्येक वार्तालाप को वहन कर सके। लेसर-संचार व्यवस्था को सीमित करने वाली एक ही चीज है— माडुलेटर की कार्यक्षमता। लेकिन इस प्रकार के उपकरण में भी सुधार किए जा रहे हैं।

इसमें शक नहीं कि पृथ्वी के वायुमण्डल में लेसर किरणपुंज की मार बहुत थोड़ी दूर तक होती है। लेकिन लेसर के किरणपुंज, ऐसी निर्वातित प्रकाश-नलिकाओं में चलते जा सकते हैं जिनमें आवश्यकतानुसार कोनों पर, किरणपुंज को निदेशित करते जाने के लिए दर्पणों की व्यवस्था हो। और सम्भव है कि लेसर किरणपुंज ठीक वही चीज हो जिसकी, कक्षा में परिक्रमा करने वाले टेल्स्टार तथा रिले जैसे संचार-उपग्रहों से आने वाले जानकारी से भरे संकेतों को प्राप्त करने के लिए आवश्यकता है।

लेसर का संचारव्यवस्था सम्बन्धी एक और अनुप्रयोग टेलीफोन केन्द्रों में हो सकता है। कल्पना कीजिए कि टेलीफोन के दो केन्द्रीय कार्यालय ऐसी प्रकाश-

नलिका द्वारा सम्बद्ध हैं जिसमें से सारे के सारे अन्तर्कार्यालय वार्तालाप, एक संकेत-लेसर-किरणपुंज द्वारा प्रेषित होते हैं। इन संकेतों को अवमाडुलित किया जाता है, छांटा जाता है और अभिग्राही सिरे पर के सम्बद्ध उपभोक्ताओं को भेज दिया जाता है। प्रेषक सिरे पर, आने वाले संकेतों को ऐसे उपवाहकों पर आरोपित किया जाता है जो, सब के संब, उस अकेले लेसरकिरणपुंज को मॉडुलित करते रहते हैं।

चिकित्सा तथा लेसर

लेसर में निहित इतनी सारी संकेन्द्रित ऊर्जा के रहते, सहजही समझ आ जाता है कि लेसर, जीवित प्राणियों पर भी कतिपय निश्चित प्रभाव डालेगा।

जीवविज्ञान की दृष्टि से लेसर के तीन प्रभाव हैं: सामान्य तापक प्रभाव, विशिष्ट तापक प्रभाव, तथा लेसर-स्पन्द में उपस्थित संकेन्द्रित विद्युत् चुम्बकीय ऊर्जा का वैद्युत प्रभाव। वैद्युत प्रभाव, हीमोग्लोबिन या लाल रुधिर कणिकाओं में सबसे अधिक प्रकट होता है। यह इनकी विद्युत् चालकता को परिवर्तित कर देता है। हीमोग्लोबिन, वस्तुतः, लौह का एक कीलेट है और सही तौर पर आशंसा की जानी चाहिए कि ये कोशिकाएं लेसर-ऊर्जा को बड़ी हद तक अव-शोषित कर लेंगी।

सामान्य तापन

लेसर का सामान्य तापक प्रभाव तब होता है जब कोशिकाएं, व्यक्तिगत रूप से, लेसरकिरणपुंज से आने वाली ऊर्जा को अवशोषित करती हैं। जब कोई व्यक्ति धूप से झुलस जाता है तब भी यही होता है। इस किरणपुंज से त्वचा पर लाली हो जाती है, छाला पड़ जाता है या वह झुलस जाती है, यह इस बात पर निर्भर है कि लेसर-स्पन्द की तीक्ष्णता कितनी है और त्वचा कितनी देर उसके प्रभाव में रही।

लेकिन, ये प्रभाव त्वचा की गहराई तक ही सीमित होते हैं और प्रभावित कोशिकाओं में जो ऊर्जा, ऊष्मा के रूप में जमा हो जाती है उसे आसपास के ऊतक तथा रुधिर वाहिनियां परे ले जाती हैं।

लेकिन शरीर के नेत्रगातलको वृषणों (अण्डों) जैसे कतिपय अंगों में आसपास के ऊतक के साथ सम्बन्ध इतने कम होते हैं और रुधिर-संभरण इतना नाकाफी होता है कि लेसर किरणपुंज से प्रभावित स्थान में जमा ऊर्जा को परे नहीं किया जा सकता। इन अंगों पर लेसर छोड़ा जाता है तो इन अंगों के भीतर, गहराई में स्थित ऊतक को भारी क्षति हो सकती है और अन्धापन या वन्ध्यता (जननक्षमता का अभाव) हो जाने का स्पष्ट खतरा रहता है।

लेसरजनित अन्धापन : कुछ पूर्वोपाय

सामान्य ऊतक के मुकाबले रंगदार ऊतक, लेसरकिरणपुंज से आने वाली ऊर्जा को अधिक अवशोषित करते हैं। इस कारण, नेत्र के भीतरी भाग में स्थित रक्तपटल या प्रकाश संवेदी भाग, अतितीक्ष्ण लेसर किरणपुंज द्वारा, एक सैकण्ड के छोटे से भाग में ही क्षतिग्रस्त हो जाता है।

बचाव की तरकीब के तौर पर एक सुझाव यह है कि मोटे-मोटे अपारदर्शी शीशे की ऐनक पहनी जाय जिसके लेंसों के केन्द्रों में एक छोटा-सा छिद्र हो। आंख तक पहुंचने के लिए किरणपुंज को इस छिद्र में से गुजरना पड़ेगा। इस छिद्र के किनारों पर एक टोपीनुमा परिरक्षक लगा दिया जाय तो और भी अधिक बचाव हो जायगा।

अगर किरणपुंज सीधा छिद्रभाग में प्रविष्ट हो तो सम्भवतः मैकूला या दृष्टिपटल पर होने वाले तेज फोकस का बिन्दु ही क्षतिग्रस्त होगा। यह पीड़ित व्यक्ति प्रकाश, अन्धकार तथा बड़े-बड़े पदार्थों को तो अब भी देख सकेगा लेकिन स्पष्ट फोकस करने की उसकी क्षमता जाती रहेगी।

यह भी सुझाया गया है कि संकीर्ण बैंड वाले ऐसे प्रकाशित फिल्टर डिजाइन किए जा सकते हैं जो लेसरकिरणपुंज को क्षीण करके निरापद स्तरों तक ले आएं लेकिन इतना प्रकाश गुजरता रहने दें कि दृष्टि काम करती रहे। लेकिन लेसर-किरणपुंज के किन स्तरों के सामने निरापद खुला रहा जा सकता है, अभी ज्ञात नहीं है।

अभी तक तो आंख को बचाने का सिर्फ एक ही तरीका भरोसे का है : लेसर के सीधे किरणपुंज की ओर देखने से बचा जाय। लेसरों के हानिकारक प्रभावों को निर्धारित करने के लिए खरगोशों पर जो परीक्षण किए गए हैं उन्होंने उनकी आंखों में अनेक ऊष्माजनित क्षत पैदा किए हैं।

लेसर क्रिस्टल के, गैसनलिका के या अर्धचालक डायोज के किसी भी सिरे पर सीधी नजर नहीं डालनी चाहिए। बन्द किया हुआ लेसर भी सदा निरापद नहीं होता। लेसर परिपथ के कुछेक डिज़ाइन ऐसे हैं जिनमें प्राथमिक धारा के बन्द किए जाने के बाद भी विद्युत् संभरण-संधारित्र, लेसर की फ्लैश नलिका को फायर करने देते हैं।

नेत्र की शल्यचिकित्सा और लेसर

जैसा कि हम पहले कह आए हैं, सम्यक् प्रकार काम में लाया जाय तो नेत्र की सूक्ष्म शल्यचिकित्सा में लेसर का उपयोग करके दृष्टि को बचाया जा सकता है। दृष्टि-पटल में हुए छिद्र को वेल्ड और बन्द करके यह दृष्टिपटल के वियोजन (अलगाव) को दुरुस्त कर सकता हैं।

नेत्र की रुधिरवाहिकाओं के कतिपय अर्बुदों को स्कार-रूप तथा नष्टप्राय करने के लिए भी लेसर का उपयोग किया जा सकता है। जब नेत्र की परितारिका (आइरिस) कहलाने वाला रंजित भाग, मोतियाबिन्द को हटाने के लिए की गई मगर अंशतः असफल शल्यचिकित्सा के कारण अवरुद्ध या स्थानभ्रष्ट हो जाता है तब लेसर द्वारा नई पुतली (तारिका) भी बनाई जा सकती है। आंख के पृष्ठ पर के कतिपय अर्बुद भी लेसर द्वारा नष्ट किए जा सकते हैं।

दृष्टिपटल के अलगाव की बीमारी प्रतिवर्ष हजारों व्यक्तियों को होती है। इसके प्रारम्भ में दृष्टिपटल पर दरार या छिद्र प्रकट होता है। फिर, आंख के भीतर का काचाभद्रव (विट्रियस) नाम का गाढ़ा पदार्थ इस छेद में से रिसता रहता है और दृष्टिपटल तथा रक्तपटल (कोरॉयड) के बीच में बढ़ता हुआ

दबाव आखिरकार दृष्टिपटल को छील कर अलग कर देता है और अन्धापन उत्पन्न हो जाता है।

जल्दी पता लग जाय तो हलके से किरणपुंज द्वारा ही दृष्टिपटल को स्थानिक तौर पर वैल्ड करके पुन: यथास्थान बिठाया जा सकता है। दृष्टिपटल के नीचे के जिस स्थान को यह किरणपुंज जला देता है वहां एक छोटा-सा क्षतचिन्ह (स्कार) बन जाता है जो दृष्टिपटल को अपने स्थान पर थामे रखता है।

दृष्टिपटल के दोषों का इलाज पहले भी शल्यचिकित्सा, डायाथर्मी (ऊष्मा-पार्यता) द्वारा या प्रकाशिक स्कन्दक (फोटो-कोएगुलेशन) द्वारा होता रहा है। प्रकाशिक स्कन्दक, जीनॉन-गैस-नलिका में से आने वाले प्रकाश को दृष्टिपटल पर फोकस कर देता था। लेकिन इसके द्वारा चिकित्सा में आधे से एक सैकण्ड तक का समय लग जाता था और आशंका रहती थी कि इतनी अवधि में बीमार, पलक न मार दे या सिर न हिला दे। कभी-कभी तो स्कार को ठीक जगह पैदा करने के लिए कई-कई बार निशाना लगाना पड़ता था।

लेकिन लेसर के मामले में केवल १/१,००० सैकण्ड के उद्भासन की आवश्यकता पड़ती है। आंख की कोई भी गति इससे तेज नहीं और एक ही निशाने में ठीक जगह को दागा जा सकता है। उपचार इतनी जल्दी हो जाता है कि कष्ट बिलकुल नहीं होता और चिकित्सा के परामर्श कक्ष में ही, संवेदनहारी औषध के बिना किया जा सकता है। उपकरण भी संहत और उपयोग में सरल होता है।

लेसर से शायद यह काम भी लिया जायगा कि छोटी-छोटी रुधिर-वाहिनियों को झुलसा कर बन्द कर दिया जाय ताकि रुधिर की हानि कम हो और शल्यकर्म के दौरान आपरेशन का स्थान सूखा या रक्तहीन रहे। वैसे, रेडियो-आवृत्ति नश्तर का तो कुछ काल से ऐसे प्रयोजनों के लिए शल्यचिकित्सक उपयोग कर ही रहे हैं।

क्या लेसर कैंसर का उपचार कर सकते हैं ?

चिकित्सा के क्षेत्र में लेसर की सब से कठिन परीक्षा होगी, कैंसर के उपचार में। लेसर का उपयोग इस प्रकार किया जा चुका है कि रंजित कोशिकाएं नष्ट हो जायं मगर पारदर्शी कोशिकाएं अछूती बची रहें। अगर कोई ऐसा रंजक द्रव्य काम में लाया जाय जिसको दुर्दम्य कोशिकाएं ही विशिष्टतया अवशोषित करती हों तो पारदर्शी कोशिकाओं को भी नष्ट किया जा सकता है।

ऐसा माना जाता है कि लेसर, कैंसर के, अतिरंजित तथा तेजी से फैलने वाले दुर्दम्य कृष्णार्बुद (मेलानोमा) रूप को नष्ट करने में सफल हो सकता है। कैंसर कोशिकाओं को वस्तुतः, एक समय में एक कोशिका के हिसाब से, इस प्रकार नष्ट किया जा सकता है कि आसपास के स्वस्थ ऊतक को न्यूनतम क्षति पहुंचे।

इस प्रकार, लेसर के संभावित अनुप्रयोगों के सीमान्तर में अन्तर्महाद्वीपीय प्रक्षेपास्त्रों को नष्ट करने से लेकर कैंसर की चिकित्सा तक की सारी शृंखला आ जाती है। मानव की अनेक कठिनतम समस्याओं को यह सुलझा सकता है: अन्तरिक्षयानों का मार्गनिर्देशन, संचारव्यवस्थाओं के भीड़-भड़क्के वाले केन्द्रों के लिए अपरिमित स्थान की उपलब्धि, द्रव्यमान तथा ऊर्जा के रहस्यों की खोज, और वैल्डिग तथा मशीन करने जैसे साधारणतर कामों को भी सम्हालना।

सुदूर आकाशगंगाओं तक संकेत पहुंचाना

ओज्मा प्रायोजना में भी लेसर एक भूमिका अदा कर सकते हैं। आजकल, अतिसूक्ष्मग्राही रेडियो दूरदर्शी, सुदूर आकाशगंगाओं की बारीक जांच कर रहे हैं और ऐसे बुद्धिगम्य रेडियो संकेतों के किसी प्रमाण को ढूंढ रहे हैं जो पृथ्वी की तरह जीवन को सहारा देने वाले वातावरण से युक्त किसी दूरस्थ तारे के किसी ग्रह पर सभ्य प्राणियों की उपस्थिति को प्रकट करे। ओज्मा प्रायोजना की मांग यह भी है कि सुदूर आकाश गंगाओं पर किरणपुंजों को फैंकने वाले उच्चशक्ति रेडियो-प्रेषित्रों द्वारा कोई प्रारंभिक स्पन्द-आकृति भी भेजी जाय। यह स्पन्द आकृति ऐसी होगी जिसे समझने के लिए किसी भाषा की अपेक्षा नहीं होगी और

किसी भी बुद्धिजीवी प्राणी द्वारा झट समझी जा सकेगी। यथा : "दाढ़ी-हजामत और बालकटाई, पाव-डालर"---डम डिटि डमडम, डिट डिट।

परन्तु मान लो इन अज्ञात प्राणियों ने अपने विज्ञान का विकास तरंगों के पदों में नहीं, कणिकाओं के पदों में किया है ---मान लो, सत्रहवीं सदी में, प्रकाश के बारे में हाइगेन का नहीं, न्यूटन का सिद्धान्त प्रचलित था ? ऐसी सूरत में हमारे इन दूरस्थ सहप्राणियों की सभ्यता का आधार रेडियो का नहीं, लेसर का शिल्प-विज्ञान होगा।

वैज्ञानिकों ने सुझाव दिया है कि २००-इंची दूरदर्शी में से फेंके हुए शक्ति-शाली लेसरकिरणपुंजों के स्पन्दों द्वारा संपूरित करके हम अपने रेडियो प्रसारणों को बाह्य अन्तरिक्ष के अज्ञात प्रदेशों तक पहुंचाएं। इससे लेसर बाह्य अन्तरिक्ष के सुदूर प्रदेशों के बुद्धिजीवी प्राणियों के साथ संचार का हमारा प्रथम साधन बन जायगा !

४

लेसर का निर्माण

लेसरों का उपयोग कितनी ही किस्मों के कामों के लिए पहले ही शुरू हो चुका है लेकिन औसत दर्जे के आम आदमी से उनका सीधा वास्ता पड़ने में अभी कुछ देर है।

फिर भी लेसर के क्रियाकलाप तथा उपयोग सम्बन्धी विचारोत्तेजक अनुसन्धान में व्यक्तिगत तौर पर भाग लेने की स्वाभाविक आकांक्षा उत्पन्न हो चुकी है। किसी बड़ी इमारत के निचले भाग में रहने वाला जो लड़का अपने शौकिया रेडियो से उलझा रहता था या अपनी टूटी-फूटी पुरानी मोटर को तगड़ा करता रहता था वह, सम्भवत: एकदम एक लेसर बना डालने की बात सोचने लगा है। जैसा कि अभी बताया जायगा, एक लड़का तो पहले ही, सचमुच, ऐसा कर चुका है।

लेकिन यह बात निश्चित है कि लेसर कोई खिलौना नहीं है। यह एक वैज्ञानिक उपकरण है जिसको बनाना और चलाना ख़तरे से ख़ाली नहीं। लेसर से आने वाले प्रकाश से अन्धापन तथा दर्दनाक छाले पैदा हो सकते हैं या आगें लग

सकती हैं और लेसर में काम आने वाली उच्च वोल्टताओं (विद्युत्शक्ति) से मृत्यु भी हो सकती है।

इस लिहाज से यह खुशकिस्मती की बात है कि अपने साधनों से कोई बालक, लेसर का समुच्चयन तथा प्रचालन नहीं कर सकेगा। आवश्यक पुर्जे बेहद महंगे हैं और आसानी से मिलते भी नहीं। फिर, लेसर के समुच्चयन के लिए इलेक्ट्रानिकी प्रविधिज्ञ के तौर पर प्राप्त की हुई पूर्ण निपुणता भी जरूरी है । यह निपुणता कम से कम इतनी होनी चाहिए जितनी एक किलोवाट के शौकिया रेडियो प्रेषित्र को बनाने के लिए आवश्यक होती। लेसर बना लेने वाले, राबर्ट आर्मस्ट्रांग नाम के बालक की जो कहानी आगे दी जायगी उसमें आप देखेंगे कि उसका काम तभी सम्भव हुआ था जब कि उसे पुर्जे बनाने वाले अनेक लोगों का सहयोग और अनेक इलेक्ट्रानी इंजिनीयरों की सहायता मिली।

इस अध्याय में लेसर बनाने का कोई ऐसा नुस्खा नहीं है जैसे पाकशास्त्र की पुस्तकों में दिए होते हैं। समुच्चयन तथा तार लपेटने की सारी तफसीलें इसमें नहीं दी गई हैं। लेकिन इसमें दिए गए चरण, एक निपुण इलेक्ट्रानिकी प्रविधिज्ञ को स्पष्ट दीख जाने चाहिएं और उसी की किस्म के आदमी निरापद रूप से लेसर के निर्माण को हाथ में ले सकते हैं। भिन्न-भिन्न निर्माताओं के बनाए मुख्य घटकों के विन्यास में पाई जाने वाली सब विभिन्नताओं को काफी तफसील के साथ यहां बताया और समझाया नहीं जा सकता। इस वास्ते हमारा मशवरा है कि लेसर का भावी निर्माता, विस्तृत जानकारी वहीं से प्राप्त कर ले जहां से वह पुर्जे खरीदे।

लेसर : मेले में

इन अवस्थाओं के रहते हम आशा करते हैं कि इस अध्याय में दी गई जानकारी के आधार पर जो भी लेसर बनाए जायेंगे वे या तो विज्ञान के अध्यापकों या अन्य सुप्रशिक्षित वयस्क परामर्शदाताओं द्वारा या उनकी कड़ी निगरानी में बनाए जायंगे।

लेकिन हाई स्कूल के जो विज्ञान-मेले, वान डिग्राफ जनित्रों, गाइगर-मुल्लर कलित्रों तथा अभ्र-कोष्ठ बनाने वाले छात्रों को प्रथम पारितोषिक दिया करते थे वे जल्दी ही उन उदीयमान वैज्ञानिकों को सर्वोच्च सम्मान देने लगेंगे जो घर के बने लेसरों से उस्तरे के ब्लेडों का वेधन कर देंगे।

सच पूछो तो लेसरों द्वारा इतने ब्लेडों का वेधन किया गया है कि एक वैज्ञानिक के व्यंग्य के मुताबिक, भविष्य में लेसर के निर्गम का निर्धारण जूलों में नहीं, "जिलेटों" में किया जाना चाहिए।

जब राबर्ट आर्मस्ट्रांग ने फोर्टवर्थ के विज्ञान मेले में घर के बने अपने लेसर के कारण अपने विभाग में प्रथम स्थान प्राप्त किया था तब वह पन्दरह साल का था और टैक्सास के फोर्टवर्थ नगर के मॉनिंग जूनियर हाई स्कूल की नौवीं कक्षा में पढ़ता था। राबर्ट की गिनती हर लिहाज से सब से अच्छे विद्यार्थियों में होती थी। वह बास्केट बाल तथा फुटबाल खेलता था। जब उसने लेसर का समुच्चयन किया था तब तक उसने प्रणय के प्रांगण में पदार्पण नहीं किया था।

पहले पहल तो ऐसा लगता था कि उसकी प्रायोजना धरी की धरी रह जायगी। राबर्ट को बताया गया था कि लेसर के निर्माण की बात सोचना व्यावहारिक नहीं क्योंकि इसको चालू करने के लिए जिस लालमणि क्रिस्टल की आवश्यकता होती है वह बहुत कीमती होता है। लेकिन कनेक्टिकट में उसे एक ऐसी कम्पनी मिल गई जिसने उसे एक ऐसा लालमणि-क्रिस्टल उधार देना मान लिया जिसकी कीमत चार सौ डालर के करीब होगी। उस कम्पनी वालों ने उस क्रिस्टल को सावधानी से एक डब्बे में बन्द किया और हवाई डाक द्वारा टैक्सास भेज दिया। राबर्ट का काम शुरू हो गया।

राबर्ट का पिता, जनरल डायानेमिक्स कम्पनी में एक वैमानिकी-इंजिनीयर था। उसने अपने बेटे का हौसला बढ़ाया और जनरल डायानेमिक्स के दो तथा के०टी०वी०टी० के एक इंजिनीयर ने अनेक प्रकार से सहायता की। राबर्ट का कहना है कि रोज़ रात अपना स्कूल का गृहकार्य खत्म करने के बाद प्रत्येक शुक्रवार

की रात्रि से सोमवार की सुबह तक का सारा समय वह लेसर के जोड़तोड़ में लगा रहता था। यह क्रम, बड़े दिन (२५ दिसम्बर) से मार्च के अन्त तक चलता रहा था।

अपने लालमणि क्रिस्टल को प्रकाशिक पंपिग मुहय्या करने वाली चार फ्लैश नलिकाओं के समूह के लिए उसने ४,००० वोल्ट वाला विद्युत् जनित्र बनाया।

जो लालमणि उसे उधार मिला हुआ था वह बेलनाकार था, व्यास में १/४इंच, लम्बाई में दो इंच। इसकी परिधि, चारों ओर से सूक्ष्मतया घर्षित भी थी। दोनों सिरे प्रकाशिक घर्षण द्वारा समतल किए हुए थे और आपस में ठीक समान्तर थे। प्रत्येक सिरा रजतित था।

लालमणि शलाका को चार फ्लैशनलिकाओं ने, गुच्छाकृति, घेर रखा था और ये सब चीजें, धातुओं के बने एक ऐसे काले डिब्बे में रखी गई थीं जिसमें से प्रकाश आ-जा नहीं सकता था।

राबर्ट ने न तो अपने लेसर से हीरों की कटाई करनी थी न चांद को रोशन करना था। लेकिन जब उसके उपकरण ने प्रथम परीक्षण में ही काम कर दिखाया तो उसे आश्चर्य भी हुआ, सन्तोष भी।

उसके लेसर से उत्सर्जित होने वाले प्रत्येक फ्लैश की लम्बाई, एक सैकण्ड का दो सौवां भाग थी। और कहानी सुखान्त रही क्योंकि लेसर में यह क्षमता थी कि वह, परम्परानुसार, उस्तरे के ब्लेड पर गहरे गढ़े पैदा कर दे। इसकी ऊर्जा, आधे "जिलेट" की थी।

इन सब बातों को देखते हुए हम यहां वैज्ञानिक बुद्धि वाले प्रत्येक विलक्षण किशोर के प्रशिक्षित पिता, स्नेही चाचा, विज्ञानाध्यापक तथा स्काउट मास्टर की आत्मरक्षा के लिहाज से, लेसर के समुच्चयन के मूलतत्त्वों को प्रस्तुत करते हैं। और अगर स्थिति हाथ से निकल जाय तो शायद ये लेसर को विघटित करने में भी सहायता देंगे।

लालमणि क्रिस्टल

लेसर का सब से महत्त्वपूर्ण भाग होता है, लालमणि-क्रिस्टल। यह लालमणि ही हो, यह जरूरी नहीं। यह निओडाइमियम नाम की दुर्लभ मृदा से लेपित कैलसियम टंग्स्टेट जैसी कोई चीज भी हो सकती है, दुर्लभ मृदा या एक्टिनाइड धातुओं से युक्त दर्जनों अन्य क्रिस्टलों में से कोई क्रिस्टल भी हो सकता है। लेकिन इन अन्य क्रिस्टलों में से अधिकांश अदृश्य अवरक्त प्रकाश को उत्सर्जित करते हैं जब कि लालमणि में से जो किरणपुंज निकलता है वह खासा लाल होता है और उससे दर्शकों को प्रभावित किया जा सकता है।

लालमणि रत्न का निर्माण

लालमणि, वस्तुतः ऐसा नीलम होता है जिसमें थोड़ा-सा (एक प्रतिशत का लगभग पांच सौवां भाग) क्रोमियम विलीन किया हुआ होता है। और नीलम, एलुमिनियम ऑक्साइड का एकल क्रिस्टल होता है।

इस प्रकार, कृत्रिम लालमणि बनाने के लिए, एलुमिनियम आक्साइड तथा क्रोमियम को उच्च ताप सहन करने वाली भूषा (घड़िया) में लगाया जाता है और इसके लिए विद्युत्-प्रेरित तापक कुंडलियों का उपयोग किया जाता है। लालमणि के छोटे से बीज रूप क्रिस्टल को भूषा में निविष्ट किया जाता है। इसके बाद, इस छोटे से क्रिस्टल-बीज पर जो बृहत्तर क्रिस्टल बनता है उसे एक अपरिवर्ती सर्पिल गति द्वारा धीमे से, इस दीप्त तथा श्वेततप्त गलित पदार्थ में से खींच लिया जाता है। क्रिस्टल-वर्धन का सिद्धान्त वही है जिसके अनुसार लवण के अतिसंतृप्त घोल में सेंधा नमक के क्रिस्टलों को बनाया जाता है। फर्क इतना ही है कि लवण के क्रिस्टलों को कक्षतापमान पर बनाया जाता है और लालमणि के क्रिस्टलों को श्वेततप्त ऊष्मा में।

इस क्रिस्टलवर्धन का परिणाम होता है एक लालमणि रत्न। यह पारभासी पदार्थ का दीर्घीकृत घुंडीदार एक क्रिस्टल होता है। लम्बाई में एक इंच भी हो सकता है, एक फुट तक भी और व्यास में ३/८ से १/२ इंच तक।

इन लालमणि शलाकाओं की कीमत १०० डालर प्रति इंच के लगभग होती है। इसलिए १/४ इंच व्यास वाली दो-इंच मानक शलाका को रत्न के रूप में खरीदा जाय तो १५० से २०० डालर तक पड़ जाती है। अगर आपका शुगल है, शौकिया प्रकाशविज्ञान या रत्नों की नक्काशी तो आप चाहेंगे कि लेसर बनाने के लिए आप पहले लालमणि रत्न बनावें।

रत्न से शलाका

अगर आपको प्रकाशविज्ञान तथा जवाहरात का काफी तजुर्बा नहीं है तो बेहतर है कि आप २०० डालर और भरें और एक लालमणि शलाका को, इसके निष्पन्न रूप में खरीद लें। लालमणि रत्न, अतिवर्धित नीलम ही होता है और यह कांच तथा स्फटिक से अधिक कठोर होता है। इसको हीरे की कलम से काटना पड़ता है और अगर कटाव ठीक समान्तर न हो तो आपको बाद में बहुत दिक्कत का सामना करना होगा। फिर, यह शलाका, यथार्थरूप में बेलनाकार बन जाय इसके लिए यह भी आवश्यक है कि इस क्रिस्टल की परिधि को चारों ओर से उत्तरोत्तर छोटे आकारों के डायमण्ड ग्रिट (हीरक कंकरी) द्वारा सूक्ष्म-घर्षित किया जाय। बारीक घिसाई के बाद भी लालमणि का बाह्य पृष्ठ धुंधला सा ही रहता है। लेकिन वास्तविक महत्त्व तो लालमणि के सिरों का होता है। उन को चिकना घर्षित करना पड़ता है, अर्थात् तब तक घिसना पड़ता है जब तक वे पूर्णतया पारदर्शी न हो जायं। दोनों सिरों की समान्तरता आर्क के दस सैकण्डों के भीतर-भीतर होनी चाहिए और हालांकि प्रकाशविज्ञान के निपुण यन्त्रविज्ञानी इस शलाका पर नजर फेर कर भी समान्तरता की जांच कर सकते हैं फिर भी इसकी उत्तम जांच, दर्पणतन्त्र वाले प्रकाशिक बैंच पर ही होती है। घिसाई के द्वारा सिरों पर इतनी समतलता लानी आवश्यक होती है जो सोडियम प्रकाश की तरंगलम्बाई की चौथाई के भीतर-भीतर हो। यह ऐसी यथार्थता है जिसको जांच की प्रकाशिक समतल पट्टिकाओं द्वारा ही परखा जा सकता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि अगर आपके पास प्रकाशिक बैंच या जांचने वाली

प्रकाशिक समतल पट्टिकाएं या उनके उपयोग का ज्ञान नहीं है तो कोई कारण नहीं है कि आप अपना काम शुरू करने के लिए २०० डालर के लालमणि रत्न के साथ खिलवाड़ करें। कहीं अच्छा हो कि आप बनी बनाई लालमणि शलाका खरीद लें।

इंडियाना राज्य के ईस्ट शिकागो में स्थित यूनियन कार्बाइड का लिंडे एयर प्राडक्ट्स डिविजन ऐसी प्रकाशिक-गुणयुक्त लालमणि शलाकाएं सप्लाई करता है जो कटी-कटाई, घिसी-घिसाई, पालिश करी कराई तथा समान्तर सिरों वाली होती हैं। लेकिन फिर भी, सिरों के पृष्ठों को अंशत: रजतित स्वयं करना होता है। रजतन ऐसे ही किया जाता है जैसे कि दर्पण बनाने में, लेकिन उतना मोटा नहीं। सच तो यह है कि आजकल व्यापारिक पैमाने पर बनने वाले लेसर, रजतित सिरों का उपयोग करते ही नहीं क्योंकि ऐसे सिरे लालमणि के प्रकाश निर्गम की अत्यधिक मात्रा को अवशोषित कर लेते हैं। व्यापारिक लेसरों में विशेष अवशोष-हीन परावैद्युत विलेपन की बहुत-सी परतें होती हैं। लेकिन ऐसी परतों को जमाना मुश्किल होता है और वे रजत से भी महंगी पड़ती हैं।

कनेक्टिकट राज्य के नार्वाक नगर में स्थित पर्किन-एल्मर कार्पोरेशन का विद्युत् प्रकाशिक विभाग, ऐसी परखी हुई लालमणि शलाकाएं मुहय्या कर देता है जिन पर पहले से ही परावैद्युत फिल्म की कई तहों का विलेपन किया हुआ होता है। और, चूंकि इन शलाकाओं से एक लेसर में काम लेकर देखा जा चुका होता है, यह भरोसा रहता है कि अगर अन्य सब चीजें ठीक बन गईं तो आपका लेसर जरूर काम देगा। इस परखी हुई लालमणि शलाका के साथ, प्रचालन संबंधी सब आंकड़े तथा परीक्षण अवस्थाओं के सारे ब्यौरे मिलते हैं। इसकी कीमत, अलबत्ता, अपरीक्षित शलाका से लगभग दुगनी पड़ती है।

फ्लैश लैम्प का चुनाव

अगला काम यह है कि आप अपनी लालमणि शलाका को पंपित करने के लिए एक फ्लैश लैम्प का चुनाव करें।
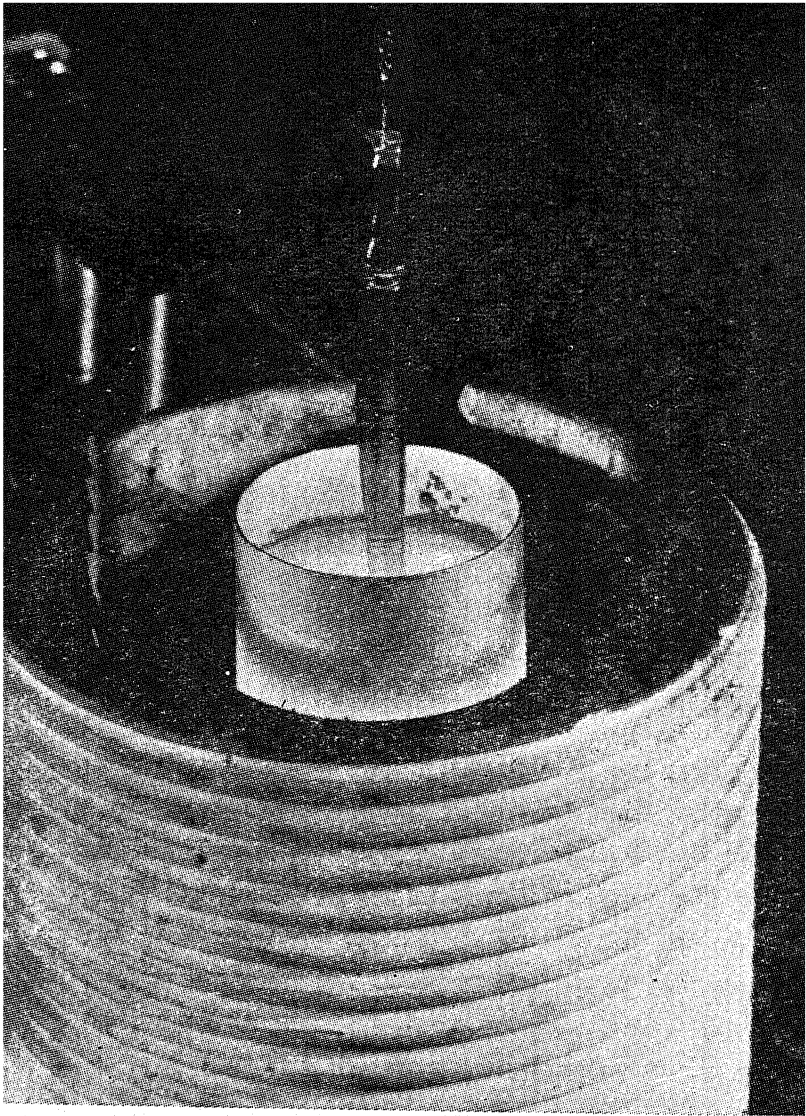
गलित द्रव का तापमान २,८०० डिग्री फारेनहाइट है। इस में से ऊर्ध्वाधर वर्धन के प्रक्रम द्वारा निओडाइमियम से लेपित कैलसियम टंग्स्टेट के क्रिस्टल को खींचा जा रहा है।

(सौजन्य : रेथिऑन)

सर्पिल फ्लैश लैम्प

अधिक परिश्रम नकरना हो तो आप जनरल इलेक्ट्रिक माडल ५२४ नाम के, तथा जीनॉन से भरे, पुराने तरीके के सर्पिल फ्लैश लैम्प से काम चला सकते हैं। मैमान ने अपने प्रथम लेसर में इसी का उपयोग किया था। इसका विन्यास सरलतम होता है।

इसमें एक ही समस्या आपके सामने आयेगी। आपको कुंडली के बीचों बीच लेसर शलाका को स्थापित करना होगा। इसके लिए सब से अच्छा तरीका यह होगा कि आप धातु के बने क्लैम्प का उपयोग करें क्योंकि प्रचालन के दौरान लेसर शलाका बहुत ही गरम हो जाती है। लेसर का पिछला सिरा, धात्विक शलाका में बनी उथली झिरी में फिट किया जा सकता है। इस शलाका को, बाद में धातु के बने, प्रकाश के लिए अप्रवेश्य, बेलनाकार ढांचे की पिछली दीवार में कस कर जड़ दिया जाता है।

लेसर के आगे के सिरे को यथास्थान रखने के लिए धातु की बनी कीप को बरता जा सकता है। कीप के पतले सिरे में लालमणि शलाका बिलकुल फिट आनी चाहिए। इसके चौड़े सिरे को लेसर के ढांचे की अगली दीवार में कस कर जड़ दिया जाता है। प्रसंगवश कह दें कि आप, अन्ततोगत्वा, फ्लैशनलिका कोई सी भी पसन्द करें, लेसर शलाका को कस कर रखने की यह व्यवस्था अवश्य उपयोगी सिद्ध होती है।

स्फटिक फ्लैशनलिका, लेसर के बेलनाकार ढांचे के पार्श्वों पर टिकी होती है। लेसर के ढांचे के आन्तरिक पृष्ठों को पालिश करके आप अपने लेसर की दक्षता को सुधार सकते हैं। वैसे, धात्विक ढांचे के बिना भी आप लेसर तथा सर्पिल फ्लैशनलिका-संयोजन से काम ले सकते हैं। प्रयोगशाला में काम आने वाले चार वलय-स्टैंडों में क्लैम्प लगा कर आप लालमणिशलाका तथा फ्लैशनलिका को यथास्थान स्थापित कर सकते हैं लेकिन यह व्यवस्था भद्दी भी रहती है, कमजोर भी, चूंकि प्रकाशिक पंपिंग की बहुत सी ऊर्जा व्यर्थ जाती है और कुछेक मिनटों के बाद फ्लैश लैम्प आपके सामने ही बारबार बिगड़ती रहे तो आप तंग भी आ जायंगे।
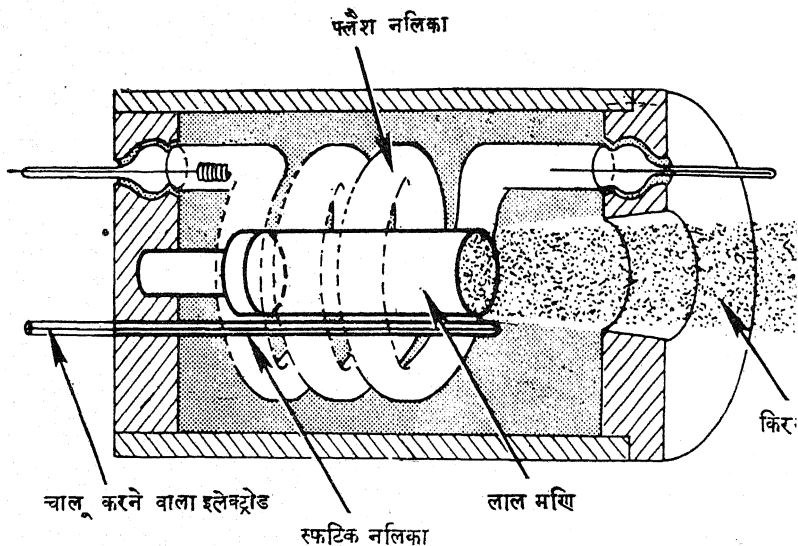
लालमणि लेसर के प्रधान अंग। इसमें सर्पिल लैम्प से काम लिया जा रहा है जैसा कि मैमान के मूल यन्त्र में किया गया था।

(सौजन्य : ह्यूफीज)

फ्लैशलैम्प-गुच्छ

एक सरल तथा सफल प्रविधि है, चार रेखाकृति फ्लैश-लैम्पों का उपयोग, जैसे कि राबर्ट आर्मस्ट्रांग ने किया था। अपनी लेसर शलाका के गिर्द फ्लैश लैम्पों को गुच्छाकृति लगाकर सारे के सारे मालमत्ते को एलुमिनियम को पन्नी में ऐसे लपेट दो मानो आप मक्का के भुट्टे को कबाब की तरह भूनने लगे हैं। पन्नी में लपेट कर भूनने की व्यवस्था में एक और खूबी यह है कि इस पन्नी को ही आरम्भक इलेक्ट्रोड के तौर पर भी बरता जा सकता है (इस बारे में अधिक चर्चा आगे करेंगे)। लेकिन एक बात याद रखिए। चूंकि पन्नी गर्म हो जाती है और चूंकि आरम्भक इलेक्ट्रोड पर उतनी ही उच्च वोल्टता होती है जितनी कि टेलिवीजन सेट की चित्र नलिका पर इसलिए यह संयोजन किसी ऐसे पृष्ठ पर टिका होना चाहिए जो ऊष्मा-

लालमणि क्रिस्टलों के प्रकाशिक पंपिंग में काम आने वाले, लेसर अग्रभागों के डिजाइन। प्रत्येक डिजाइन, फ्लैशलैम्पों से उत्सर्जित प्रकाश को संकेन्द्रित करके लालमणिशलाका पर डालता है।
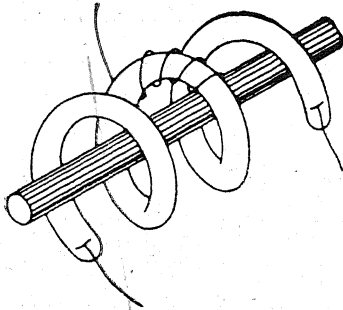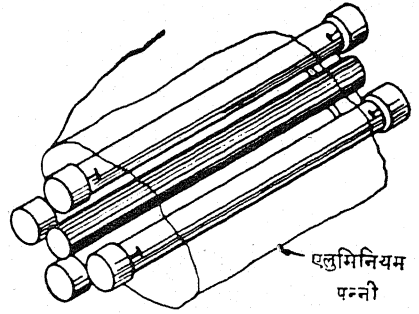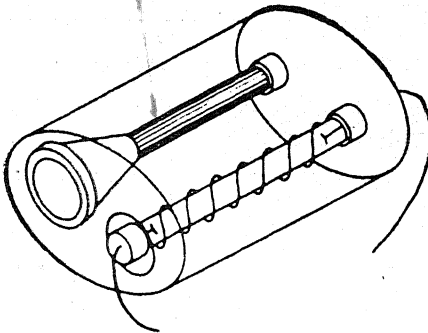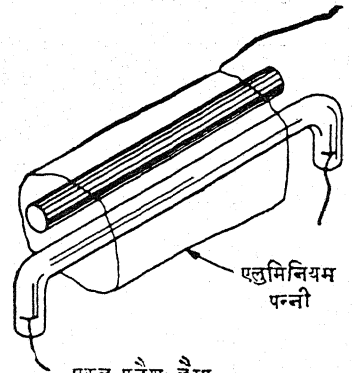
(सौजन्य : इलेक्ट्रानिक्स)

रोधी होने के साथ-साथ उत्तम विद्युत्‌रोधी भी हो। पाइरोसिरम जैसी कोई चीज बखूबी यह काम दे सकेगी।

दीर्घवृत्तज परावर्तक

लेकिन वैज्ञानिकों ने पता लगाया है कि लेसरशलाका तथा फ्लैशलैम्प संयोजन

के चारों ओर लगे परावर्त्तक को सावधानी से डिजाइन किया जाय तो लेसर के चालू होने से पहले फ्लैश-लैम्पों को जो विद्युत् शक्ति मिलनी चाहिए उसमें बहुत —शायद दसगुणा—कमी की जा सकती है।

कई अनुसंधानकर्त्ताओं का मत है कि सब से अच्छे परिणाम दीर्घवृत्तज परावर्त्तक से उत्पन्न होते हैं। इसमें परावर्त्तक की आड़ी काट, गोल नहीं, दीर्घ-वृत्तीय होती है। इसका उपयोग एकल, रेखाकृति फ्लैश लैम्प के साथ किया जाता है। फ्लैश लैम्प के अक्ष या केन्द्र रेखा को दीर्घवृत्त के एक फोकस पर कस दिया जाता है और लालमणि शलाका की केन्द्र रेखा को दूसरे फोकस पर। इस ज्यामितीय व्यवस्था द्वारा दीर्घवृत्त की एक मौलिक गणितीय विशेषता का लाभ उठाया जाता है: अर्थात् लैम्प के एक फोकस से निकलने वाले प्रकाश की सब किरणें, दूसरे फोकस पर स्थित लालमणि शलाका की दिशा में चली जाती हैं।

U-आकृति के लैम्प

सर्पिल या सीधे लैम्पों के अलावा, U-आकृति के लैम्प भी मिलते हैं। ये सब के सब फ्लैश लैम्प, शक्तिनिर्धारणक्रम के लिहाज से, कई प्रकारों के होते हैं। U-आकृति के लैम्पों का उपयोग वैसे ही होता है जैसे सीधे लैम्पों का। मगर इनको बरतना और रोपित करना, अपेक्षया सुगम होता है क्योंकि लैम्प के साथ के जोड़, लालमणि शलाका के रास्ते में नहीं पड़ते। उदाहरणार्थ, लालमणि शलाका तथा फ्लैशलैम्प को अगर एलुमिनियम की पन्नी के बने परावर्तक में लपेट दिया जाय और लैम्प को चालू करने के लिए अगर एलुमिनियम की पन्नी को बतौर आरम्भक इलेक्ट्रोड के बरता जाय तो क्लैम्पों को, U-आकृति लैम्प के पार्श्वों के साथ इस प्रकार संलग्न किया जा सकता है कि वे एलुमिनियम की उच्चविभव पन्नी से काफी परे रहें।

ओहियो राज्य के क्लीवलैण्ड नगर के नेला पार्क में स्थित जनरल इलेक्ट्रिक फोटो लैम्प डिपार्टमेंट, अनेक प्रकार की फ्लैश नलिकाओं के बारे में एक विस्तृत पुस्तिका प्रकाशित किया करता है। इसमें विद्युत् सम्बन्धी आवश्यकताओं,

डिजा इन तथा फ्लैश लैम्प के प्रचालन की बाबत तफसीलें दी होती हैं। यही कम्पनी, आधार सामग्री सम्बन्धी एक पत्रक भी प्रकाशित करती है जिसमें सरल लेसर के निर्माण का वर्णन किया होता है।

विद्युत सम्भरण को डिजाइन करना

सरल लालमणिलेसर के निर्माण में अगला चरण होता है, उस विद्युत्-सम्भरण व्यवस्था को डिजाइन करना जिसके द्वारा फ्लैश-नलिकाओं के माध्यम से लेसर को ऊर्जित किया जाता है। फ्लैशनलिका के अपने योग्यताक्रम का निर्धारण वस्तुतः लेसर के निम्नतम सीमान्तर से होता है अर्थात् ऊर्जा के उस स्तर से जिस पर लेसर ने संसक्त प्रकाश का उत्सर्जन शुरू करना होता है।

ऊर्जा संबंधी आवश्यकताएं

अगर दक्षतापूर्ण परावर्त्तक-व्यवस्था से काम लिया जाय तो आजकल चालू लालमणिशलाकाओं में अधिकांश ऐसे निम्नतम सीमास्तरों पर लेसर क्रिया देने लगतीं हैं जो १५० जूलों के आसपास होते हैं। मैमान के प्रथम सफल लेसर के लिए २,००० जूलों से अधिक पंप-ऊर्जा की आवश्यकता पड़ी थी।

शेष सब बातें समान हों तो किसी लेसर के लिए अपेक्षित पंपिंग ऊर्जा लेसर शलाका के व्यास के अनुसार बदलती रहती है : शलाका जितनी मोटी होगी, इसको चालू करने के लिए उतनी ही पंप-ऊर्जा दरकार होगी। जिस लेसर-शलाका की मोटाई सिर्फ १/१० इंच थी, उसका न्यूनतम सीमास्तर १०० जूलों से भी कम निकला था।

सच पूछो तो, खुद लेसरकिरणपुंज में ऊर्जा का यथासम्भव अधिकतम उत्पादन प्राप्त करने के लिए लेसर को निम्नतम सीमास्तर के दो चार से गुणा तक की ऊर्जा पर प्रचालित किया जा सकता है। याद रखिए, लालमणि लेसर, दक्षताहीन उपकरण के रूप में बदनाम है और इस प्रकार के प्रारूपिक उपकरण में पंपिंग ऊर्जा के एक प्रतिशत का सिर्फ दसवां भाग ही संसक्त प्रकाश के निर्गम का रूप धारण कर पाता है।

लेसर के लिए जो विद्युत् सम्भरण यन्त्र सबसे पहले बाजार में आए थे उन में से एक का शक्तिक्रम ७८० जूल निर्धारित हुआ था और वह १,५०० डालरों में बिका था। आजकल लेसरों के लिए आठसौ, दो हजार या इससे भी अधिक जूलों के विद्युत्सम्भरण यन्त्र सुलभ हैं।

८०० जूलों वाला यन्त्र ४०० से ५०० डालर तक में खरीदा जा सकता है। लेसर के इन्हीं गुणों वाले अग्रभाग, पहले १,००० डालर में बिका करते थे। आजकल तो संसक्त प्रकाश का एक जूल उत्सर्जित करने की क्षमता वाला सारा का सारा लेसर, लगभग ९५० डालर में खरीदा जा सकता है।

८०० जूल वाले विद्युत् सम्भरण यन्त्र को आप लगभग ३०० डालर में बना सकते हैं।

लेसर के लिए बनने वाले विद्युत्सम्भरण यन्त्रों के आकार का कुछ आभास लीजिए। ८०० जूल तक मुहय्या करने वाला व्यापारिक विद्युत्सम्भरण यन्त्र २,००० वोल्ट के विद्युत्सम्भरण को तथा ४००-सूक्ष्मफैरड वाले संधारित्र बैंक को काम में लाता है। (संधारित्र, एक वैद्युत पुर्जा होता है जो आवेश को परावैद्युत पदार्थ की ऐसी तह में संचित रखता है जो दो चालक प्लेटों के बीच भिची रहती है। अनेक अन्तःसंबंधित संधारित्रों के समूह को संधारित्र बैंक कहते हैं)। इस विद्युत् सम्भरण यन्त्र की ऊंचाई चार फुट होती है, चौड़ाई दो फुट, गहराई २० इंच तथा भार ३०० पौंड से अधिक।

२,००० जूल वाला विद्युत् संभरण यन्त्र भी, २,००० वोल्ट के विद्युत् सम्भरण से काम लेता है लेकिन इसका संधारित्र बैंक १,००० सूक्ष्मफैरड का होता है। इसका आकार ८०० जूल वाले विद्युत्सम्भरण यन्त्र जितना ही होता है लेकिन वजन सौ पौण्ड ज्यादह होता है।

विद्युत्संभरण यन्त्र की क्रियाविधि

सामान्यतः, विद्युत्सम्भरण यन्त्र के दो भाग होते हैं। एक भाग में मुख्य

या परिवर्ती-आवृत्ति वाला उच्च-वोल्टता-संभरण होता है। इसको अर्धतरंग विद्युत्संभरण कहा जा सकता है। इसका प्लग, ११० वोल्ट वाले, ६० आवृत्ति के प्रत्यावर्ती धारा-संभरण में लगता है और यह उसको ऐसी स्पन्दमान दिष्ट धारा में रूपान्तरित कर देता है जिसकी वोल्टता ० से २,००० वोल्ट तक परिवर्तित होती रहती है।

मुख्य सम्भरणयंत्र, एक प्रतिरोधक के माध्यम से, बड़े-बड़े संधारित्रों (विद्युत् ऊर्जा के संचायकों) के एक बैंक को आवेशित कर देता है। यह फ्लैशलैम्प, संधारित्र बैंक के टर्मिनलों के आड़े रुख जुड़ा होता है। एक वोल्टमीटर भी संधारित्र बैंक के आड़े लगा होता है। वोल्टमीटर का उपयोग यह जानने के लिए कियाजाता है कि लेसर को चालू करने लायक काफी आवेश संधारित्र बैंक में जमा हो गया है कि नहीं। सांकेतिक रूप से अर्धतरंग-विद्युत्सम्भरण यन्त्र से प्राप्त वोल्टता की आधी मात्रा को प्राय: ऐसा आवेश मान लिया जाता है।

लेसर के विद्युत्सम्भरण यन्त्र के दूसरे भाग को आरम्भिक विद्युत्सम्भरण यन्त्र कहते हैं। यह दिष्टधारा वाली विद्युत् का किसी भी किस्म का संभरण यन्त्र हो सकता है और इसका प्लग, प्रत्यावर्ती धारा की लाइन पर लगा दिया जाय तो यह दिष्ट धारा वाली विद्युत् के, लगभग ४०० वोल्ट प्रदान कर सकता है।

यह आरम्भक विद्युत् सम्भरण यन्त्र, एक और संधारित्र को आवेशित करता रहता है। इसके लिए अपेक्षया छोटा-सा, ४ या १२ सूक्ष्मफैरड वाला संधारित्र काफी रहता है। जब तक चालू करने वाला स्विच खुली या वि-ऊर्जित स्थिति में रहता है तब तक यह संधारित्र, आरम्भक विद्युत् सम्भरण यन्त्र से जुड़ा रहता है।

जब चालू करने वाला स्विच दबा या बन्द कर दिया जाता है तब इस आरम्भक संधारित्र को, उच्च वोल्टता वाले आरंभक ट्रांसफार्मर (परिणामित्र) के प्राथमिक या निवेशी पार्श्व से जोड़ दिया जाता है। इन ट्रांसफार्मरों में उच्चायी अनुपात ४० : १ का होता है। दूसरे शब्दों में कहें तो प्राथमिक में
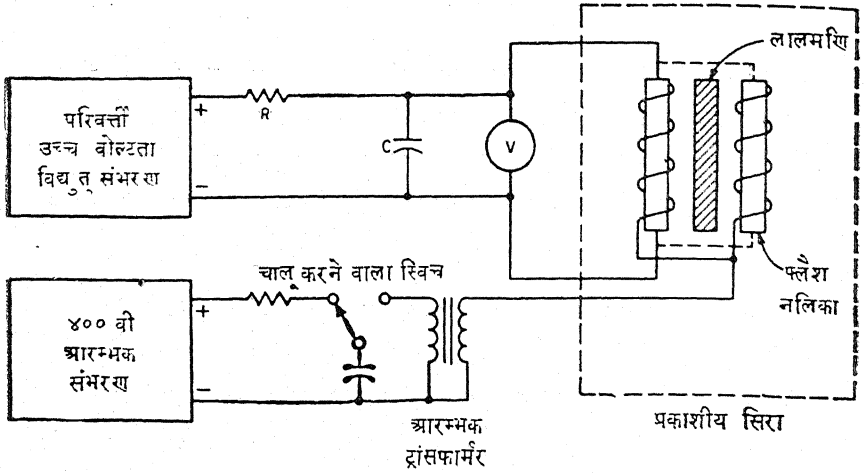
प्रारंभिक लेसर व्यवस्था। उच्च वोल्टता वाला संभरण यन्त्र, सादा-सा ट्रांसफार्मर-रेक्टिफायर (परिणामित्र-दिष्टकारी) भी हो सकता है जो संधारित्र बैंक को धीमे धीमे और लगातार आवेशित करता रहता है।

(सौजन्य : इलेक्ट्रानिक्स)

से गुजरता हुआ ४०० वोल्ट का स्पन्द, द्वितीयक में से गुजरता हुआ १६ किलोवोल्ट का स्पन्द बन जाता है। द्वितीयक का एक पार्श्व, भीतरी तौर पर, प्राथमिक के पार्श्व से बांध दिया जाता है। द्वितीयक कुंडली (या उच्च वोल्टता वाले परिणामित्र के निर्गम पार्श्व) को, फ्लैशनलिकाओं के गिर्द लपेट दिया जाता है।

जब चालू करने के बटन को दबाया जाता है तो आरम्भक संधारित्र, प्राथमिक कुंडली के माध्यम से, लगभग ४०० वोल्ट विसर्जित करता है। (वैसे, आरम्भक संधारित्र को पूरे ४०० वोल्ट तक भरने का मौका बहुत कम मिलता है) जिससे आरम्भक ट्रांसफार्मर की द्वितीयक कुंडली के पार लगभग १५,००० वोल्ट का स्पन्द बना देता है।

जब यह स्पन्द, फ्लैश लैम्पों के गिर्द लिपटी तारों पर दौड़ने लगता है तब यह ऐसे विद्युत्चुम्बकीय क्षेत्र का निर्माण कर देता है जो फ्लैश नलिका में स्थित

जीनॉन गैस के अणुओं में से कुछेक को आयनित कर देता है। इससे इलेक्ट्रान तथा धनावेशित आयन बन जाते हैं और जीनॉन गैस में वैद्युत चालकता उत्पन्न हो जाती है।

जीनॉन गैस के विद्युत्चालक बनते ही, मुख्य संधारित्र बैंक के ऋणपक्ष पर जमा हुए इलेक्ट्रान फ्लैशनलिका के मार्ग से संधारित्र बैंक के धनपक्ष की ओर उमड़ पड़ते हैं। इस क्रिया से जीनॉन फ्लैशलैम्प प्रज्वलित हो जाते हैं और लेसर शलाका को दृश्य प्रकाश की चमकदार नीली-हरी क्षणदीप्ति (दमक) द्वारा किरणित कर देते हैं।

अब हमें निर्धारित करना होता है कि इस लेसर को कितनी विद्युत् शक्ति की आवश्यकता होगी और यह निर्णय करना होता है कि मुख्य संधारित्र बैंक का आकार क्या होगा।

लेसर पंप की तीव्रता का निर्धारण ऊर्जा द्वारा होता है। ऊर्जा के मानों को स्पन्दशक्ति में रूपान्तरित करना हो तो हम पंपिंग-प्रकाश स्पन्द की ऊर्जा को पंपिंग स्पन्द की अवधि द्वारा विभाजित कर देते हैं।

उदाहरण के लिए, ८०० जूल सप्लाई करने वाला यन्त्र ऐसे स्पन्द को निर्गमित करता है जिसकी लम्बाई एक सैकण्ड का पांच हजारवां हिस्सा है तो हम कह सकते हैं कि इसके स्पन्द की शिखरशक्ति १६०,००० वाट है। और अगर, मान लो, संधारित्र-बैंक का चार्जकारी काल १५ सैकण्ड है तो प्रतिमिनट केवल चार स्पन्दों का निर्गम होता है और इसकी औसतशक्ति लगभग ५३ वाट ही होती है।

गणितीय प्रवृत्ति वालों के लिए :—

$$\text{स्पन्द की शिखर शक्ति} = \frac{\text{ऊर्जा}}{\text{स्पन्द की चौड़ाई}} =$$

$$\frac{\text{८०० जूल}}{\text{०·००५ सैकण्ड}} = \text{१६०,००० वाट}$$

तथा

$$\text{औसतशक्ति} = \text{स्पन्द की शिखर शक्ति} \times \frac{\text{स्पन्द की चौड़ाई}}{\text{स्पन्द की अवधि}} =$$

$$\text{१६०,००० वाट} \times \frac{\text{०·००५ सैकण्ड}}{\text{१५ सैकण्ड}} = \text{५३ वाट}$$

अतः हमारे लेसर में लगभग उतनी ही विद्युत् खपेगी जितनी कि प्रकाश देने वाले एक मध्यम आकार के बल्ब में खपती है।

संधारित्र का चयन

किसी संधारित्र में संचित वैद्युत आवेश को (कूलामों में) ज्ञात करने के लिए संधारित्र में फैरडों में दिए हुए वैद्युत आकार को संधारित्र के आरपार चलने वाली, वोल्टों में प्रकट की हुई, वोल्टता से गुणा किया जाता है। लेकिन हम यह मान कर नहीं चल सकते कि विद्युत् सप्लाई के हमारे मुख्य यन्त्र के सारे के सारे २,००० वोल्ट हमारे संधारित्र बैंक को आवेशित करने में काम आते हैं।

यह मत भूलिए कि संधारित्र बैंक तथा मुख्य विद्युत्-सप्लाई यन्त्र के बीच एक प्रतिरोधक जुड़ा हुआ होता है। संधारित्र के, फैरडों में व्यक्त किए हुए वैद्युत आकार के गुणन को संधारित्र-चार्जकारी परिपथ का कालांक कहते हैं। लगता तो अजीब है, लेकिन इसे सैकण्डों में ही व्यक्त किया जाता है।

अगर इस संधारित्र को २,००० वोल्ट वाले विद्युत् सप्लाई यन्त्र के दोनों टर्मिनलों से अतिदीर्घकाल तक जोड़े रखा जाय तो संधारित्र में इतने काफी इलेक्ट्रान प्रवाहित हो जाते हैं कि अगर विद्युत्सम्भरण को वियोजित करके उसकी जगह वोल्टमापी लगा दिया जाय तो वोल्टमापी भी २,००० वोल्टों की उपस्थिति सूचित करता है। लेकिन अगर विद्युत्सम्भरण यन्त्रों को संधारित्र के टर्मिनलों के साथ सिर्फ इतने समय के लिए जोड़ा जाय जो $R \times C$ सैकण्डों (कालांक-मान) के बराबर हो तो संधारित्र, विद्युत्सम्भरण की कुल वोल्टता के लगभग दो-तिहाई तक ही आवेशित हो पायगा। इस अवस्था में, विद्युत्संभरण को काट कर इसके

स्थान पर वोल्टतामापी लगाया जाता है तो वोल्टमापी से लगभग १,२४० वोल्टों की सूचना प्राप्त होती है। लेकिन अगर वोल्टमापी से प्राप्त अंक, मुख्य विद्युत्-संभरण का आधा या १,००० वोल्ट होता है तब भी संधारित्र बैंक को लेसर-कार्य के लिए पर्याप्त आवेशित माना जाता है।

इन अवस्थाओं में संधारित्र के आवेश को इस प्रकार परिकलित किया जा सकता है :

आवेश, कूलामों में = संधारित्र का आकार, फैरडों में × वोल्टता, वोल्टों में

लेकिन जब फ्लैशनलिका आयनित हो जाती है तब संधारित्र, नलिका के रास्ते विसर्जन करदेता है। इस विसर्जन की ऊर्जा को जूलों में माप लिया जाता है या, जैसा कि हम पहले कह आए हैं, कूलॉम-वोल्टों में :

ऊर्जा, जूलों में = संधारित्र-आवेश, कूलॉमों में × विद्युत् संभरण वोल्टता, वोल्टों में।

इस प्रकार, एक लेसर-पम्प-सम्भरण को डिजाइन करने के लिए सारी जरूरी जानकारी हमें मिल गई है।

मानलो, हम एक-जूली लेसर बनाना चाहते हैं। हम यह मान कर चलते हैं कि हमारी परावर्त्तक व्यवस्था ऐसे लेसर का निर्माण करेगी जिसकी दक्षता एक प्रतिशत का लगभग दसवां भाग (०·१ प्रतिशत = ०·००१) होगी। इसलिए प्रकाशिक पम्प को

$$\frac{\text{एक जूल}}{०·००१} = १,००० \text{ जूल अवश्य उत्पन्न करने होंगे।}$$

अब आइये, पता करें कि अगर मुख्य विद्युत् संभरण यन्त्र २,००० वोल्ट वाला हो और इतनी प्रकाशिक पंपिंग ऊर्जा को निर्गमित कराना हो तो हमें अपने संधारित्र को कितना आवेशित रखना होगा। इसका परिकलन ऐसे करें :

$$\text{आवेश, कूलॉमों में} = \frac{\text{ऊर्जा, जूलों में}}{\text{संभरण वोल्टता, वोल्टों में}}$$

$$\frac{१,०००}{२,०००} = १/२ \text{ कूलॉम}$$

२,००० वोल्ट के ऐसे विद्युत् संभरण यन्त्र से जिसके द्वारा संधारित्र को सिर्फ १,००० वोल्टों तक आवेशित करने की इजाजत है, सिर्फ आधे कूलॉम का आवेश प्राप्त करना हो तो हमें जिस संधारित्र की आवश्यकता होगी उसके आकार का परिकलन, इस प्रकार किया जायगा :

$$\text{संधारित्र का आकार, फैरडों में} = \frac{\text{आवेश, कूलॉमों में}}{\text{वोल्टता, वोल्टों में}} =$$

$$\frac{०{\cdot}५}{१,०००} = ०{\cdot}०००५ \text{ फैरड}$$

फैरड बड़ी बेढब सी इकाई है अतः इंजिनीयर लोग, सूक्ष्मफैरड या फैरड के दस लाखवें भाग की लघुतर इकाई से काम चलाते हैं। इस दृष्टि से, अपने फ्लैश लैम्पों को ज्वलित करने के लिए हमें जो संधारित्र बैंक चाहिए वह ५०० सूक्ष्म-फैरडों का होगा।

५००-सूक्ष्मफैरड-संधारित्र, बड़ा-सा धातु खण्ड होता है। लेसरों में काम आने वाले संधारित्र, कोई हलके फुलके पुर्जे नहीं होते। वे अक्सर भारी काम करने वाले, तेल-पूर्ण उपकरण होते हैं और उनका डिजाइन ऐसा होता है कि कठोर कार्य कर सके।

मान लो, सिर्फ २०-सूक्ष्मफैरड इकाइयां उपलब्ध हैं। हम अपना ५००-सूक्ष्मफैरडी बैंक कैसे बनावेंगे। उत्तर है : अपने २०-सूक्ष्मफैरड वाले संधारित्रों में से २५ को पार्श्वसंबंधित करके---अर्थात्, संधारित्रों के सब घन टर्मिनलों को इकट्ठा जोड़कर और इस प्रकार मुख्य विद्युत्संभरण यन्त्र को घन टर्मिनल के साथ जोड़ कर तथा संधारित्रों के सब ऋण टर्मिनलों को इकट्ठा जोड़ कर और इस प्रकार विद्युत्संभरण के ऋण टर्मिनल के साथ जोड़ कर।

स्पन्दों के बीच का काल

लेसर स्पन्दों के बीच के काल का परिकलन कैसे होगा ? यह निर्भर होता है, संधारित्र-चार्जकारी परिपथ के उस R × C कालांक पर जो खुद निर्भर करता है संधारित्र के साथ श्रेणी में लगे प्रतिरोधक के मान पर :

कालांक, सैकण्डों में = प्रतिरोध, ओमो में × धारिता फैरडों में

या, १५-सैकण्ड के चार्जकारी काल तथा ५००-सूक्ष्म फैरड वाले संधारित्र बैंक के लिए प्रतिरोधी का आकार ओमों में

$$\frac{\text{कालांक, सैकण्डों में}}{\text{संधारित्र का आकार फैरडों में}} = \frac{१५}{०\cdot०००५} = \text{३०,००० ओम}$$

स्पन्द की लम्बाई

इसके बाद लेसर की लम्बाई के प्रश्न को हल करना होता है। जब इंजिनीयर लोग इन स्पन्दों की लम्बाई पर विचार-विमर्श करते हैं तब, समय मापने के लिए सैकण्ड भी बेढब सी इकाई साबित होता है। इसलिए वे सूक्ष्मसैकण्डों की चर्चा करते हैं।

यह सिद्ध हो चुका है कि पेश्तर इसके कि लालमणि शलाका संसक्त प्रकाश का उत्सर्जन प्रारम्भ करे, ४०० सूक्ष्मसैकण्ड या ०·०००४ सैकण्ड लग जाते हैं। मान लो हमें एक ऐसे लेसर स्पन्द की आवश्यकता है जिसकी लम्बाई, एक सैकण्ड का पांच हजारवां हिस्सा हो। इसका मतलब यह हुआ कि लालमणि शलाका के लेसर क्रिया प्रारम्भ करने के बाद इस शलाका को, न्यूनतम सीमा स्तर से ऊपर कम से कम ५,००० सूक्ष्म सैकण्डों तक पम्प करना पड़ेगा।

इस प्रकार फ्लैश लैम्प से आने वाले प्रकाशिक पंपिंग स्पन्द को कम से कम ५,४०० सूक्ष्म सैकण्डों के लिए इतनी पर्याप्त ऊर्जा के स्तर पर बना रहना पड़ेगा कि लेसर, वांछित स्पन्द की अवधि भर संसक्त प्रकाश उत्सर्जित करता रहे।

जिस प्रकाशिक पंपिंग परिपथ की चर्चा हम करते रहे हैं वह इस काम को ठीक से निष्पन्न नहीं कर पाता। यह सिद्ध हो चुका है कि हमारे पुराने मित्र RC (प्र०सं०) या प्रतिरोधी-संधारित्र कालांक की अवधि में संधारित्र अपने शिखर आवेश के प्राय: ३८ प्रतिशत को उत्सर्जित कर देता है।

आपको याद होगा कि संधारित्र के, फैरडों में व्यक्त आकार या मान को परिपथ में उपस्थित प्रतिरोध के, ओमों में व्यक्त मान के साथ गुणा करने से यह पता लगा था। लेकिन फ्लैश लैम्प के ज्वलित हो जाने के बाद ३३,००० ओमों वाला चार्जकारी प्रतिरोध, इस परिपथ का अंग नहीं रहता। अब किसी महत्त्व का कोई प्रतिरोध रह जाता है तो वह है फ्लैश नलिका में उपस्थित प्लैज्मा या आयनित गैस द्वारा प्रस्तुत प्रतिरोध। प्रतिरोध का सीमान्तर, उपयोग में आने वाली फ्लैश लैम्प के मुताबिक ८० से १२० ओमों तक का होता है।

इस परिपथ से जो कालांक प्राप्त होता है वह है ०.०००५ फैरड × १०० ओम=५०,००० सूक्ष्म सैकण्ड। अत: संधारित्र के आरपार चलने वाला आवेश, ०·०५ सैकण्ड में, अपने शिखर मान के ३८ प्रतिशत तक घट जायगा। अपने कालांक की अवधि के दसवें भाग में यह अपने शिखर मान के ९० प्रतिशत तक घट जायगा। लेकिन ऊर्जा की अधिकतम मात्रा, स्पन्द के प्रारम्भ में और लाल-मणिशलाका के लेसरक्रिया करने से पहले ही निगमित होगी; तब नहीं जब कि इसकी वस्तुत: आवश्यकता होगी, चाहे वांछित स्पन्द की समयावधि अपनी मर्यादा के अन्दर ही (अर्थात् कालांक अवधि के दसवें हिस्से के भीतर ही) रहे।

प्रतिरोधक-संधारित्र परिपथ, आवेशित होता है सामान्य पहाड़ पर चढ़ने की रफ्तार से लेकिन उत्सर्जित होता है बर्फानी ढलान पर फिसलने की रफ्तार से।

लेकिन इस बर्फानी ढलान को समतल करने का भी एक तरीका है। इसमें प्रेरक-प्रतिरोधक या L/R कालांक कहलाने वाले एक और प्रकार के कालांक का उपयोग किया जाता है। यह कालांक एक ऐसे परिपथ पर लागू होता है जिसमें

एक प्रतिरोधक (लेसर में, फ्लैशनलिका में उपस्थित आयनित गैस-स्तम्भ) होता है और एक प्रेरक होता है (तार की एक कुंडली जिसे चोक भी कहते हैं)।

ऐसे परिपथ में स्पन्द धीमे-धीमे बनता है, मानो संधारित्र का चार्जकारी पर्वत हो। कालांक की अवधि में यह अपने शिखरमान का ६२ प्रतिशत बन पाता है। कल्पना कीजिए कि हम संधारित्र तथा फ्लैशनलिका के बीच ०·५ मिलिहेनरी का एक प्रेरक लगा देते हैं (हेनरी, प्रेरक के आकार या मान का एक पैमाना है। संधारित्र का मान मापने वाले फैरड की तरह, हेनरी भी एक बेढब इकाई है। व्यावहारिक प्रेरकों के आकार प्रायः मिलिहेनरियों या हेनरी के हजारवें भागों में बताए जाते हैं)। कालांक का परिकलन ऐसे करें :

$$\frac{\text{प्रेरकत्व का मान, हेनरियों में}}{\text{प्रतिरोध का मान, ओमों में}} = \frac{०·००५}{१००} = ५ \text{ सूक्ष्म सैकण्ड}$$

यह भी बहुत लम्बा नहीं है लेकिन यह संधारित्र बैंक के, बर्फीली ढलान जैसे उत्सर्जन वक्र को इतना कम कर देता है कि लेसर, प्रकाशिक पम्प की वास्तविक लहर के खत्म होने से पहले ही चालू हो सके।

अब तक हमने लालमणि लेसर के निर्माण के इन मुख्य भागों का विवेचन किया है : लालमणि शलाका, परावर्त्तक, फ्लैश नलिका तथा इसके मुख्य तथा आरंभक संभरणयंत्र। लेकिन हमने उच्च वोल्टता वाले परिवर्ती विद्युत् संभरण यन्त्र या निम्न वोल्टता वाले आरम्भक विद्युत्संभरण यंत्र की चर्चा नहीं की है।

विद्युत्संभरणों के बारे में कुछ और

सरलतम प्रकार के इलेक्ट्रानी परिपथों में से दो ये हैं। उच्च वोल्टता वाले संभरण के लिए ऐसे एकैक परिणामित्र (ट्रांसफार्मर) की आवश्यकता होती है जिसके द्वितीयक या निर्गम पार्श्व पर एक परिवर्ती टोंटी लगी हो। इससे आप अगले उच्च वोल्टता वाले परिणामित्र के निवेश को, ० से लेकर प्रत्यावर्ती धारा वाली विद्युत् लाइनों से प्राप्त होने वाले पूरे ११० वोल्टों तक परिवर्तित कर सकते हैं।

उच्च वोल्टता वाले इस परिणामित्र का उच्चायी अनुपात १५ : १ का होगा। द्वितीयक चालक तारों में से एक को आपके दिष्ट-कारियों के एनोड तक तथा एक को केथोड तक पहुंचना होगा। यह दिष्टकारी, उच्च निर्वात वाली २ × २ इलेक्ट्रान नलिका भी हो सकता है, सिलिकन डायोडों का बहुश्रेणी चट्टा भी। सुरक्षितता की दृष्टि से चट्टे का शक्तिक्रम निर्धारण २,५०० से ३,००० वोल्टों तक के लिए होना चाहिए। अगर आपने निर्वातनलिका से काम लेना है तो आपको चीनी मिट्टी का बड़ा एक नलिकाकृति खोल भी चाहिए जिसमें इसे जड़ा जा सके और आप को उच्च वोल्टता वाला एक ऐसा परिणामित्र छांटना होगा जिसमें २ × २ निर्वात-नलिका के तन्तुओं को गर्म करने के लिए दो वोल्ट वाली एक तन्तु-कुंडली समाविष्ट हो। सिलिकन के बने दिष्टकारी चट्टे के लिए किसी खोल या तन्तु की आवश्यकता नहीं होती। यह बने बनाए चट्टे अपने धात्विक पुर्जों से ऐसे लैस मिलते हैं कि सीधे आपके चेसिज (चौकी) पर रोपित किए जा सकें।

आरम्भक संभरण

आरम्भक विद्युत् संभरण यन्त्र के लिए सिर्फ एक ४ : १ उच्चायी परिणामित्र की आवश्यकता होती है। प्राथमिक कुंडलियां, ११० वोल्ट की पर्यावर्ती धारावाली विद्युत् लाइन से जुड़ी होती हैं और द्वितीयक कुंडलियों से आने वाली दो चालक तारें आपके दिष्टकारी के एनोड तथा केथोड से जुड़ी होती हैं। आप सिलिकन या सेलिनियम का ऐसा एकल दिष्टकारी बरत सकते हैं जिसका शक्तिक्रम-निर्धारण ६०० वोल्टों के लिए किया हुआ हो। या, ५ यू$_४$ जी ($5U_4G$) जैसा उच्चनिर्वात दिष्टकारी भी बरत सकते हैं जिसकी दोनों प्लेटें तथा दोनों केथोड इकट्ठे बंधे होते हैं।

उच्च वोल्टता वाले सम्भरण की तरह ही, निर्वातनलिका के मामले में भी एक खोल की आवश्यकता होती है। यह चीनी मिट्टी के बजाय फिनोलिक भी हो सकता है और ५ यू$_४$जी के तन्तुओं को गर्माने के लिए आपको एक ऐसा विद्युत् परिणामित्र चुनना पड़ेगा जिसमें ५ वोल्ट की तन्तु-कुंडली हो। सिलिकन के बने दिष्टकारी के साथ तो धात्विक पुर्जे लगे लगाए आते हैं। सच पूछो तो

इसमें एक कीलनुमा केथोड लगा होता है जो आपके चेसिज में, सीधा, एक पेच की तरह लग जाता है।

आरम्भक बटन या चाबी के एक पार्श्व में ४०० वोल्ट की गर्मी होती है अतः सुरक्षा की दृष्टि से यह अच्छा रहेगा कि दाब-बटन किस्म के सूक्ष्म स्विच का उपयोग किया जाय।

सुरक्षा के प्रबन्ध

व्यापारिक लेसर के विद्युत् सम्भरण यन्त्रों में सुरक्षा के खासे लम्बे चौड़े प्रबन्ध होते हैं। उनमें अन्तर्ग्रथनयुक्त द्वार होते हैं। अन्तर्ग्रथन, एक ऐसा प्लग होता है जो विद्युत्संभरण के चारों ओर बने खोल के दरवाजों के खुलते ही वियोजित हो जाता है और विद्युत्संभरण को अक्रिय कर देता है।

इन व्यापारिक उपकरणों में लालरंग के दो पृथक्-पृथक् सूचक लैम्प होते हैं जो उच्च वोल्टता वाले तथा आरम्भक विद्युत्संभरणों के अर्जित होते ही पता दे देते हैं। विद्युत्संभरण यन्त्रों को चालू तथा बन्द करने के लिए पृथक् लाइन स्विच भी होते हैं। जो आरम्भक परिणामित्र जीनॉन नलिका को चालू करने के लिए हमारे ४०० वोल्टों को १५,००० वोल्टों में परिवर्तित कर देता है वह प्रायः खुद लेसर के ढांचे में या ढांचे पर अवस्थित होता है। इसे लेसर-शीर्ष भी कहते हैं। लेसर का ढांचा या शीर्ष, विद्युत्संभरण यन्त्र के साथ एक समाक्ष केबल के जरिए जुड़ा होता है।

विद्युत्संभरणों में से अधिकांश में एक भारी-कृति-रिले समाविष्ट होता है जो कि विद्युत्संभरण के बन्द होते ही आवेश को संधारित्र बैंक से बाहर निकाल देता है। इससे लेसर के अचानक चालू हो जाने की आशंका नहीं रहती।

लेकिन याद रखिए कि यद्यपि लेसर अपने आप में, टलिवीजन-अभिग्राही से किसी भी तरह अधिक खतरनाक नहीं होता फिर भी इसमें काम आने वाली वोल्टताएं जिन्दगी के लिए खतरनाक होती हैं। एक प्रारंभिक लेसर का विद्युत-

छोटा-सा आधुनिक लेसर तथा सुवाह्य विद्युत्संभरण।
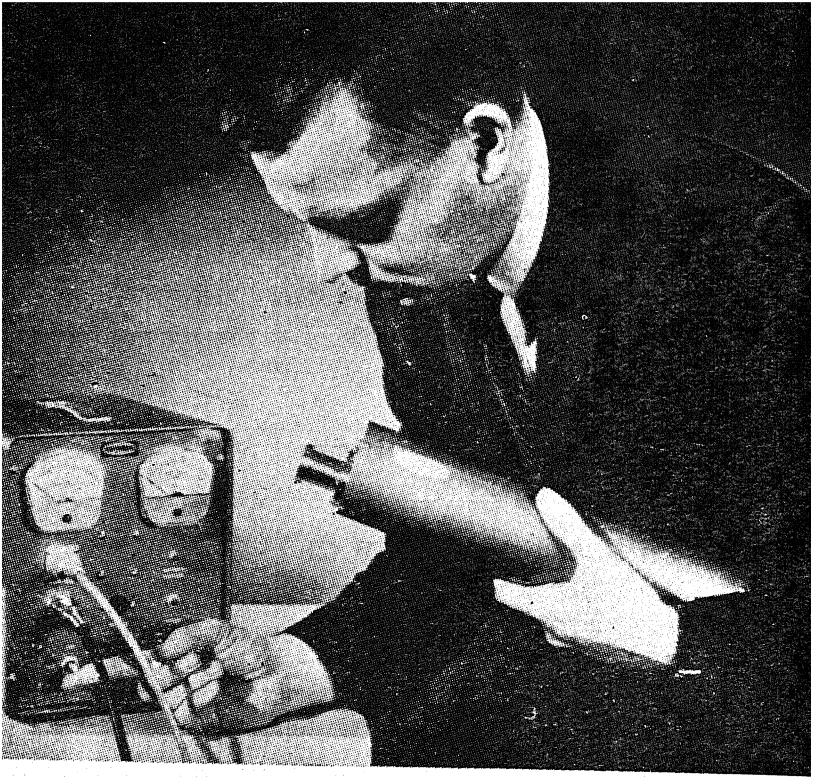
(सौजन्य : रेथियान)

सम्भरण यन्त्र, आरम्भक के लिए १५,००० वोल्ट, मुख्य संभरण के लिए २,००० वोल्ट तथा आरम्भक परिणामित्र के संभरण के लिए ४०० वोल्ट इस्तेमाल करता है जब कि मृत्युदण्ड देने वाली बिजली की कुर्सी सिर्फ २,००० वोल्टों का उपयोग करती है।

निर्माता लोग तो उपकरण को निरापद बनाने के लिए जो हो सकता है करते हैं लेकिन किसी भी उपकरण को कभी भी मूर्खों के लायक निरापद नहीं बनाया जा सकता। हो सकता है, निकास देने वाला रिले फंस जाय और लेसर अचानक चालू हो जाय। इसलिए, आप अपनी आंखों की कदर करते हैं तो लेसर की नली में से कभी मत देखिए, चाहे बिजली का स्विच चालू हो चाहे बन्द हो।

फिर, हो सकता है कि अन्तर्ग्रंथन लघुपथित हो जाय या जान बूझ कर उपमार्गित रखे गए हों और सूचक लैम्प, जल कर बेकार हो गए हों। इसलिए, जब तक आप तसल्ली न करलें कि यह वाकई बन्द है तब तक प्रत्येक उच्च वोल्ट्स वाले विद्युत्-सम्भरण को गर्म (ऊर्जित) समझें, ठीक ऐसे जैसे कि पहले-पहले आप को प्रत्येक बन्दूक को भरा हुआ मान कर चलना चाहिए।

पश्चिमी समुद्र-तट पर जो संस्थाएं लेसरशीर्ष तथा लेसर-विद्युत्सम्भरण बेचती हैं उनमें केलिफोर्निया के कल्वर सिटी में स्थित ह्यूफीज एयरक्रैफ्ट भी है। पूर्वी समुद्रतट पर मेसाचुसेट्स के वाल्थम नगर में स्थित रेथिऑन कम्पनी का स्पेशल माइक्रोवेव डिवाइसेज आपरेशन नामक विभाग, लेसर-शीर्ष बेचता है, लेसर-विद्यत्सम्भरण भी तथा लालमणि शलाकाएं भी। मेसाचुसेट्स के बोस्टन नगर का एडगर्टन, जर्मेशासन तथा ग्रायर नामक व्यापारिक संस्थान, फ्लैश लैम्प, परावर्तक व्यवस्थाएं तथा विद्युत्संभरण यन्त्र बेचता है।

लेसर चालू है या नहीं

मान लीजिये, आपने बनाकर, खरीद कर, मांग कर या उधार लेकर एक ऐसा लेसर प्राप्त कर लिया है जो फ्लैशनलिका, परावर्तक तथा दोनों विद्युत् संभरणों से लैस है। आपको कैसे पता चलेगा कि इसमें लेसर क्रिया वस्तुतः हो रही है या नहीं? हो सकता है इसमें सिर्फ प्रतिदीप्ति ही हो रही है। अगर ऐसा है तो आप जो कुछ बना पाए हैं वह प्रतिदीप्ति लैम्प मात्र है। हाई स्कूल के विज्ञान मेले में लाने से पहले अच्छा हो अगर आप तसल्ली कर लें कि इसमें से संसक्त प्रकाश निकल रहा है कि नहीं।

इसको निर्धारित करने के जटिल तरीके तो कई हैं लेकिन लालमणि लेसर के मामले में सब से आसान यह है कि आप उस धब्बे को देखें जो लेसर किरणपुंज के कारण दीवार पर बनता है।

दीवार पर के धब्बे को देखते रहिए और उच्च वोल्टता वाले परिवर्ती

विद्युत्संभरण के निर्गम को बढ़ाते जाइये। देखिए कि क्या वोल्टता ब
आप उस लालक्षेत्र को संकीर्ण करके एक सूक्ष्म बिन्दु का रूप दे सकते हैं।

लालमणि की प्रतिदीप्ति से एक व्यापक तथा विसरित किरणपुंज पैदा
है जो देखने में मन्द लाल होता है। आप, गहरे किरमिची रंग के, चमक
छोटे से फ्लैश की तलाश में रहिए। लेकिन याद रखिए कि लेसर का सारा
संसक्त नहीं होता और अगर तेज किरमिची प्रकाश का छोटा सा फ्लैश, मन्द
रंग के असंसक्त प्रकाश के व्यापक, विसरित प्रभामण्डल से घिरा हो तो निरुत्स
मत हो जाइए। इसके केन्द्र में स्थित जो सूक्ष्म सा धब्बा है, सारा महत्त्व उसी
है। मेंस की तलाश में रहिए। अगर यह बनता है तो समझ लीजिए कि अ
लेसर बना लिया है।

निष्कर्ष

हमारी किताब तो खत्म हो गई लेकिन लेसर की असली कहानी तो अभी शुरू ही हो रही है।

लेसर की जिन्दगी के पहले तीन सालों में, मेलों से जो प्रदर्शनबाजी हुई है और जो पाखण्ड-खण्डन हुआ है उस सब के बावजूद शिल्पविज्ञान पर होने वाले संभावित प्रभाव के लिहाज से इसका आविष्कार उसी कोटि का है जिसमें डि-फॉरेस्ट की ऑडिओन-नलिका तथा शाकले का ट्रांसिस्टर आते हैं। न सिर्फ यह कि लेसर इलेक्ट्रानिकी के क्षेत्र का कायाकल्प कर सकता है ; यह तो वैज्ञानिक अध्यवसाय के प्रत्येक पहलू पर भी गंभीर तथा दूरगामी प्रभाव डाल सकता है।

चिकित्सा के क्षेत्र सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण आविष्कार किसी क्षण भी घोषित किए जा सकते हैं। इनमें मानवनेत्र के दृष्टिपटल सम्बन्धी शल्यकर्म में लेसर का प्रकाश-स्कन्दक के रूप में होने वाला उपयोग तो होगा ही, हाथ ही दुर्दम्य कोशिकाओं के विनाश में, संक्रमण के खतरे के बिना त्वचा की रसौलियों तथा दागों को मिटाने में इसकी सफलता और यहां तक कि आमाशय सम्बन्धी शल्यकर्म तथा दन्तचिकित्सा में इसके सम्भावित उपयोग का समावेश भी होगा ।

आजकल के वैज्ञानिकों तथा इंजिनीयरों का लेसर के प्रति व्यवहार अधिक आदर तथा सावधानी का है। अनेकों प्रयोगशालाएं इसको निरापद बनाने के लिए लम्बे चौड़े पूर्वोपायों को लागू कर रही हैं। यह पता लग चुका है कि उच्चशक्ति-

लेसरों से आने वाला परावर्तित प्रकाश, मानव की दृष्टि के लिए हानिकर हो सकता है : अब तक पांच ऐसे रोगियों का पता लग चुका है जिनकी आंखें लेसर से क्षतिग्रस्त हुई हैं। इनमें से तीन स्वास्थ्य लाभ कर चुके हैं, एक के ठीक हो जाने की काफी उम्मीद है, लेकिन पांचवां सदा के लिए क्षतिग्रस्त हो गया प्रतीत होता है। लेसर कोई ऐसी चीज नहीं है कि इससे खिलवाड़ की जा सके।

लेसरं की उपयोगिताएं बढ़ती जा रही हैं और क्वांटम-यांत्रिकी की दृष्टि से इसका चचेरा भाई मेसर, एकाएक अधिक उपयोगी बन गया है। मेसरों का उपयोग अब तक बहुत सीमित रहा है, मुख्यत: इसलिए कि उन से काम लेने के लिए भारीभरकम विद्युत्‌चुम्बकों की जरूरत रहती थी। अब एक नए निम्नतापी विद्युत्‌चुम्बक का आविष्कार हो चुका है। उसमें वह धारा जो लगभग परमशून्य तक ठण्डी की हुई तार में बहना शुरू कर चुकी होती है, चलती ही रहती है और अपने चुम्बकीय क्षेत्र को बनाए रखती है। इस काम के लिए विद्युत् शक्ति की कोई आवश्यकता नहीं रहती। अब शीघ्र ही, परमाणु-परीक्षण-निषेध संधि के संभव उल्लंघनों या विश्वशांति के लिए संभावित खतरों की तलाश करने वाले विद्युत्‌चुम्बकीय टोही उपग्रहों में क्वांटम-यांत्रिकीय "कान" लग जायेंगे जो किसी भी इलेक्ट्रान-नलिका या ट्रांसिस्टर-प्रवर्धक से कहीं अधिक सूक्ष्मग्राही होंगे।

इसके साथ ही एक ऐसे भव्य आविष्कार की संक्षिप्त परिचय-गाथा समाप्त करता हूं जिसकी उपयोगिताओं पर सहज ही विश्वास नहीं होता। लेसर की कहानी का शेष भाग आपको, इस देश में तथा विश्वभर में बिछे हुए संयंत्र तथा प्रयोग-शालाओं में लिखना होगा।